श्रेष्ठ और उत्तम वस्तु प्रदान करे। हे युधिष्ठिर! क्षत्रिय लोग ब्रह्मतेजसे रक्षित होकर ही ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हैं; इससे ब्राह्मणोंकी विशेष रूपसे पूजा करना ही राजाका कर्त्तव्य है।

७३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राज्यका उपाय और मङ्गल समूह राजाके वशमें है, परन्तु राजाका उपाय और मङ्गल समूह सब पुरोहितके अधिकारमे है। जिस राज्यमें पुरोहित ब्रह्मतेजसे प्रजाके अदृष्ट और राजा बाहुबलसे दृष्टभय निवारण करता है, उस ही राज्यमें सुख प्राप्त होता है, इस विषयमें कुवेरके साथ राजा मुचकुन्दका जो कुछ बार्त्तालाप हुआ था, पण्डित लोग इस प्रस्तावमें उस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पृथ्वीनाथ मुचकुन्दने समस्त पृथ्वी जीतके निज बल मालूम करनेके वास्ते अलकानाथ कुवेरके समीप गमन किया। उसे देखकर यक्षराज वैश्रवणने राक्षसोंको आज्ञा दी, वे लोग मुचकुन्दकी सेनाका नाश करने लगे। हे शत्रुनाशन! नरनाथ मुचकुन्द अपनी सेनाका नाश होता देखकर विद्वान् पुरोहितकी निन्दा करने लगे। उसे सुनकर धर्म्म जाननेवालोंमें अग्रणी वशिष्टने उग्र तपस्यासे राक्षसोंका नाश किया और उसके जरियेसे मुचकुन्दकी भी गति मालूम की। तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण निज सेनाका नाश देखकर मुचकुन्दके सम्मुख उपस्थित होकर बोले।

कुवेर बोले, पहिले समयमें अनेक राजा पुरोहितके प्रभाव और बलसे तुमसे भी अधिक बलवान हुए थे, परन्तु तुमने जैसी वृत्ति अवलम्बन की है, किसीको भी मैंने वैसी वृत्ति अवलम्बन करते नहीं देखा। वे राजा लोग कृतास्त्र और बलवान होके भी मेरे निकट आके सुख दुःखका स्वामी समझके मेरी उपासना करते थे, तुम किस कारण ब्राह्मण बलसे गर्व्वित होकर नीतिमार्ग अतिक्रम करते हो? यदि तुम्हारी भुजामें बल हो, तो उसे दिखाओ।

तिसके अनन्तर मुचकुन्दने क्रुध होके क्रोध-रहित सावधान कुवेरका इस नीतियुक्त वचनसे उत्तर दिया। 'ब्रह्म और क्षत्रिय दोनों ही प्रजापतिके जरिये एक योनिरूपसे उत्पन्न हुए हैं; इससे उनका बलविधान परस्पर पृथक् रीतिसे रहनेपर वे लोग कदापि सब लोगोंको प्रतिपालन करनेमे समर्थ नहीं होते। ब्राह्मणोंमें तपस्या और मन्त्रबल तथा क्षत्रियोंमें अस्त्र और बाहुबल सदा प्रतिष्ठित रहता है; इन दोनोंका मिलके राज्यपालन करना ही उचित है। हे यक्षनाथ! मैं इस ही नीतिके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ हूं, तब तुम क्यों मेरी निन्दा करते हो।

तिसके अनन्तर विश्रवानन्दनने पुरोहित सहायसे युक्त मुचकुन्दसे कहा, हे राजन्! तुम निश्चय जान रखो, मैं ईश्वरकी बिना आज्ञाके किसीको राज्य प्रदान नहीं करता, और बिना ईश्वरकी अनुमतिके किसीका राज्य भी नहीं हरता, इससे मैंने तुम्हें जो राज्य प्रदान किया है, तुम उस समस्त पृथ्वीका शासन करो।" राजा मुचकुन्दने ऐसा सुनकर नीचे कहा हुआ उन्हें यह उत्तर दिया।

मुचकुन्द बोले, "राजन्! मैं आपका दिया हुआ राज्य भोगनेकी इच्छा नहीं करता, निज बाहुबलसे जो कुछ राज्य प्राप्त किया है, उसे ही भोग करूंगा, यही मेरा एकमात्र अभिप्राय है।"

भीष्म बोले, तिसके अनन्तर राजा वैश्रवण मुचकुन्दको निर्भयताके सहित क्षात्र-धर्म्ममें स्थित देखके अत्यन्त विस्मित हुए। अनन्तर पृथ्वीनाथ मुचकुन्द सब भांतिसे क्षात्र-धर्म्मके अनुगामी होकर निज बाहुबलसे प्राप्त हुई पृथ्वीका शासन करने लगे। हे युधिष्ठिर! जो

राजा इसी भांति ब्राह्मणको अगाड़ी करके राज्य शासन करता है, वह विजय न करने योग्य पृथ्वीको जय करके महत् यश प्राप्त करता है। ब्राह्मणको सदा पवित्र होना और क्षत्रियको सदा शस्त्रधारी होना उचित है; क्यों कि जगत्‌में जो कुछ है; वह सब उन दोनोंके अधीन है।

७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजा लोग जिस वृत्तिको अवलम्बन करके प्रजासमूहकी उन्नति और सब पुण्यलोकोंको जय करते हैं। आप वह सब मेरे निकट वर्णन करिये।

भीष्म बोले, राजा प्रजापालनमें प्रवृत्त होके दानी, उपवासी, तपस्यामें रत और यज्ञशील होवे। राजा धर्म्मपूर्व्वक सदा प्रजाको पालन करते हुए नित्य ही उद्योग और विविध दानसे धर्म्मात्माओंकी पूजा करे। राजा यदि धार्म्मिक पुरुषों की पूजा करे, तो वे लोग सब जगह पूजित होते हैं। क्यों कि राजा जैसा आचरण करता है, वही प्रजासमूहको प्रमाण हुआ करता है। राजा यमराज की भांति सदा शत्रुओंके विषयमें दण्डग्रहण करके तैयार रहे और सब भांतिसे डाकुओंका नाश करे; कभी भी इच्छानुसार किसीको क्षमा न करे। हे भारत! प्रजा राजासे रक्षित होकर जो कुछ धर्म्माचरण करती है; राजा उसमें चतुर्थांश फलभागी होता है। वे लोग जो कुछ दान, अध्ययन, होम और पूजा करते हैं, राजा धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करके उसमेंसे चौथा अंश फल भोग किया करता है। हे भरत-नन्दन! राजा यदि प्रजाकी रक्षा न करे, तो राज्यके बीच जो कुछ अधर्म्म उपस्थित होता है, राजा उस पापमें भी चतुर्थांश भागी होता है। राज्यमें दुष्ट और मिथ्यावादी पुरुष जो कुछ कर्म्म करते हैं। राजा अवश्य ही उसमें अर्द्धांश भागी होता है। हे पृथ्वीनाथ! कोई कोई कहते हैं राजा लोग वैसे पापके सम्पूर्ण तथा उससे भी अधिक फल-भागी हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर! राजा वैसे पापसे जिस प्रकार मुक्त होता है, उसे सुनो, जिस धनको चोरोंने चुराया है, उसे यदि फिरा न सके, तो वैसे अशक्त राजाको उचित है, कि निज कोषसे उतना ही धन प्रदान करे। सब वर्णोंको ही ब्राह्मणोंकी भांति ब्रह्मस्वकी रक्षा करनी उचित है; और जो ब्राह्मणोंका अपकार करे, उसे राज्यमें रहने देना उचित नहीं है। ब्रह्मस्व रक्षित होनेसे सब ही भांति रक्षित होता है; इससे उनकी कृपासे ही राजा कृत कृत्य होसकता है। जैसे सब प्राणी जलको और पक्षी महावृक्षका आसरा ग्रहण करते हैं, वैसे ही मनुष्य लोग सब अर्थ-सिद्ध करनेवाले राजाका आसरा ग्रहण किया करते हैं। परन्तु कामात्मा, सदा कामबुद्धि, नृशंस और अत्यन्त लोभी राजा प्रजा पालन नहीं कर सकते!

युधिष्ठिर बोले, मैं सुखकी अभिलाषासे राज्य प्राप्ति की इच्छा नहीं करता हूं। मैंने जिस धर्म्मके वास्ते राजाकी अभिलाष की थी, जब राज्यके बीच वह धर्म्म ही नहीं है; तब वैसे धर्म्म-रहित राज्यसे मुझे क्या प्रयोजन है? मैं धर्म्म-साधनके वास्ते फिर बनमें गमन करूंगा और दम्भरहित तथा जितेन्द्रिय होकर उस पवित्र बनके बीच फल मूल खानेवाले मुनियोंके धर्म्मकी अराधना करूंगा।

भीष्म बोले, तुम्हारी बुद्धि दूसरेको दुःख देनेवाली नहीं है इसे मैं जानता हूं, परन्तु, राजधर्म्मके विषयमें वैसी बुद्धिकी अत्यन्त निर्गुण ही कहनी होगी; क्यों कि शान्त और अनृशंस बुद्धिसे कभी राज्य रक्षित नहीं होता। युधिष्ठिर! यदि तुम इकबारगी कोमल, कृपालु और अत्यन्त धार्म्मिक होकर आर्य्यपुरुषोंके प्रदर्शित मार्गको अतिक्रम करोगे, तो सब कोई तुम्हें असमर्थ समझेंगे और तुम किसीके प्रशं-

साभाजन नहीं होगी। हे तात! तुम जिस रीतिसे निवास करनेकी इच्छा करते हो, वह क्षत्रियोंका धर्म्म नहीं है, इससे तुम्हारे पितर पितामहने जिस वृत्तिको अवलम्बन किया था, तुम भी उसहीका अनुगमन करो। तुम लोभके वशमें होकर केवल अनृशंस वृत्ति त्याग करनेसे ही प्रजापालनसे प्रकट हुए धर्म्म-फलको नहीं प्राप्त कर सकोगे। हे तात! तुम जिस बुद्धि-वृत्तिके अनुगामी हुए हो, तुम्हारे जन्मके समय कुन्ती अथवा पाण्डु किसीने भी ऐसी प्रार्थना नहीं की थी। तुम्हारे पिता नित्य ही तुम्हारे पराक्रम, बल और सत्यके वास्ते और कुन्ती महात्म और उदारताके निमित्त प्रार्थना करती थी। पुत्र जो मनोहर यज्ञादिकोंसे देवताओं और श्राद्धादिकोंसे पितरोंको तृप्त करते हैं; देवता और पितर लोग भी पुत्रसे ऐसी ही कामना किया करते हैं। दान, अध्ययन, यज्ञ और प्रजापालन करनेसे चाहे धर्म्म हो, चाहे अधर्म्म ही होवे, इन कई एक कर्म्मोंको करनेके ही वास्ते तुम्हारा जन्म हुआ है। जो ध्रुव कार्य्योंमें नियुक्त होकर यथा समयमें नियत भार उठाते हैं, उनके स्वय अवसन्न होनेपर भी उनकी कीर्त्ति नहीं अवसन्न होती। हे युधिष्ठिर! सुशिक्षित मनुष्यकी तो बात दूर रहे, जब भली भांति शिक्षित घोड़े भी सावधानीके सहित निज भारको उठाया करते हैं; तब तुम कर्म्म और वचनसे सबके निकट निर्दोषी होके ही निज आचरित कर्म्म से ही सिद्धि प्राप्त कर सकोगे। हे तात। धार्म्मिक, गृहस्थ, राजा अथवा ब्रह्मचारी कोई कभी भी इकबारगी अभिनिवेशके सहित शुद्ध धर्म्माचरण नहीं कर सकते; इससे निज आचरित अल्प कर्म्म भी यदि सारगर्भ हो, तो वह कर्म्म न करनेकी अपेक्षा उत्तम है, क्यों कि कर्म्म न करनेसे अत्यन्त ही पापभागी होना होता है।

जब सत्कुलशाली धर्म्मात्मा मनुष्यलोग राजमन्त्री आदि श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य लाभ करते हैं, तब ही राजा अप्राप्त वस्तुओंकी प्राप्ति और प्राप्त वस्तुओंको प्रतिपालन रूप योगक्षेम कुशलदायक हुआ करता है। धर्म्मात्मा राजा राज्य पाके किसीको दान, किसीको बल और किसीको मीठे वचनसे सब भांति अपने वशमें करे। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए पण्डित लोग जिसके आश्रय लाभसे परितृप्त होकर निर्भय और स्वच्छन्दताके सहित वास करते हैं, स्वयं धर्म्मको भी उससे श्रेष्ठ नहीं समझा जाता।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! स्वर्ग प्राप्तिका उत्तम उपाय क्या है? उससे उत्तम प्रीति कौनसी है और उससे श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य ही कौनसा है? यदि यह सब आपको मालम हो, तो मेरे निकट यथावत वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जो राजा भयपीड़ित मनुष्योंको क्षणभरके बीच उस भयसे छुड़ाके उन लोगोंका मङ्गल विधान करता है, वह राजा ही हम लोगोंके बीच स्वर्गजित् है, यह मैं तुम्हारे निकट सत्य ही कहता हूं। हे कुरुसत्तम! कुरुकुलमें तुम ही प्रीतिमान हो; इससे तुम राजा होकर स्वर्गजय, साधुओंका पालन और दुष्टोंका शासन करो। हे तात! जैसे सब प्राणी जल और पक्षी सुस्वादु फलसे युक्त वृक्षके आसरेसे जीवन धारण करते हैं; वैसे ही साधुओंके सहित सुहृद लोग तुम्हें उपजीव्य करके जीवन धारण करें। जो राजा शूर, दुष्टोंको नाश करनेवाले, अनृशंस, जितेन्द्रिय प्रजावत्सल, अतिथि और अपने अधीनमें रहनेवाले परिवार समूहको भोजन कराके आप भोजन करता है, मनुष्य लोग उस ही राजाका आसरा करके जीवन यात्रा निर्व्वाह करते हैं।

७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! जो स्वकर्म्ममें रत और जो निषिद्ध कर्म्मोंमें रत हैं, उन सब ब्राह्मणोंमें कौनसी विशेषता है? वह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! जो लोग विद्या और शम, दम आदि लक्षणोंसे युक्त और सबमें समदर्शी हैं, वे ब्राह्मण लोग ही ब्रह्मतुल्य कहे जाते हैं। ब्राह्मणोंके बीच जो लोग स्वकर्म्ममें रत होके ऋक् यजु और साम इन तीनों वेदोंको जानते हैं, वे लोग देवता समान माने जाते हैं। हे राजन्! श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके बीच जो अन्योचित कर्म्महीन महा नीच कर्म्म करने वाले और ब्रह्मबन्धु हैं, वे शूद्रके समान होते हैं। जो सब ब्राह्मण वेदाध्ययन रहित और निरग्निक हैं, धर्म्मात्मा राजा उनसे कर ग्रहण करे और बिना वेतन ही उनसे राज्यकी सेवकाई करावे। हे राजन्! जो धर्म्माधिकारमें नियुक्त रहते और वेतन लेकर देवपूजा, नक्षत्र गणना ग्राम याजन और महापथ अर्थात् नौका पर चढ़के समुद्रमें गमन करते हैं, शास्त्रमें ये पांचों ही ब्राह्मण चाण्डाल कहाते हैं। और भी ब्राह्मणोंके बीच जो लोग ऋत्विक्, पुरोहित, मन्त्री, दूत और वार्त्तावहका कार्य्य करते हैं; वे क्षत्रिय तुल्य समझे जाते हैं। जो लोग घुड़सवार गजसवार रथी और पदातिका कार्य्य करते हैं, वे वैश्य तुल्य कहाते हैं। हे पृथ्वीनाथ! राजा कोष रहित होने पर पहिले कहे हुए ब्रह्म समान और वेद जाननेवाले ब्राह्मणोंके अतिरिक्त इन सब ब्राह्मणोंसे कर ग्रहण करे, उससे उसे अधर्म्म नहीं होता; क्यों कि इस प्रकार वैदिक शासन है, कि ब्राह्मणोंके बीच जो लोग निषिद्धकर्म्म करते हैं, उनके और अब्राह्मणोंके धनका राजा ही स्वामी हुआ करता है। राजा दूसरेके कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंके विषयमें किसी प्रकार भी उपेक्षा न करे, बल्कि धर्म्मानुग्रह निबन्धनसे उन लोगोंको राजनियममें नियमित और पूर्व्व रीतिसे पृथक् कर रखे। हे राजन्! जिस राजाके राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष वह अपराध राजाके ही ऊपर आरोपित किया करते हैं। हे नरनाथ! इसमें पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जो जीविका रहित वेद जाननेवाले स्नातक ब्राह्मण राज्यके बीच चोर होंगे; राजाको ही उनका भरण पोषण करना होगा। यद्यपि वह ब्राह्मण राजाके निकट वृत्ति प्राप्त होने पर भी चोरी कर्म्मसे निवृत्त न होवे, तो ऐसा होनेसे राजा उसे बन्धुबान्धवोंके सहित निज देशसे निकाल देवे।

७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! राजा जिसके धनाधिकारके प्रभु होंगे और कैसी वृत्ति अवलम्बन करके रहेंगे; वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! ऐसी जनश्रुति है, कि ब्राह्मणोंमें जो लोग कुकर्म्मी हैं, उनका और अब्राह्मणोंका राजा ही धन स्वामी होता है; और साधु पुरुष राजाके विषयमें ऐसा कहा करते हैं कि ब्राह्मण कुकर्म्मी होनेपर राजा कभी भी उसके विषयमें उपेक्षा न करे। जिस राज्यमें ब्राह्मण चोर होता है, पण्डित लोग वह दोष राजाके ही ऊपर आरोपित करते हैं; इससे राजऋषि लोग ब्राह्मणोंके वैसे कर्म्मसे अपनेको ही दोषी समझके उनका पालन किया करते हैं। हे राजन् केकयराजने राक्षससे वनमें हरे जाने पर जो कुछ वचन कहे थे, पण्डित लोग इस स्थलमें उसही प्राचीन इतिहासको प्रमाण रूपसे वर्णन किया करते हैं। किसी राक्षसने वनके बीच स्वाध्यायरत, व्रतमें तत्पर, पराक्रमी केकयराजको ग्रहण किया, तब केकयराजने उससे कहा, कि मेरे राज्यमें चोर, कायर, मद पीनेवाले, निरग्निक और यज्ञहीन कोई भी नहीं है; इससे तुम

मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निकटसे दूर रहो। मेरे राज्यमें दक्षिणाहीन यज्ञ नहीं होते, कोई व्रतहीन पुरुष वेद नहीं पढ़ते, अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह ये छःहों कर्म सदा विद्यमान हैं और निज कर्ममें तत्पर, सत्यवादी, शान्त ब्राह्मण लोग मेरे राज्यमें सदा सम्मानित और पूजित हुआ करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श न करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें सत्य-धर्म जाननेवाले क्षत्रिय लोग किसीके समीप याचना नहीं करते, सब ही दान किया करते हैं, पढ़ते हैं, पढ़ाते नहीं; यज्ञ करते हैं, कराते नहीं; और वे सब ब्राह्मणोंके प्रतिपाल करनेवाले, युद्धमें पीछे न हटनेवाले तथा निज कर्ममें रत हैं; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें वैश्य लोग कपट रहित होके कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य वृत्ति अवलम्बन करके जीविका निर्वाह करते हैं, वे सब ही सावधान, क्रिया-वान, उत्तम व्रत करनेवाले, सत्यवादी निज कर्ममें रत और परस्पर सन्विभाग युक्त दम, पवित्रता और सुहृदताका आसरा किया करते हैं। इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर रहो। मेरे राज्यमें शूद्र-लोग असूया-रहित, निज कर्ममें स्थित और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंके अवल-म्बसे यथा उचित जीविका निर्वाह किया करते हैं; इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे समीपसे दूर होजाओ, मैं कृपण, अनाथ वृद्ध, निर्बल, आतुर, और स्त्रियोंको यथा उचि-तसे सेवा किया करता हूं, कुलधर्म और देश-धर्म यथारीतिसे स्थापित करता हूं, किसीको नष्ट नहीं करता मेरे समीप तपस्वी लोग आद-रके सहित पूजित प्रतिपालित और संविभक्त हुआ करते हैं, मैं सबको बिना भोजन कराये भोजन नहीं करता, पराई स्त्री स्पर्श नहीं करता और कभी स्वतन्त्र क्रीड़ा नहीं करता; इससे तुम्हें मुझे ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है; तुम मेरे समीपसे दूर होजाओ। मेरे राज्यमें अब्रह्मचारी भिक्षा-वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, भिक्षुक ही ब्रह्मचर्य करते हैं, और ऋत्विकके अतिरिक्त दूसरे पुरुषके जरिये देव-ताओंको आहुति नहीं दी जाती इससे तुम मेरे निकटसे दूर रहो। मैं वैद्य, वृद्ध और तपस्वि-योंकी अवज्ञा नहीं करता और समस्त जनपद वासियोंके सोनेपर मैं जागता रहता हूं, मेरा पुरोहित आत्मज्ञान और विज्ञानसे युक्त, तप-स्वी सब धर्म जाननेवाला बुद्धिमान और सब राज्यका स्वामी है। मैं दानसे विद्या ब्राह्मणोंकी रक्षा और सत्यसे स्वर्गादि लोक प्राप्ति की इच्छा किया करता हूं और शुश्रूषासे गुरुजनोंके अनुकूल हूं; इससे राक्षससे मुझे भय नहीं है। मेरे राज्यमें विधवा, ब्रह्मबन्धु, अब्राह्मण, शठ, चोर, मांगनेके अयोग्य वस्तुओंके मांगनेवाले, और पाप कर्म करनेवाले कोई भी नहीं है, इससे राक्षससे मैं नहीं डरता। मैं धर्मार्थ ही युद्ध किया करता हूं, इससे मेरा शरीर दो अंगुल मात्र भी शस्त्रसे विद्ध नहीं होता; और मेरे राज्यमें सब प्रजा गऊ, ब्राह्मणकी रक्षा तथा यज्ञके वास्ते मेरी मङ्गल कामना किया करती है, इससे तुम मुझे स्पर्श मत करो, मेरे निक-टसे दूर हो जाओ।

राक्षस बोला, हे केकयराज! आप सब समय धर्मकी पर्य्यालोचना करते हैं, इससे मैंने आपको परित्याग किया; अब आपका मङ्गल होवे, आप अपने घर जाइये; मैं अपने स्थान-पर जाता हूं। हे केकय! जो गऊ, ब्राह्मण और प्रजाको आपदसे बचाते हैं, उन्हें राक्षस वा पातकसे भय नहीं होता; और ब्राह्मण लोग उसके अग्रगामी हैं, जिसका बल ब्रह्मपर और जो अतिथि प्रिय हैं, वे राजा समस्त स्वर्ग लोक को जय किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन् ! इस ही कारण ब्राह्मणोंका पालन करना राजाको अवश्य उचित है। क्योंकि वे लोग राजासे रक्षित होकर उसी ऐसी आपदसे बचाते हैं और राज्यादिके निमित्त सब भांतिसे वृद्धिसूचक आशीर्व्वाद दिया करते हैं। इस ही वास्ते दूसरे कर्म्ममें रत ब्राह्मणोंको राजा कृपापूर्व्वक नियमित और यथारीतिसे विभक्त कर रखे। जो राजा पुरवासी प्रजासमूहके साथ इसी भांति आचरण करता है, वह इस लोकमें सब सुख भोगके परलोकमें इन्द्रके समान स्थान प्राप्त करता है।

७७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत ! आपने कहा है, आपदकालमें ब्राह्मण लोग राजधर्म्म अर्थात् शस्त्रधारण आदि कार्य्योंसे जीविका निर्व्वाह कर सकते हैं, परन्तु वे लोग वैश्यधर्म्म अर्थात् व्यवसायसे जीविकाका उपाय कर सकते हैं वा नहीं ?

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म्ममें असमर्थ ब्राह्मण लोग वृत्तिक्षय रूपी व्यसन उपस्थित होनेपर कृषि और गोरक्षा व्यवसाय अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करें।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतर्षभ ! वैश्य धर्म्म अवलम्बन करनेवाले ब्राह्मण लोग किन वस्तुओंके बेचनेसे स्वर्गच्युत नहीं होते।

भीष्म बोले, हे तात युधिष्ठिर ! ब्राह्मण लोग सब समयमें ही सुरा, लवण, तिल, घोड़े गऊ, भैंस आदि पशु, ऋषभ, मधु और पक्कान्न आदि सब वस्तु न बेचें ; क्यों कि इन वस्तुओंके बेचनेसे ब्राह्मण नरकगामी होंगे। अज, अग्नि, वरुण, बादल, सूर्य्य, घोड़े, पृथ्वी, अन्न, गऊ यज्ञ और सोम ये सब वस्तु कदापि ब्राह्मणोंको बेचने योग्य नहीं हैं। हे भारत ! साधुपुरुष पक्कान्नके सङ्ग आमान्नके बदलनेको निन्दा किया करते हैं; परन्तु भोजनके वास्ते आमान्नके संग पक्कान्नको बदलनेसे उसकी निन्दा नहीं करते; यदि कोई किसीको "मैं सिद्धान्न भोजन करूंगा आप आमान्न ग्रहण कीजिये," ऐसा कहके आमान्नके साथ सिद्धान्नको बदल करे, तो इस प्रकारके अदलबदलमें किसी भांति भी अधर्म्म नहीं हो सकता। हे युधिष्ठिर ! इस विषयमें व्यवहारमें प्रवृत्त पुरुषोंका जो सनातन धर्म्म है वह तुमसे कहता हूं सुनो। यदि कोई किसी पुरुषको "मैं तुम्हें यह वस्तु देता हूं, तुम मुझे अमुक वस्तु प्रदान करो," ऐसा कहके इच्छानुसार बदल करे, ऐसा होनेसे उसमें धर्म्म होता है, परन्तु बलपूर्व्वक बदलनेसे उसमें धर्म्म नहीं हो सकता। ऋषि और इतर लोगोंका इसी भांति प्राचीन व्यवहार प्रचलित हुआ करता है यही उत्तम है, इसमें कुछ सन्देह नहीं।

युधिष्ठिर बोले, हे तात ! जब वैश्य, शूद्र और अन्तज आदि प्रजासमूह निजधर्म्म परित्याग करके शस्त्र ग्रहण करेंगे ; उस समय क्षत्रिय बल क्षीण होगा। हे नरनाथ ! उस समय बलहीन राजा किस प्रकार लोकयात्रा और सब लोगोंका परम आश्रय होगा ? मुझे यह सन्देह हो रहा है, आप इस विषयको मुझसे विस्तारपूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, ब्राह्मण आदि सब वर्ण दान, तपस्या यज्ञ, अहिंसा और इन्द्रियदमनसे अपने अपने कुशलकी अभिलाष करते हैं, परन्तु उन लोगोंके बीच जो ब्राह्मण वेद-बलशाली हैं, वे लोग सब भांतिसे बढ़के इन्द्रके बल बढ़ानेवाले देवताओंकी भांति राजाका बल बढ़ाते हैं। और पण्डित लोग ऐसे कहा करते हैं, कि ब्राह्मण ही बलहीन राजाके परम आश्रय हैं ; इससे बुद्धिमान राजा ब्रह्मबल अवलम्बन करके ही समुत्थित होते हैं। परन्तु जयशील राजा जब राज्यके बीच सबके क्षेमका अनुसन्धान करेंगे, तब सब वर्ण किस प्रकार निज निज

धर्म्मसे भ्रष्ट होंगे। हे युधिष्ठिर! जब डाकू लोग प्रजासमूहकी मर्य्यादा और जाति नाश करनेमें प्रवृत्त होंगे, उस समय सब वर्णोंको शस्त्र ग्रहण करनेसे दोष युक्त नहीं होंगे!

युधिष्ठिर बोले, पितामह! यदि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके विषयमें दोषदर्शी होकर विरुद्ध आचरण करे, तो वह ब्राह्मण कौन धर्म्म अव-लम्बन करेगा? और उसका आश्रय तथा परि-त्राण करनेवाला कौन होगा?

भीष्म बोले, उस समय ब्राह्मण तपस्या, ब्रह्मचर्य्य, शस्त्रबल, शठता वा सरलता आदि जिस उपायसे होसके, वही क्षत्रियको शासित करे। विशेष करके ब्राह्मणसे क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं, इससे यद्यपि क्षत्रिय ब्राह्मणोंके सङ्ग विरुद्धाचरण करनेमें प्रवृत्त हो, तो ब्राह्मण ही उसके नियन्ता होंगे। जलसे अग्नि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय और पत्थरसे लोहा उत्पन्न हुआ है, इससे उनका सर्व्वत्रगामी तेज निज निज योनिमें शान्त हुआ करता है। जब लोहा पत्थरको भेदता, अग्नि जलको मथता और क्षत्रिय ब्राह्म-णोंसे द्वेष करते हैं, तब वह लोह, अग्नि और क्षत्रिय स्वयं नष्ट होजाते हैं। हे युधिष्ठिर! इससे क्षत्रियोंका अत्यन्त अजेय तेज ब्राह्मणोंके समीप शान्त हुआ करता है। ब्रह्मबल कोमल तथा क्षत्रियबल निर्व्वल और सब वर्ण ब्राह्म-णोंके विरुद्ध होनेपर जो लोग ब्राह्मणधर्म्म और आत्मरक्षाके वास्ते उस समय जीवनकी आशा त्यागके शस्त्र ग्रहणकर युद्ध करनेके वास्ते उद्यत होते हैं, वे मनस्वी मननशील मनुष्य ही पुण्य-स्थान प्राप्त करते हैं; क्यों कि ब्राह्मणोंके वास्ते सबको ही शस्त्र ग्रहण करनेकी विधि है। हे युधिष्ठिर! ऐसा हो क्या, यज्ञ, वेदा-ध्ययन, तपस्या, अनशन और अग्नि प्रवेशकारी पुरुषोंसे ब्राह्मणोंके हितैषी पुरुष उत्तम गति प्राप्त करते हैं। इसी भांति ब्राह्मणोंके वास्ते क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीनों वर्णोंके वास्ते शस्त्र ग्रहण करनेसे ये दूषित नहीं होते, और सब लोग ऐसा समझते हैं, कि उनके वास्ते आत्म-त्यागी होनेपर उससे बढ़के कोई भी धर्म्मश्रेष्ठ नहीं होसकता। मनुने कहा है कि जो लोग साधारणकी रक्षाके वास्ते युद्धरूपी आगमें निज शरीरकी आहुति देते और ब्राह्मणद्वेषी लोगोंको दमन करते हैं, उन्हें नमस्कार है, क्यों कि वे लोग वैसे कार्य्योंसे निज मङ्गल और हम लोगोंको सलोकता प्राप्त तथा ब्रह्मलोक और स्वर्गलोकको जय करनेमें समर्थ होते हैं। और भी जैसे मनुष्य लोग अश्वमेध यज्ञके अव-भृत स्नानसे पवित्र होते हैं और उनके सब पाप दूर होते हैं। वैसे ही युद्धमें मरा हुआ पुरुष भी पवित्र होता और उसका पाप दूर होता है। हे राजन्! देशकालके व्यतिक्रम होनेसे उस देश-कालके अनुसार ही धर्म्माधर्म्मका भी व्यतिक्रम अर्थात् धर्म्म अधर्म्म और अधर्म्म धर्म्म हुआ करता है देखिये, उतङ्क और पराशर आदि महर्षि लोगोंने क्रूर कर्म्म करके भी उत्तम स्वर्गलोक जय किया है और धर्म्मात्मा क्षत्रिय लोग भी पाप कर्म्म करके परम-गतिको प्राप्त हुए हैं। ब्राह्मण लोग आत्मरक्षा वर्णदोष और दुष्ट डाकु-ओंको नाश करनेके वास्ते सब समयमें ही शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं; उसमें उन्हें दोष नहीं होता।

युधिष्ठिर बोले, हे राजसत्तम! डाकुओंका दल प्रजा पालनके निमित्त तय्यार होके, वर्ण-शङ्कर अर्थात् परस्पर स्त्रीहरण आदि कार्य्योंमें प्रवृत्त होने और सब लोगोंके सब भांतिसे मूढ़ होनेपर यदि दूसरा कोई बलवान क्षत्रिय डाकुओंके दलको नष्ट करे; तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रोंके बीच राजधर्म्मके अनुसार दण्ड धारण करके प्रजा समूहकी रक्षा करे, तो वह पुरुष राजकार्य्य करनेके कारण सबका स्वामी हो सकता है, वा नहीं? और उस सम्बन्धमें क्षत्र-बन्धुके अतिरिक्त दूसरे शस्त्र ग्रहण कर सकेंगे, वा नहीं।

भीष्म बोले, जो अपार पारावारके पार अर्थात् तीर स्वरूप और नौकाहीन समुद्रमें नौका स्वरूप होते हैं, वे शूद्र अथवा चाहे कोई वर्ण क्यों न होवें, न समाजके बीच सब भांतिसे सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। हे राजन्! अनाथ-मनुष्य डाकुओंसे पराजित अथवा पीड़ित होकर जिसका आसरा ग्रहण करके सुख पूर्व्वक निवास करते हैं, वे सब कोई निज बान्धवोंकी भांति उस रक्षा करनेवालेकी प्रीतिके सहित पूजा किया करते हैं; क्यों कि अभयदाता अनाथ मनुष्योंमें सदा सम्माननीय हुआ करता है। हे कौरव! जो बैल बोझा ढोनेमें असमर्थ और जो गऊ दूधदानसे रहित, जो स्त्री पुत्र प्रसव करनेमें अशक्य, और जो राजा प्रजापालन करनेमें असमर्थ होता है, उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। हे पार्थ! जैसे काठके हाथी, चमड़ेके मृग, कायर पुरुष और ऊषर-क्षेत्र निष्फल हैं; वैसे ही जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते, जो राजा प्रजा-पालन नहीं करता और जो बादल जलकी वर्षा नहीं करते उन सबको भी उसी भांति निष्फल समझना चाहिये। जो सदा साधुओंकी रक्षा करते और दुष्टोंका दमन करते हैं, उन्हें ही राजा बनाना उचित है; क्यों कि वैसे पुरुष ही इस सम्पूर्ण पृथ्वीको धारण करनेमें समर्थ होते हैं।

७८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ पितामह! ऋषियोंके कर्तव्य कर्म क्या हैं और उन लोगोंके स्वभाव तथा गुण कैसे होने उचित हैं? वह विस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, छन्द, ऋक्, यजु, साम और श्रुति अर्थात् मीमांसा शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण लोग राजाओंके प्रति-कर्म्म अर्थात् शान्तिक पौष्टिक आदि कर्म्म करें; यही उन लोगोंके कर्त्तव्य कर्म्म हैं। और उन लोगोंका ऐसा स्वभाव होवे, कि वे लोग वीर पुरुषोंके ऊपर सदा अनुरागी होके प्रिय वचन कहें; आपसमें सुहृद-आचरण और सबको समभावसे देखें। इसके अतिरिक्त ऋत्विक लोग अद्रोही, सत्य-वादी, अर्थ-प्रयोगसे हीन-सरल, परोपकार रहित, अभिमानहीन, लज्जा, तितिक्षा दम और शम गुणसे युक्त, बुद्धिमान, सत्यव्रतमें निष्ठावान, धर्म्मात्मा, जीव हिंसासे रहित, काम-क्रोधहीन, निर्दोष, श्रुत, वृत्त और संयमसे युक्त, आस्तिक तथा ज्ञानसे तृप्त;—ऐसे गुणोंसे युक्त होनेपर वे लोग ब्राह्मासन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे और यथा योग्य माननीय तथा धन आदि-कोंसे पूजनीय होंगे।

युधिष्ठिर बोले, यज्ञमें दक्षिणा देनेके वास्ते वेदमें जो वचन कहे गये हैं, उसमें "इस परि-माणसे देना होगा," ऐसा कोई नियम नहीं निश्चित हुआ है। उसके वास्ते वारह भी दक्षिणा विधान करनेवाला यह शास्त्र धन-विभागके अभिप्रायसे नहीं कहा गया है; परन्तु आप-धर्म्मके अनुसार सर्व्वस्व दक्षिणाकी विधि वर्णित हुई है। ऐसा होनेसे शास्त्रका यह शासन अत्यन्त भयङ्कर है, उसमें समर्थ और असमर्थ बोधकी सम्भावना नहीं है, इससे ऐसा होनेसे दरिद्रोंके भी यज्ञादि न हो सकते। श्रद्धावान पुरुष यज्ञ करे, ऐसी ही वैदिक श्रुति है; परन्तु, प्रकृत-दक्षिणा गऊ, उसमें अनुकल्प चरु दान करनेसे वह मिथ्या होता है, वैसे मिथ्या-दक्षिणा युक्त यज्ञमें श्रद्धा क्यों करेंगे?

भीष्म बोले, वेद वाक्यमें अवज्ञा, शठता और मायासे कोई कभी परम पद नहीं प्राप्त कर सकता, इससे तुम्हारा जिसमें ऐसी बुद्धि न हो। हे तात! दक्षिणा यज्ञका अङ्ग और वेदोंकी पुष्टि करनेवाली है; इससे दक्षिणा हीन यज्ञ कदापि उद्धार करनेमें समर्थ नहीं होते। हे

तात ! दरिद्रके पूर्ण पात्र भरके भी दक्षिणा होनेपर भी अधिक फलदायक है; इससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंको यथा रीतिसे यज्ञ करना अवश्य उचित है। वेदमें ऐसी धारणा है, कि सोम ब्राह्मणोंके निमित्त अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु है; परन्तु वे लोग यज्ञादिकोंके निमित्त उसे भी बेचने की इच्छा करते हैं, बिना कारणके ही बेचनेमें उन लोगोंकी प्रवित्ति नहीं होती। धर्म्मात्मा ऋषि लोग धर्मपूर्व्वक ऐसा ही ध्यान किया करते है, कि सोमरस बेचके प्राप्त हुए धनसे जो साम-यज्ञ क्रय की जाती हैं, वह क्रमसे विस्तृत हुआ करती है। पुरुषके न्याययुक्त और शठता हीन होनेपर उसका ही सोम और यज्ञ पूर्ण होता है, परन्तु अन्याययुक्त होनेसे उसके ऐहिक और पारलौकिक कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होते। मैंने ऐसी जनश्रुति सुनी है, कि महात्मा ब्राह्मण लोग केवल शरीर-वृत्त अवलम्बन करके जो प्रणीता-ग्निमें यज्ञ आदि कर्म्म करते हैं, वह सब शुभ होता है। हे विद्वन्! इस प्रकार श्रेष्ठ श्रुति है, कि तपस्या यज्ञसे भी श्रेष्ठ है, इससे उस तपस्याका वृत्तान्त मैं तुमसे कहता हूं, उसे मेरे समीप सुनो। पण्डित लोग अहिंसा, सत्य वचन अनृशंसता, दम और घृणा इन सबको ही तपस्या समझते हैं; परन्तु उपवास आदिसे शरीर सुखानेको वे लोग तपस्या रूपसे नहीं गिनते। वेदवाक्यको अप्रमाण शास्त्रोंके वचन उल्लङ्घन और सर्व्वत्र अव्यवस्था करनेसे उससे आत्माका नाश होता है। हे पार्थ! यज्ञमें जैसे स्रुक् और घृत आदि सब वस्तु वर्णित हैं; अन्तरमें भी वैसे ही चित्ति अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकता रूपी साधन योगको स्रुक और चित्तको घृत रूपसे समझना होता है, इस ज्ञानको ही अत्यन्त पवित्र करके जाने। सब भांति की शठता ही मृत्यु की मूल अर्थात् अनित्य और सरलता ही ब्रह्मपद अर्थात् नित्य है; यही ज्ञानका विषय है, प्रलाप इसमें कुछ भी नहीं कर सकता।

७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जबकि थोड़ा कार्य्य भी अकेले सहाय रहित पुरुषसे सिद्ध होना कठिन है, तब अकेले राजासे सब कार्य्य किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकते; इससे राजा कैसे आचार और किस प्रकार स्वभाव युक्त पुरुषको मन्त्रीपद पर नियुक्त करे और कैसे लोगोंके ऊपर विश्वास तथा कैसे मनुष्योंका अविश्वास करे।

भीष्म बोले, हे राजन्! राजाओंके सहार्थ, भजमान, सहज और कृत्रिम ये चार भांतिके मन्त्री हुआ करते हैं, उनमेंसे जो राजाके समीप ऐसा स्वीकार करते हैं, कि इस शत्रुको हम दोनो ही मिलके नष्ट करेंगे और इस शत्रु राज्यको हम दोनो आपसमें विभाग करके ग्रहण करेंगे, वह सहार्थ हैं। जो पिता पिता-महके क्रमसे विद्यमान रहते हैं, वह भजमान हैं। मातृ स्वस्रीय आदि सहज, जो धर्म्मात्मा, पक्षपात रहित, दानोंके निकट वेतन लेने की इच्छासे कपटता नहीं करते और धर्म्मके पक्ष-पाती होकर धर्म्ममार्गमें ही विद्यमान रहते हैं, वे राजाओंके कृत्रिम मित्र होते हैं। जो विषय राजाको अभिलषित नहीं है, उसे मित्र लोग उसके समीप कदापि प्रकाशित न करें; क्योंकि विजयी राजा लोग धर्म्म और अधर्म्मके सहित भ्रमण किया करते हैं। पहिले कहे हुए मित्रोंके बीच भजमान और सहज मित्र ही श्रेष्ठ हैं; ये लोग कार्य्य विशेषमें शङ्कायुक्त होते हैं; परन्तु सहार्थ और कृत्रिम मित्रको सदा शङ्कित रहना होगा। और सबको ही सदा रक्षा करनी उचित है; विशेष करके दुष्ट सेव-कोंके निग्रह आदि निज कार्य्योंको इनके

अभ्युत्थान करके स्वयं सिद्ध करना होगा। राजा मित्रोंकी रक्षा करनेमें कभी असावधानी न करे ; क्यों कि सब लोग असावधान राजाका ही पराभव किया करते हैं। और राजाके असावधान चित्त होनेसे साधु पुरुष दुष्ट दुष्ट-लोग साधु; शत्रु लोग मित्र और मित्र शत्रु हुआ करते हैं। अस्थिर चित्तवाले पुरुषका कोई विश्वास नहीं करता ; इससे जो कार्य्य मुख्य हैं, उसे प्रत्यक्ष ही सिद्ध करे। सबके ऊपर एकबारगी विश्वास करनेसे धर्म्म और अर्थका नाश होता है ; और सर्व्वत्र अविश्वासकी अपेक्षा मृत्यु ही हितकारी है। अत्यन्त विश्वास ही अकाल मृत्युका कारण है। अत्यन्त विश्वास करनेसे ही विपदग्रस्त होना पड़ता है, क्योंकि जिसका अत्यन्त विश्वास किया जायगा, उसकी इच्छा रहनेसे ही जीवन रह सकता है ; नहीं तो जीते रहनेकी आशा नहीं रहती। हे तात ! इससे पुरुष विशेषका विश्वास और व्यक्ति विशेषका अविश्वास करना उचित है, यही नीतिकी गति है और इसे ही सदा लक्ष्य करना उचित है। जिसे समझे कि मेरे न रहनेपर यही राजा होगा, उससे सदा शङ्का करनी उचित है क्यों कि पण्डित लोग वैसे पुरुषको ही शत्रु समझते हैं। जो पुरुष अपने क्षेत्रका जल दूसरेके क्षेत्रमें गमन करेगा, ऐसा जानके इच्छानुसार बांधकी दृढ़ताके सहित बांधता है और जलके अभावमें दूसरेकी क्षति होनेपर भी किसी प्रकार जलबाहर नहीं होने देता ; और क्रमसे जल बढ़नेपर अत्यन्त जलसे अपनी क्षतिकी शङ्का करके बांध तोड़नेकी इच्छा करे उसे ही अतिमित्र समझना चाहिये। जो पुरुष राजाके अर्थ-वृद्धिसे तृप्त नहीं होता और धन-क्षय होनेसे अत्यन्त दुःखित होता है ; पण्डित लोग उसे ही उत्तम मित्र कहा करते हैं। जिसे जाने कि, मेरे न रहनेपर यह पुरुष नहीं रहेगा, उसका पिताकी भांति विश्वास करे और स्वयं वृद्धि-युक्त होकर उसकी भी सब भांतिसे वृद्धि करे। जो पुरुष धर्म्मकर्म्मको क्षय होते देखके नित्य निवारण करता है, उस धर्म्म क्षयसे डरे हुए मनुष्यको उत्तम मित्र समझना चाहिये और जो उसके नाशकी इच्छा करे, वह उसका शत्रु गिना जाता है। जो मनुष्य व्यसनसे सदा डरता है और धनसे किसीका अनिष्ट नहीं करता ; वैसे पुरुषके मित्र होनेपर उसे आत्म-सदृश समझे। जो पुरुष उत्तम रूप वर्ण और स्वरसे युक्त, तितिक्षा, असूयारहित ; उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ और कुलसे युक्त होवे, उसे पहिले कहे हुए मित्रोंसे मुख्य जानना चाहिये जो मेधावी, स्मृतिमान, दक्ष, स्वाभाविक अनृशंसता और सम्मानित वा अपमानित होनेपर भी कभी किसीकी बुराई नहीं करते, वे ऋत्विक, आचार्य्य वा अत्यन्त प्रिय मित्र होनेपर भी यदि सेवक होकर तुम्हारे गृहमें निवास करें, तो उनका अधिक सम्मान करना होगा। वे तुम्हें परम मित्र और धर्म्मका स्वरूप जानेंगे और तुम भी उनका पिताकी भांति विश्वास करना। एक कार्य्यके दो वा तीन अधिकारी होनेपर वे लोग आपसमें एक दूसरेके दोषोंको क्षमा नहीं करते ; इससे एक कार्य्यमें एकसे अधिक अध्यक्ष नियत करना उचित नहीं है ; क्यों कि प्राणियोंमें सदा परस्पर मतभेद हुआ करता है। जो पुरुष सत्कीर्त्तियोंके अग्रगण्य हुए हैं, जो नीतिके बाहर नहीं होते, जो समर्थ मनुष्योंके साथ द्वेष और अनर्थ आचरण नहीं करते, जो काम-क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर निज धर्म्म परित्याग नहीं करते और जो सब कार्य्योंमें दक्ष तथा पर्य्याप्तवादी हैं, वेही तुम्हारे मुख्य मित्र होवें। और भी जो लोग कुलीन उत्तम स्वभावसे युक्त, क्षमावान, अपनी बड़ाईसे रहित, शूर, आर्य्य, विद्वान, कार्य्याकार्य्य-विवेकमें निपुण, सब कर्म्मोंमें अवस्थित, कर्म्माधीय, संविभक्त, उत्तम सहाय युक्त,

और सत्कर्म्म करनेवाले हैं, उन्हें ऐसेक पदवी पर नियुक्त करना उचित है। हे राजन्! ऐसे लोग सब प्रतिरूप अर्थात् आय-व्ययके हिसाब आदि कार्य्यों तथा सब मुख्य राज कार्य्योंके अधिकारी होनेसे कल्याणको वृद्धि किया करते हैं। ये लोग सदा स्पर्द्धावान होकर निर्जनमें ही सब कार्य्योंको सिद्ध करते हैं तथा आपसमें वार्त्तालाप करके सब प्रयोजन सिद्ध किया करते हैं। हे महाबाहो! मृत्युकी भांति जातिके लोगोंका सदा भय करना, क्योंकि जातिके लोग समीपमें पहुंची हुई मृत्युकी भांति सदा राजऋद्धिको नहीं सह सकते। परन्तु जाति सरल, मृदु वदान्य, लज्जाशील और सत्यवादी होनेपर कोई उसके नाशकी अभिलाष नहीं करते। जातिहीन मनुष्यको सुख नहीं होता, जातिसे रहित मनुष्य सबके ही अवज्ञाभाजन होते हैं और जाति हीन पुरुष ही शत्रुओंसे पराजित हुआ करते हैं। कोई दूसरेसे अवमानित होनेपर जाति ही उसके वास्ते आश्रय हुआ करती है और जाति ही जातिको दूसरेसे पराभव देखके कभी नहीं सह सकती। कोई पुरुष बन्धु-बान्धवोंसे अपमानित होवे तो जातिके पुरुष अपनेको ही अवमानित समझते हैं; और बन्धु यदि सौ गुणोंसे बड़ा होवे, तौभी उसे अल्प गुणवाला समझके अपनेको उससे अनेक गुणोंसे बड़ा हुआ बोध करते हैं। जातिहीन मनुष्य किसीके ऊपर कृपा नहीं करते, जातिहीन मनुष्य किसीके समीप नत नहीं होते; जातिके बीच साधु और दुष्ट दोनों ही दीख पड़ते हैं। इससे बचन और कर्म्मसे सदा जातिके पुरुषोंका सम्मान, पूजा तथा प्रियकार्य्य करे; तनिक भी उनके साथ अनिष्ट आचरण न करे। उनके समीप सदा विश्वासीकी भांति अविश्वास भावसे वास करे और उनके सामान्य गुण दोषको निरूपण करके न देखे। हे राजन्! जो पुरुष प्रमाद हीन होकर इसी भांति निवास करते हैं; उनके सब शत्रु प्रसन्न होकर मित्रकी भांति व्यवहार करते हैं। जो पुरुष जाति और सम्बन्धीसमूहमें इसी प्रकार सदा स्थित रहते हैं, वे मित्र, शत्रु और मध्यस्थोंके निकट यशस्वी होकर बहुत समयतक निवास करनेमें समर्थ होते हैं।

८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पहिले कहे हुए स्वजनों और सम्बन्धियोंको इस प्रकार वशमें न कर सके तो मित्र भी शत्रु होजावें, इससे सबका चित्त किस प्रकार वशीभूत होगा?

भीष्म बोले, इस विषयमें पण्डित लोग श्रीकृष्ण और देवऋषि नारदके सम्वाद युक्त जिस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं, उसे कहता हूं सुनो। एक बार श्रीकृष्ण देवर्षि नारदसे बोले, हे नारद! अमित्र और मूर्ख मित्र, तथा चटु प्रकृतिवाले पण्डित सुहृदके निकट परम मन्त्र प्रकाशित करना उचित नहीं है। हे त्रिदिवङ्गम! इससे मैं तुम्हारे सब बल, बुद्धिको देखके तुम्हें ही उत्तम मित्र समझके कोई विषय कहता हूं और प्रश्न करता हूं। हे देवर्षि ऐश्वर्य्यवादके कारण जिसमें जातिके लोगोंको उपार्जित वस्तुओंमेंसे आधा हिस्सा देना होगा और उन लोगोंके दुर्व्वचनोंको सहना पड़ेगा; इस प्रकार जातिकी सेवाका मैं कभी नहीं करता; तौभी जैसे पुरुष अग्निकी इच्छासे अरणी काठ मथते हैं; वैसे ही उन लोगोंके कहे हुए कठोर बचनसे मेरा हृदय सदा भस्म हुआ करता है। सङ्कर्षण बलसे, गद सुकुमारता और प्रद्युम्न रूपसे मतवाले हुए हैं; इससे मैं आहुक और अक्रूरको शान्त्वनासे असहाय हुआ हूं। दूसरे जो सब महाभाग, बलवान उत्साहयुक्त, सदा उन्नतिशाली पुरुष अन्धक और वृष्णिकुलमें विद्यमान हैं, वे लोग

ऐसा समझते हैं, कि हम लोग जिस ओर होंगे वही पक्ष बलसे युक्त, और हम लोग जिसके विरुद्ध होंगे, वही पक्ष निर्ब्बल होगा। आहुक और अक्रूर दोनोंने मुझे निवारण किया है; इससे मैं एक पक्षको नहीं स्वीकार कर सकता हूं। इसके अतिरिक्त आहुक और अक्रूर दोनों ही पराक्रमी तथा कठिन कर्म्म करनेवाले हैं, इससे वे लोग जिस ओर रहेंगे, उसकी अपेक्षा दुखदायक कुछ भी नहीं है, और जिसकी ओर न रहेंगे, उसे भी उससे अधिक दुःखका विषय कुछ भी नहीं हो सकता। हे महाबुद्धि-मान्! कितव अर्थात् जुवाड़ी पुरुषकी माताकी भांति मैं एककी जय और दूसरोंके पराजयकी इच्छा करता हूं। हे नारद! मैं दोनों ओरसे सदा इसी प्रकार क्लेश पाता हूं; इससे इस विषयमें मेरा और जातिके लोगोंका जिसमें कल्याण हो; वह तुम्हें कहना उचित है।

नारद मुनि बोले, हे वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए कृष्ण! आपदा वाह्य और अभ्यन्तर रूपसे दो प्रकारकी हैं, वह स्वभाव तथा दूसरे कारणोंसे उत्पन्न हुआ करती है। अर्थ, काम और विभत्स वचन-निवन्धनसे अक्रूर, और भोजप्रभव सङ्कर्षण आदि सब लोग अक्रूरके अनुगत हुए हैं, इसहीसे यह अभ्यन्तर आपदा तुम्हें दुःखदायक हुई है; और तुमने निज ऐश्वर्य्य आहुकको दे रखा है, इसीसे ज्ञातिके बीच कोलाहल मचा है; वान्त अन्नकी भांति उसे भी तुम फिर नहीं ग्रहण कर सकते हो; इससे निज कर्म्मके दोषसे ही ऐसी आपद उत्पन्न हुई है। विशेष करके जाति भेदके भयसे अब तुम बभ्रु और उग्रसेनके राज्यको किसी प्रकार भी ग्रहण नहीं कर सकते हो। यद्यपि तुम यत्नपूर्व्वक अधिक कठिन कार्य्योंको करके उसे साधन करो तो ऐसा होनेसे फिर महाक्षय व्यय और विनाश उपस्थित होगा। इससे तितिक्षा, ऋजुता, और मृदुतासे दोष दूर करके तथा यथायोग्य पूजा आदिसे प्रीति गुणके सहारे अनायास ही मृदु मर्म्मभेद शस्त्रसे सबकी जिह्वाका उद्धार करो।

श्रीकृष्ण बोले, हे मुनिवर! तितिक्षा आदि ऐसे दोषोंको दूर कर और यथा उचित पूजासे प्रीति गुण सिद्ध करके जिस भांति जातिके पुरु-षोंकी जिह्वा उद्धार करनी होती है। वह मृदु अनायास शस्त्र क्या है?

नारद मुनि बोले, सामर्थ्यके अनुसार सदा अन्नदान, तितिक्षा, सरलता, कोमलता और यथा योग्य दूसरेकी पूजा इन सबको ही अना-यास शस्त्र जानना चाहिये। तुम मीठे वचनसे लघु और कटुवादी जातिके पुरुषोंके कुटिल अभिप्राय कुवाक्य और दुष्ट सङ्कल्पोंको नष्ट करो। और महापुरुषके अतिरिक्त कोई अस-हायवान तथा असावधान पुरुष उद्योगी होकर बड़े भारको उठानेमें समर्थ नहीं होता। इससे तुम निज वक्षस्थल पर उस भारको ग्रहण करो। देखो, समतल स्थानमें सब अनगन ही गुरुभार उठा सकते हैं; परन्तु कठिन स्थानमें भलीभांति दृढ़ अङ्गसे युक्त अनड्वानके अतिरिक्त सब ही कठिनतासे उठाने योग्य भारको नहीं ढो सकते। हे कृष्ण! तुम सबके मुखिया हो, ज्ञाति भेद होनेसे सबका ही नाश होगा; इससे ये जातिके लोग तुम्हारा आसरा करके जिसमें नाश दशाको न प्राप्त हों, वही उपाय करो। बुद्धि, शान्ति, इन्द्रियनिग्रह और धन त्यागके अतिरिक्त बुद्धिमान पुरुषमें कोई गुण नहीं रहते। हे कृष्ण! इससे जिसमें धन, यश, आयु और सदा स्वपक्षकी बढ़ती हो तथा जातिके पुरुषोंका नाश न होवे, वही करो। हे प्रभु! आयति, तत्काल यात्रा और यान विधिमें षाड्गुण्य-विधानके कारण तुमसे कुछ भी नहीं छिपे हैं, हे महाबाहो माधव! यादव, कुकुर, भोज, अन्धक वृष्णि और दूसरे लोकपाल तथा ऋषि लोग तुममें अनुरक्त होकर तुम्हारे ही वृद्धिकी अभिलाषा करते हैं। तुम सब प्राणि-

योंके गुरु हो ; तुम्हीं प्राणियोंके भूत भविष्य सब विषयोंको जानते हो ; तुम यदुकुलमें श्रेष्ठ हो ; इससे यदुवंशी लोग तुम्हें प्राप्त करके ही सुख भोग कर रहे हैं।

८१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत ! मैंने जो कुछ कहा, वह राजाओंकी प्रथम वृत्ति है. इसके अनन्तर दूसरी वृत्ति कहता हूं सुनो। हे भरतकुल अवतंस ! कोई मनुष्य धन उपार्जन क्यों न करें ; राजा उसे सदा सर्व्वदा रक्षा करे। हे युधिष्ठिर ! सेवकोंके राजभण्डार हरने और नष्ट करने पर जो कोई मनुष्य वह वृत्तान्त राजासे कहे, राजा निर्ज्जन स्थानमें उसका वह वचन सुने और सेवकोंसे रक्षित स्थानमें उसका वह वचन सुने और सेवकोंसे उसकी रक्षा करे ; क्योंकि धन हरनेवाले सेवक लोग सबका ही नाश किया करते हैं। हे नरनाथ ! कालक-वृक्षीय मुनिने कौशल्यसे जो वृत्तान्त कहा था, पण्डित लोग इस स्थलमें भी उस प्राचीन इतिहासको वर्णन किया करते हैं। मैंने ऐसा सुना है, कि कालक-वृक्षीय मुनिने कौशलाधिपतिकी सेवकोंके दोष देखनेके निमित्त बारबार प्रवर्त्तित करनेकी अभिलाषासे पिञ्जरेके भीतर एक कौआ बन्द करके क्षेमदर्शी कौशलाधिपतिके सम्पूर्ण राज्यमें घूमते हुए राजाके समीप आके बोले,—मेरा कौवा सब विद्या पढ़ा है, इससे यह भूत, वर्त्तमान और भविष्यति आदि सब कहा करता है। उन्होंने ऐसा ही कहते हुए अनेक पुरुषोंके सङ्ग राज्यमें भ्रमण करके राज कार्य्यमें नियुक्त सेवकोंका स्वामि- द्रव्य हरण रूपी पाप देखा। अनन्तर उन्होंने उस राज्यके समस्त व्यवसाय और राज कार्य्यमें नियुक्त सब सेवकोंको स्वामि द्रव्य हरनेवाला जानके मैंने सब जान लिया है, ऐसा ही कहते कहते राजासे भेंट करनेके वास्ते कौवा लेकर राजाके समीप आगमन किया। मुनिने क्षेमदर्शी कौशल्यके निकट आके उनके सम्मुख कौवाके वचनके अनुसार अलंकृत राज मन्त्रीसे बोले, कि तुमने अमुक स्थानमें इतना धन हरण किया है ; और जिस राजकोषको हर रहे हो, उसे अमुक अमुक पुरुष जानते हैं, यह कौवा ऐसा वचन कहता है ; इससे तुम शीघ्र उसे विचारके देखो। अनन्तर मुनिने मन्त्रियोंसे ऐसा ही कहके उस स्थानमें दूसरे राजपुरुषोंसे कहा, तुम लोग भी जो राजकोष हरनेवाले हो, कौवेके वचनके अनुसार उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं ; क्योंकि इस कौवेका मिथ्या वचन मैंने कभी भी नहीं सुना है। हे कुरुकुल धुरन्धर ! कालक वृक्षीय इसी भांति कौशल्यके सेवकोंका यथा योग्य तिरस्कार करके सन्ध्याके समय निद्रित हुए ; तब सब राजपुरुषोंने मिलके बाणसे उनके कौवेको विद्ध किया। अनन्तर बहुत भोरके समय उठकर ब्राह्मणने पिञ्जरेमें कौवाको बाणसे विद्ध देखके क्षेमदर्शी कौशल्यसे कहा। हे राजन् ! आप स्वामी और प्राण-धनके ईश्वर हैं ; इससे आपके समीप मैं अभय प्रार्थना करता हूं। महाराज ! आपकी आज्ञा-सेही मैंने सब भांतिकी शक्ति और यत्नके सहित तुम्हारे समीप आके आपके हितकर वचन कहा था, उससे अपने मित्रके नष्ट होनेसे मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं। उत्तम घोड़ेको सिखानेवाले सारथीकी भांति यदि कोई मित्रको प्रबोधित करनेकी अभिलाषासे क्षमा-रहित होके तुम्हारा यह धन हरण हुआ है, ऐसा वचन कहे और मित्रके हितके वास्ते अत्यन्त क्रुद्ध होके हितसाधनमें प्रवृत्त हो ; तो ऐसा होनेपर नित्य ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले स्वजन पुरुषको वैसे मित्र और उसके वचनको क्षमा करना उचित है। परन्तु असावधान होके दूसरेसे वैसे मित्रको नष्ट कराना उचित

नहीं है। क्षेमदर्शी कालक-वृक्षीयका ऐसा वचन सुनके बोले, मैं अपने हितकी इच्छा किया करता हूं। इससे मेरे हितके वास्ते आप मुझे जो कुछ कहेंगे, उसे मैं क्यों न क्षमा करूंगा।

हे ब्राह्मण! आप इस विषयमें जो कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं, उसे कहिये। हे विप्र! मैं आपके समीप यह प्रतिज्ञा करता हूं, कि आप मुझे जो कहेंगे, मैं आपको वह इच्छा सफल करूंगा।

कालक-वृक्षीय मुनि बोले, महाराज! मैंने आपके सेवकोंका दोषादोष और उनसे अपनेको भय प्राप्त होना मालूम करके उनका व्यवहार आपसे कहनेके वास्ते भक्तिपूर्व्वक आपके समीप आगमन किया था; वह मेरा उचित कार्य्य नहीं हुआ है; क्योंकि इस ही कारण पहिले समयमें पूर्व-आचार्य्योंने राजसेवक पुरुषोंका इस प्रकार दोष कहा है, कि जो लोग राजसेवा करते हैं, उन लोगोंकी ऐसी पापजनक अगतीक गति अर्थात् अनुपायु मनुष्यकी भांति गति हुआ करती है। और भी पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजाके साथ जो लोग आसक्त होते हैं, उनकी विषधारी सर्पके साथ आसक्त होना समझा जाता है, क्यों कि बहुतसे मित्र और अनेक शत्रु राजाओंके समीप विद्यमान रहते हैं। हे राजन्! इससे राजसेवा करनेवाले पुरुष राजकीय मित्र, शत्रु और राजाका सदा भय करें। हे राजन्! राजाके समीप एकबारगी प्रमाद करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता, इससे राजाके निकट ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको कभी प्रमाद करना उचित नहीं है; क्यों कि सेवकके प्रमादसे राजा कुपित होता है, राजाके ढिलाईसे उसके जीवनमें संशय उत्पन्न होता है। जलती हुई अग्निमें पड़नेवाले पुरुषकी भांति राजाके समीप शिक्षित पुरुषका भी जीवन नष्ट हुआ करता है। इससे पुरुष सदा जीनेकी आशा त्यागके क्रुद्ध सर्पकी भांति प्राणधनके स्वामी राजाके निकट गमन करे; और राजाके समीप कुवचन कहना, दुःखित भावसे स्थित होना, कुस्थानमें निवास निन्दित रीतिसे बैठना दुष्टताके सहित गमन करना, इङ्गित और अङ्गचेष्टित इन सब कार्य्योंमें सदा शङ्का करे। हे राजन्! यमने ऐसा कहा है, कि राजा प्रसन्न होनेसे देवताकी भांति सब अर्थ सिद्ध करता और क्रुद्ध होनेसे अग्निकी भांति जड़ सहित भस्म करता है; इससे जो पुरुष राजाके निकट यथा नियमसे निवास करेगा मैं उत्तरोत्तर उसकी समृद्धिकी बढ़ती करूंगा। महाराज! मेरे समान सेवक ही आपदकालमें बुद्धिकी सहायता प्रदान किया करते हैं, मेरा कौवा जैसा कार्य्यकारी था, मैं भी वैसा ही कार्य्य कर सकता हूं, परन्तु तुम्हारे सेवक लोग कौवेकी भांति मुझे भी नष्ट करेंगे ऐसा ही मुझे सन्देह होरहा है। मैं इस विषयमें आपकी निन्दा नहीं करता, परन्तु आप जो सेवकोंके प्रियपात्र नहीं हैं, वही कहता हूं। इसके अनन्तर आप हिताहितका विचार करके अपने सम्मुख ही सब कार्य्योंको सिद्ध कीजियेगा, महाराज! आपके गृहमें कोष हरण करनेवाले जो सब सेवक निवास कर रहे हैं, प्रजाके अमङ्गलकी इच्छा करनेवाले उन्हीं सब सेवकोंने मुझसे शत्रुताचरण किया है, और जो आपके अभावमें राज्य प्राप्त करेगा, उसने आपके प्राण नाशके वास्ते रसोई बनानेवालोंके जरिये अन्नादिकोंमें विष डालनेकी इच्छाकी है, आप यदि सावधान न होंगे, तो उन लोगोंको वह अभिसन्धि सिद्ध होगी। महाराज! मैंने उन लोगोंके डरसे दूसरे आश्रममें गमन करनेकी इच्छाकी है। उन लोगोंने मेरे वास्ते जो बाण चलाया था, उससे मेरा कौवा मरा है। मैं निष्कामी और वे लोग छद्मकामी हैं; इससे उन लोगोंने ही जो मेरे कौवेको यमपु-

रोमें मेगा है, उसे मैं तपमय बड़े नेत्रसे स्पष्ट-रूपसे देख रहा हूं। हे राजन्! स्थाणु, पत्थर और कांटेसे युक्त, सिंह और बाघोंसे परिपूरित, भयङ्कर और दुःखसे प्रवेश करने योग्य गुफाकी भांति अनेक मकर, मच्छ और घड़ियालोंसे घिरे हुए, तिमिङ्गिल समूहसे परिपूर्ण यह राजनीति रूपी महानदीसे, मैं तर्किया रूपी नौकेके जरिये पार हुआ हूं। महाराज! दीपकसे अन्धार युक्त किला और नौकासे पुरुष जलदुर्गके पार हो सकता है, परन्तु पण्डित लोग भी राज दुर्गके पार होनेकी उपाय निश्चय नहीं कर सकते। आपका राज्य अन्धकारकी भांति तम युक्त अर्थात् धर्म्माधर्म्म रहित और अत्यन्त अगम है; अतएव आप जब इसमें विश्वास करनेमें समर्थ नहीं होते, तब मैं किस प्रकार विश्वास करूंगा। इस राजमें जब पाप और पुण्य दोनों ही समान हैं, तब इस स्थानमें वास करना कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि स्थलमें सुकृत और दुष्कृत दोनोंका ही निश्चय विनाश होगा। दुष्कृतका विनाश ही न्याय है; इससे इस स्थानमें स्थिरभावसे निवास करना युक्ति नहीं है; इससे जो पण्डित हैं; वे इस स्थानसे शीघ्र ही भाग जावें। हे राजन्! जिसमें सब नौका डूब जाती हैं, उस सीता नाम्नी नदीकी भांति आपकी यह राजनीति सर्व्वघातिनी वा गुरा रूपसे मुझे मालूम होरही है। हे राजन्! आप मधु प्रतापके समान परन्तु भोजनमें विषकी भांति हैं; आपके अभिप्राय मिथ्याकी भांति हैं, सदभिप्राय आपमें कुछ भी नहीं है; इससे आप मुझे सर्पसे युक्त कूएंकी भांति मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! आप दुर्गम तीर्थ युक्त बड़े किनारे तथा बत संयुक्त मीठे जलसे परिपूरित नदी और कुत्ते, गिद्ध तथा सियारोंसे घिरे हुए राज हंसकी भांति मालूम होरहे हैं। महाराज! कक्ष अर्थात् तृण लता आदि सब महावृक्षोंके आसरेसे बढ़के उसे आवरण करते हुए क्रमसे उस वृक्षको अतिक्रम करके बढ़ने पर भी प्रचण्ड दावाग्निके लगनेसे महाकक्षके सहित जैसे वह वृक्ष भस्म हो जाता है, वैसे ही कक्ष तुल्य सेवकों सहित आप भी नष्ट होंगे; इससे आप उन सेवकोंकी परीक्षा करिये, आप ही उन लोगोंको सेवक पदवी पर नियुक्त करके प्रतिपालन कर रहे हैं; परन्तु वे लोग आपको अभिसन्धान करके तुम्हारे सब इष्ट विषयको नष्ट करनेकी अभिलाषा करते हैं। इसही कारण मैं सहजीवी राजाके समस्त स्वभावके जाननेकी इच्छा करके प्रमादको सब भांतिसे रक्षा करते हुए सर्पसे युक्त गृह और वीर पक्षीके स्थानकी भांति इस राज शङ्कित चित्तसे निवास करता हूं। हे राज सत्तम! राजा जितेन्द्रिय है, वा नहीं? इसने कामादिकोंको जय किया है वा नहीं? यह सेवकोंको प्रिय है, या नहीं और सब प्रजा इसे प्यारी है, वा नहीं? यह सब जाननेके ही वास्ते मैंने आपके समीप आगमन किया है। हे राजन्! भूखे पुरुषके भोजनीय वस्तुकी भांति आप मेरे अभिलषित हुए हैं; परन्तु आपके सेवक लोग प्यास रहित पुरुषके वास्ते जलकी भांति मेरे अनलाषित हुए हैं। आप यह निश्चय जान रखो, कि इस ही कारण वे लोग "मैं आपका अर्थकारी हूं,"—ऐसा दोष मेरे ऊपर आरोपित कर रहे हैं; दूसरा कोई कारण ही मुझमें विद्यमान नहीं है। मैंने उन लोगोंका कुछ भी अनिष्ट आचरण नहीं किया है; तौभी जब वे लोग मेरे दोषदर्शी हुए हैं। तब अब मुझे इस स्थानमें निवास करना उचित नहीं है; क्यों कि पूंछ दाबनेसे क्रुद्ध हुए सर्पकी भांति दुष्ट चित्तवाले शत्रुओंसे सदा शङ्का करनी उचित है।

राजा बोले, हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! मैं बहुतसा परिहार स्वीकार करके अधिक आदरके सहित आपकी पूजा करता हूं; आप मेरे गृहमें बहुत

दिनों तक निवास कीजिये। हे ब्राह्मण! मेरे सेवकोंके बीच जो लोग आपके साथ अनुकूल आचरण नहीं करेंगे, वे मेरे गृहमें न रहने पावेंगे। अनन्तर इन लोगोंकी जैसी दशा होगी उसे आप ही जान सकेंगे। हे भगवन्! जिससे दण्ड उत्तम रीतिसे धारण और सुकृत कर्म्म भली भांति सिद्ध हों, उस विषयमें विशेष समालोचना करके कल्याणके वास्ते मुझे नियुक्त कीजिये।

मुनि बोले, पहिले कौवाके बधके कारण यह दोष देखकर एक एक सेवकोंको क्रमसे निर्ब्बल अर्थात् ऐश्वर्य्य च्युत कीजिये। अनन्तर कौवाके बधका वृत्तान्त विशेष रूपसे जानके एक एक करके उन लोगोंका बध करिये। हे राजन्! बहुतसे मनुष्य एक ही दोषसे दूषित होने पर सब कोई मिलके अत्यन्त तीच्छ काँटेको भी कोमल किया करते हैं; इससे यदि मन्त्रभेद होवे, इस ही कारण मैं आपसे ऐसा कहता हूं। मैं ब्राह्मण जाति स्वभावसे ही दयालु हूं इससे हमारा दण्ड अत्यन्त कोमल है; अपनी भांति दूसरेका तथा आपके मङ्गलकी अभिलाषा किया करता हूं। हे राजन्! आपके सङ्ग मेरा जैसा सम्बन्ध है, आपको उसका परिचय देता हूं; मेरा नाम कालकवृक्षीय कहके प्रसिद्ध है। मुझे सत्यप्रतिज्ञ समझके तुम्हारे पिता मेरा मित्रके समान सम्मान करते थे; जब वे परलोकको गये, उस समय मैं सब कामना त्यागके तपस्या कर रहा था। अनन्तर आपका राज्य विपदग्रस्त होनेसे मैं यहां आया हूं, और उस ही प्रीतिके कारण आपको बार बार यह बचन कहता हूं, इससे अब आप अनाप्त पुरुषमें आत्म बुद्धि न कीजिये। आपने इच्छानुसार राज्य लाभ किया है और सुख दुःख दोनोंकी ही विद्यमान देख रहे हो, तौभी क्यों इस प्रकार सेवकोंके ऊपर राज्य भार सौंपकर प्रमादग्रस्त होते हो? हे राजन्! पण्डित लोग कहा करते हैं, कि राजकुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय और पुरोहित कुलमें पैदा हुए उत्तम ब्राह्मणोंको ही यत्न पूर्व्वक सेवक पदवी पर प्रतिष्ठित करे।

हे युधिष्ठिर! कालक वृक्षीय मुनि इसी भांति यशस्वी कौशल्यके समुद्र पर्य्यन्त सब पृथ्वीको एकछत्री करके अत्यन्त उत्तम यज्ञादि कार्य्य किया और कौशल्यराज उनका ऐसा हितकर बचन सुनके पृथ्वी जय करके उनकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करने लगे।

८२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! कैसे पुरुष राजाके सभासद, सहायक सुहृद परिच्छद और सेवक होंगे?

भीष्म बोले, हे भारत! जो लोग लज्जाशील, जितेन्द्रिय, सत्य और सरलतासे युक्त तथा प्रिय और अप्रिय बचनको पूरी रीतिसे कहनेमें समर्थ हैं, वैसेही पुरुषोंको तुम सभासद करना। हे कौन्तेय! जो सदा समीप रहते, पराक्रमी अत्यन्त ही श्रवण शक्तिसे युक्त, सन्तुष्ट, ब्राह्मण और सब कर्म्मोंमें महोत्सवसे सम्पन्न हैं, उन्हें ही आपदके समय सहायक बनाना। जो कुलीन, सदा सम्माननीय निज शक्तिको छिपाते नहीं और प्रसन्न, अप्रसन्न, पीड़ित वा मरे हुए सेवकोंको सब भांतिसे आवर्त्तित करते हैं, उन्हें ही सुहृतमित्र समझे। जो कुलीन, स्वदेशज, बुद्धिवान, रूपवान, बहुश्रुत, प्रगल्भ और अनुरक्त हैं, उन्हें ही परिच्छद कार्य्यमें नियुक्त करे। हे तात! जो लोग दुष्ट कुलोंमें उत्पन्न हुए, लोभी, नृशंस और निर्लज्ज हैं, वे लोग जब तक गोलाहाथ अर्थात् धनवान रहेंगे, तभीतक सेवा करेंगे सूंके हाथ होने पर उस ही समय टेढ़े होकर फिर तुम्हारी सेवा न करेंगे; इससे उन्हें परिच्छद कार्य्यपर नियत करना उचित

नहीं है; और जो लोग कुलीन, सत्‌स्वभाव युक्त, दृढ़तत्त्व, निठुरतारहित; देश, काल और उपाय जाननेवाले तथा स्वामि-कार्य्य हितैषी हैं, उन्हें सब कार्य्योंमें सेवक बनाना। जिन्हें प्रियपात्र समझके अर्थ, मान, दिव्यवस्त्र और पान आदि दान तथा सत्कार आदि अनेक भांतिके भोगसे प्रतिपालन करे; वेही अर्थ और सुख भागी होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिसकी चित्तवृत्ति किसी प्रकार विचलित नहीं होती और जो लोग विद्वान् सद्वृत्त, व्रत करनेवाले, सत्यवादी, और अक्षुद्र हैं, वेही नित्यार्थी अर्थात् सदा स्वामीकी अर्थ चिन्ता करते और आपदकालमें स्वामीको कभी नहीं त्यागते। और जो अनाढ्य, अधार्म्मिक, मन्दबुद्धि तथा मर्य्यादाहीन हैं, उन लोगोंके निकट समय अर्थात् धर्म्माधर्म्मकी सब भांतिसे रक्षा करे। सबके बीच अन्यतर ग्रहण करना हो, तो गण परित्याग करके एक पुरुषके ग्रहण करनेकी इच्छा न करे; परन्तु एक पुरुष गण अर्थात् सबमें मुख्य होनेपर समूहका त्यागके भी एक पुरुषको ग्रहण करना उचित है। जो उत्तम कीर्त्ति और युद्धमें स्थित होके विक्रम दिखाते हैं, उसीहीं उनकी साधु लक्षण समझे। और जो समर्थ पुरुषका सम्मान करते, स्पर्द्धा-हीन पुरुषके विषयमें स्पर्द्धा नहीं करते, काम, क्रोध, भय और लोभके वशमें होकर धर्म्म नहीं त्यागते, तथा अभिमान रहित, सत्यवादी, क्षमा-शील, जितात्मा, मानी और सब अवस्थामें ही परीक्षायुक्त हैं, वेही तुम्हारे मन्त्र सहायक होवें। हे पार्थ! जो कुलीन, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए, क्षमाशील, पटु, ऊंचे चित्त, शूर, कृतज्ञ और सत्य धर्म्मसे युक्त हैं, वेही साधु हैं; क्योंकि यही सब गुण साधुओंके लक्षण करके प्रसिद्ध हैं। राजन्! इसी भांति बुद्धिमान पुरुष यदि राजाके निकट विद्यमान रहें, तो शत्रु भी प्रसन्न होके मित्रकी भांति व्यवहार किया करते हैं; इससे जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् भूति-काम राजा ऐसे सेवकोंके अतिरिक्त अन्य सेवकोंके समस्त गुण दोषोंकी परीक्षा करे। हे राजन्! उन्नति शील, ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले राजा लोग आत्मीय, कुलीन, स्वदेशीय, स्रक् चन्दन आदि विषयोंके वशमें न होनेवाले, व्यभिचार रहित और भलीभांति परीक्षा किये हुए पुरुषोंके साथ सम्बन्ध और अत्यन्त श्रेष्ठ योनिसे उत्पन्न हुए वेद जाननेवाले, परम परागत और अभिमानरहित मनुष्योंकोही मन्त्री करे जिसमें बुद्धि विनय युक्त, उत्तम स्वभाव, तेज, धीरज, क्षमा, पवित्रता, अनुराग, मर्य्यादा और धारणा ये सब गुण विद्यमान हैं, राजा उन लोगोंके ऊपर कहे हुए गुणोंकी सदा परीक्षा करके मजबूत, धुरन्धर, कपट रहित पांच पुरुषोंको अर्थ कार्य्य पर नियुक्त करे। । हे राजन् जो लोग पर्य्याप्तवादी, वीर, प्रतिपत्ति विशारद, कुलीन, सत्यसे युक्त, दृढ़तत्त्व, निठुरता रहित, देश काल और उपायके जाननेवाले तथा स्वामि कार्य्य हितैषी हैं, राजा उन्हें सब कार्य्योंमें ही मन्त्री करे। हे राजन्! जो पुरुष तेजरहित मित्रके साथ सम्बन्ध रखता है, वह कभी कर्त्त-व्या-कर्त्तव्य विषयकी निश्चय करनेमें समर्थ नहीं होता; बल्कि सब कार्य्योंमें ही संशय उत्पन्न किया करता है, इससे राजा ऐसे मनुष्यको कभी अपना मन्त्री न करे। और अल्प-श्रुत मनुष्य उत्तमकुलमें उत्पन्न और धर्म्म, काम इस त्रिवर्गसे युक्त होनेपर भी वह मन्त्र परीक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता, इससे उसे सेवक पदपर नियत करना उचित नहीं है, और नीच कुलमें उत्पन्न हुआ पुरुष अच्छे प्रकार बहुश्रुत होनेपर भी अनायक अन्धेकी भांति सूक्ष्मकर्म्ममें मोहित हुआ करता है; इससे राजा उसे सेवक पदपर नियुक्त न करे। अस्थिर सङ्कल्पवाला पुरुष बुद्धिमान, शास्त्रवित और उपाय जाननेवाला होनेपर भी बहुत समय तक कार्य्य

सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होता। इस संसारमें जो नीच बुद्धि मनुष्य कर्म्मके विशेष फलको न जानके केवल मात्रकर्म्म करते हैं, उनकी सलाह नहीं ग्रहण की जा सकती। विरक्त मन्त्रीका विश्वास करना युक्तियुक्त नहीं है, इससे विरक्त मन्त्रीके समीप कभी विचार प्रकाश न करे; क्यों कि जैसे अनिल वृक्षके छिद्रसे प्रवेश करके अग्निकी भांति उसे भस्म करता है, वैसे ही वह कपटी मन्त्री दूसरे मन्त्रियोंके साथ मिलके राजाको दुःखित किया करता है। स्वामी कभी क्रुध होके मन्त्रीको स्थानसे च्युत करता, अथवा वचनसे निन्दा करके फिर उसके ऊपर प्रसन्न हुआ करता है; परन्तु अनुरक्त मित्र ही स्वामीके वह सब उपद्रव सह सकते हैं; और विरक्त मित्र उसे किसी प्रकार नहीं सह सकता वल्कि उसका क्रोध वज्र शस्त्रके समान होता है जो मन्त्री राजाके प्रिय-कामनासे उसके उन सब उपद्रवोंको नष्ट कर सकता है, राजा समान सुख दुःख भागी उस ही मनुष्यसे अर्थ विषयमें सलाह प्रश्न किया करता है।

हे राजन्! सरलता-रहित मनुष्य इतर गुणोंसे युक्त होनेपर भी राजाके विचारको सुनने योग्य नहीं होसकते जो मनुष्य शत्रुसे सम्बन्ध करके पुरवासियोंका आदर नहीं करता वैसा पुरुष शत्रुसमान गिना जाता है और वह सलाह सुननेके योग्य नहीं है। मूर्ख, अपवित्र, लुब्ध, शत्रुकी सेवा करनेवाले, अपनी बड़ाई करनेवाले, अमित्र, क्रोधी और लोभी ये सब राजाके मन्त्रणा सुननेके योग्य नहीं होसकते। आगन्तुक पुरुष अनुरक्त, बहुश्रुत, सत्कृत और संविभक्त होनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। पहिले जिसका पिता अधर्म्म आचरणके वशमें होकर कुस्वभावसे युक्त हुआ है, वह पुरुष सत्कृत और स्थापित होनेपर भी विचार सुननेके योग्य नहीं होसकता। जो पुरुष तनिक कार्य्यके वास्ते सुहृदका सर्व्वस्व हरके उसे निर्द्धन करता है, वह दूसरे अनेक गुणोंसे युक्त रहनेपर भी सलाह सुननेके योग्य नहीं होसकता। और जो मनुष्य कृतप्रज्ञ, मेधावी, पण्डित, जनपदवासी, परम पवित्र और सब कार्य्योंमें शुद्धतायुक्त हैं, वे पुरुष ही राजाके विचारको सुननेके योग्य होसकते हैं। जो पुरुष ज्ञान, विज्ञानसे युक्त, शत्रुके और अपने स्वभावको आत्मसदृश समझता है, वही पुरुष मन्त्रणा सुननेके योग्य होसकता है। जो पुरुष सत्यवादी सुशील, गम्भीर अर्थात् मन्त्र गोपन करनेमें समर्थ, लज्जाशील, कोमलता युक्त और पिता-पितामहके क्रमसे विद्यमान रहता है, वह पुरुष ही सलाह सुन सकता है जो मनुष्य सन्तुष्ट, सर्व्वसम्मत, सत्यधर्म्मवाला, प्रगल्भ पापद्वेषी, मन्त्रवित्, त्रिकालज्ञ और शूर है, वही पुरुष सलाह सुननेका योग्यपात्र है। हे राजन्! जो मनुष्य शान्तवचनसे सबको वशमें करनेमें समर्थ हो, दण्डधारी राजा उससे ही सलाह करे। पुर और जनपदवासी लोग जिसका धर्म्म पूर्व्वक विश्वास करें वही योद्धा, नीतिज्ञ पण्डित पुरुष सलाह सुननेके योग्य होसकता है। हे राजन्! इससे पहिले कहे हुए महत् आश्रय पांच जन मन्त्री ऐसे गुणोंसे युक्त हों, तो उन्हें सम्मानके सहित राजकार्य्यमें नियुक्त कर रखे; परन्तु पांचजन न पानेसे तीन पुरुषसे कम न रखे। स्वामीको चाहिये सेवकोंको निज स्वभावसे मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अवसर दानरूपी छिद्रों और शत्रुओंके छिद्रोंका सदा लक्ष्य करता रहे; क्यों कि राजाओंका मन्त्र ही मूल है मन्त्रसे ही राष्ट्र विशेष रूपसे वृद्धिको प्राप्त होता है। अपना छिद्र जिसमें शत्रुपक्षवाले न देख सकें, उसी भांति निज छिद्रको छिपाते हुए शत्रुओंके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, जैसे कछुवा अपना सब शरीर सिकोड़ लेता है, वैसे ही अपना छिद्र गोपन करे। राजाके मत्ता बुद्धिमान मन्त्री लोग सब विचार गुप्त

रखें, राजा मन्त्ररूपी कवच धारण करे और शूरवीर पुरुष मन्त्राङ्गोंकी रक्षा करें। श्रेष्ठ बुद्धिवाले पण्डित लोग दूतको राज्यका मूल और मन्त्रको राज्यका सार कहा करते हैं; परन्तु स्वामी और मन्त्री लोग अभिमान, क्रोध, मान तथा ईर्षारहित होकर वृत्तिके वास्ते यदि आपसमें एक दूसरेके अनुवर्त्ती हों, तो वे सब कोई सुखी हुआ करते हैं। पांच भांतिके छलरहित सेवकोंके साथ सदा विचार करे, और पहिले कहे हुए तीनों मन्त्रियोंके अनेक परामर्श तथा उनके चित्तको विशेष रूपसे मालूम करके अपना तथा उन लोगोंका निश्चित मत स्थिर करके सलाहके अनन्तर उसे प्रकाशित करे। परन्तु यदि स्वयं असमर्थ हो तो सलाहके वास्ते धर्म, अर्थ और कामके जाननेवाले ब्राह्मण गुरुके समीप जाके उनसे वह विषय पूंछे यदि उनके सङ्ग मतकी एकता होवे, तो उस ही विचारको कार्य्यमें नियुक्त करे। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि इसी भांति जो लोग मन्त्रके यथार्थ अर्थ और निश्चयको विशेष रूपसे जानते हैं; उनके साथ सदा विचार करके प्रजा संग्रहमें समर्थ उस मन्त्रको सदा प्रणयन कार्य्यमें नियुक्त करना उचित है। जिस स्थानमें सलाह करे, उसके आगे, पीछे, ऊपर, नीचे और तिर्य्यग् देशमें बौने, कुबड़े, कृश, गञ्ज अन्धे, जड़, स्त्री और नपुंसक ये सब किसी भांति भी आने जाने न पावें। और कोठेमें चढ़के कुश काश रहित प्रकाशमान निर्जन स्थानमें गमन करके ऊंचे तथा भयानक वचन दोष और वक्त्र विकार आदि सब अङ्गदोषोंको परित्याग करके जिसमें कार्य्यका समय न बीत जावे, उसी भांति विचार करे।

८३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस मन्त्र मूल प्रजा संग्रह विषयमें पण्डित लोग बृहस्पति और इन्द्रके सम्वादयुक्त जिस प्राचीन इतिहासका वर्णन किया करते हैं, वही मैं इस प्रकार कहता हूं सुनो।

एक बार इन्द्रने बृहस्पतिसे पूछा था, कि हे ब्रह्मन्! जिसमें सब गुण अन्तर्हित होते हैं, क्या वैसे कर्त्तव्य कार्य्यका यथारीतिसे आचरण करनेसे ही पुरुष सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश प्राप्त कर सकते हैं?

बृहस्पति बोले हे सुरराज! पुरुष शान्त्व अर्थात् सब गुणोंके आश्रय प्रिय वचनको यथार्थ रीतिसे आचरण करने पर सब प्राणियोंसे सम्मत महत् यश लाभ कर सकते है। हे इन्द्र! पुरुष सब लोगोंको सुखी करनेवाले इस सब गुणावलम्बी प्रिय वचनका आचरण करनेसे ही सदा सब प्राणियोंका प्रियपात्र हुआ करता है। जो पुरुष इस संसारमें शान्त-वचनका आचरण न करके सदा भृकुटी टेढ़े मुखसे निवास करके किसीके साथ कुछ वार्त्तालाप नहीं करता; वह सब प्राणियोंका द्वेषी हुआ करता है। जो राजा सब विषयको जानके किसी पुरुषके निज दुःख कहनेके पहिले ही "तुम किस वास्ते आये हो"—ऐसा पूछते और हंसके उसके साथ वार्त्तालाप करते हैं; उनपर सब लोग ही प्रसन्न हुआ करते हैं। सब ठौर प्रियवचन रहित दान व्यञ्जन हीन भोजनकी भांति प्राणियोंको तृप्त नहीं कर सकता। हे सुरराज! मीठा वचन कहके प्रजाका सर्वस्व ग्रहण करनेपर भी वे लोग रुष्ट नहीं होते; क्योंकि प्रियवचनसे सब लोग ही वशमें हो जाते हैं। इससे दण्डधारी राजा सदा शान्तवाक्य प्रयोग करे, क्योंकि शान्त ही फल उत्पन्न करता है, उससे कोई कभी व्याकुल नहीं होता। सुकृती पुरुषोंसे सेवित शान्त्व श्लक्ष्ण और मधुर वचनके समान कुछ भी नहीं है।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रने जैसे गुरु बृहस्पतिसे ऐसा सुनके उनके वचनके अनुसार

सब कार्य्य किये थे; वैसे ही तुम भी इन सबका पूरी रीतिसे आचरण करो

८४ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे राजेन्द्र! सब लोकमें राजा किस प्रकार प्रजापालन करनेसे धर्म्म विशेषके जरियेसे प्रीति अर्थात् स्वर्ग और नित्य-कीर्त्ति प्राप्त कर सकते हैं?

भीष्म बोले, राजा शुद्ध व्यवहारसे प्रजा पालनमें तत्पर होनेसे धर्म्म और नित्यकीर्त्ति लाभ करतेहुए पवित्र होकर दोनोंलोक प्राप्तकर सकते हैं। युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान्! राजा किस भांतिके व्यवहारसे कैसे लोगोंके साथ वर्त्ताव करे? यह पूछा हुआ विषय यथारीतिसे वर्णन करना आपको उचित है। आपने पहिले पुरुषोंके जो सब गुण वर्णन किये, मुझे मालूम होता है, कि वे सब गुण एक पुरुषमें विद्यमान नहीं रह सकते।

भीष्म बोले, हे महाबुद्धिमान्! तुम्हें मैं बुद्धिमान समझता हूं। तुमने जैसा वचन कहा वह वैसा ही है। ऐसे शुभ गुण किसी एक पुरुषमें विद्यमान रहने असम्भव हैं और इस लोकमें अत्यन्त यत्नसे भी सत्स्वभाव दुष्प्राप्य है तो भी तुम्हें जिस प्रकार जैसा सेवक करना होगा, उसे संक्षेपमें कहता हूं। वेद जाननेवाले प्रगल्भ, स्नातक और पवित्र चार ब्राह्मण, हाथमें अस्त्रधारण किए हुए आठ बलवान क्षत्रिय; वित्त-युक्त इक्कीस वैश्य, नित्य कर्म्ममें रत पवित्र और विनीत तीन शूद्र; सेवा, श्रवण, ग्रहण, धारण, ऊहन, उपोहन, विज्ञान और तत्वज्ञान इन आठ गुणोंसे युक्त प्रगल्भ अन-सूयक पचास वर्षीय श्रुति और स्मृतिसे युक्त, विनीत समदर्शी कार्य्यमें विवदमान पुरुषोंके बीच समर्थ अर्थ लोभ। और मृगया, जूआ, स्त्री, पान, दण्डपातन, वचनकी कठोरता तथा अर्थ दूषण आदि सात भांतिके घोर व्यसन वर्जित पौराणिक सूत एकजन—इन लोगोंको ही सेवक करे। परन्तु राजा चार ब्राह्मण, तीन शूद्र और एक सूत इन आठ मन्त्रियोंके बीच स्थित होके मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर उस ही विचारका राज्यके बीच प्रचार करके राष्ट्रीय पुरुषोंको मालूम कराना होगा; इस ही व्यवहारसे तुम सदा प्रजा समूहको देखना। तुम कभी कार्य्या-पघातक गूढ़ कार्य्य अर्थात् किसी पुरुषके न्यस्त विषयको राजकीय कहके ग्रहण न करना क्योंकि कार्य्य नष्टहोनेसे वह अधर्म्म अवश्य ही तुम्हें और मन्त्रियोंको पीड़ित करेगा और तुम्हारा राज्य समुद्रमें टूटी हुई नौका तथा बाजके समीपसे भागनेवाले पक्षीकी भांति तुम्हारे निकटसे दूसरी ओर गमन करेगा। हे पृथ्वीनाथ! जो राजा अधर्म्म आचरण करके पूर्णरीतिसे प्रजा-पालन नहीं करते, उनके हृदयमें भय उप-स्थित होता है, और उनका स्वर्ग लोक नष्ट हुआ करता है। हे नरेन्द्र धर्म्ममूल राज्यमें जो राजा, सेवक, अथवा राजपुत्र धर्म्मासन पर नियुक्त होकर अधर्म्मके अनुसार प्रजा पालन करते हैं, वे सब अधिकृत कार्य्योंको पूर्ण न कर-नेवाले अर्थात् जो बिना परीक्षा किये ही कार्य्य करते हैं, वे राजाके अनुगामी पुरुष स्वयं अगाडी होके राजाके सहित नरकगामी हुआ करते हैं।

हे राजेन्द्र! बलवान पुरुषसे पराजित दीनकी भांति बहुभाषी अनाथ मनुष्योंकी राजा सदा पालन करे। जब कि परीक्षा न करके कार्य्य करनेसे सेवकोंके सहित राजाकी अधो-गति होती है; तब उन सब व्यवहारोंकी विधिव रीतिसे परीक्षा करनी होगी, और दोनोंके विरुद्धवाद अर्थात् विवादास्पद वस्तु अस्वामिक और स्वामी रहित होनेपर साक्षीवश उत्तम प्रमाण होनेसे अपराधके अनुसार पापका दण्ड करना होगा; यदि धनी पुरुष पापी हो; तो

उसे धन लेके मुक्त करे और निर्धन पुरुष पापी हो, तो उसे कैद करे। राजा दुष्ट मनुष्योंको प्रहारसे शिक्षित करे और और शिष्ट पुरुषोंको शान्त वचनसे पालन करे। जो मनुष्य राजाके वधकी इच्छा करनेवाले, घर जलानेवाले, चोर और वर्णसङ्कर करनेवाले हैं, उनका विचित्र रीतिसे अर्थात् अनेक प्रकारसे वध करे। शास्त्रके अनुसार स्थित भूपतिको विचित्र वधरूपी दण्डप्रयोग करनेसे उसमें उसे अधर्म न होगा वरिक उससे शाश्वत धर्म्म ही होगा। जो मूर्ख राजा इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करते हैं; वे इस लोकमें अयशके पात्र होके मरनेके अनन्तर नरक लोक प्राप्त करते हैं। दूसरेके प्रवादमें अन्य पुरुषके ऊपर दण्ड प्रयोग न करे, शास्त्र और युक्तिके अवलम्बसे बन्धन तथा मुक्त करे। राजा किसी आपदमें भी दूतका कभी वध न करे, क्योंकि दूतके मारनेवाले राजा मन्त्रियोंके सहित नरकगामी हुआ करते हैं। क्षत्रधर्म्ममें रत जो राजा यथोक्त-वादी दूतका वध करते हैं, उसके पितर लोग भ्रूणहत्या पापके भागी हुआ करते हैं। जो पुरुष कुलीन, कुलयुक्त, वाग्मी, दक्ष, प्रियवचन कहनेवाला, यथोक्त वादी और स्मृतिमान हो, वही दूत होवे; और उसमें ये सातो गुण विद्यमान रहें और द्वारपाल, किला और नगर-रक्षकमें भी ये सातों गुण रहें। जिस पुरुषने धर्म्मशास्त्रके यथार्थ अर्थ, सन्धि विग्रहको विशेष रूपसे मालूम किया है और बुद्धिमान धैर्य्यशाली, लज्जाशील, रहस्य विषयोंको गोपन करनेवाला, कुलीन तथा पराक्रमसे युक्त है वही पुरुष ही प्रशंसनीय सेवक कहके गिना जाता है। और ऐसे ही गुणोंसे युक्त व्यूह यन्त्र तथा सब शस्त्रोंके तत्वको जाननेवाला, पराक्रमी वर्षा, सर्दी, गर्मी, वायु आदिको सहनेवाला तथा छलतत्ववित् पुरुष सेनापति होवे। हे राजेन्द्र! स्वयं दूसरेका विश्वासपात्र होवे और दूसरेका कभी विश्वास न करे। ऐसा ही क्यों पुत्रका भी विश्वास करना उत्तम नहीं है। हे पापरहित मैंने शास्त्रका यह यथार्थ तत्व तुम्हारे समीप वर्णन किया, शास्त्रमें राजाओंका अविश्वास परम गुह्य कहके वर्णित हुआ है।

८५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! राजाओंको कैसे पुरमें वास करना उचित है, वे लोग पहिलेके बने हुए, वा अपनी बनाई हुई पुरीमें वास विस्तारके सहित कहिये।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा लोग पुत्र जाति और बान्धवोंके सहित जिस स्थानमें वास करेंगे, वहांके व्यवहार और रक्षाका उपाय पूछना न्याय है; इससे तुम्हें जैसे किलेके विषयको विशेष रूपसे कहूंगा, उसे सुनके यत्नपूर्व्वक वैसे ही उपायका अनुष्ठान करना तुम्हें उचित है। हे राजन्! राजा लोग धन्व अर्थात् मरुभूमियुक्त किला, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग मृत्तिकादुर्ग और वनदुर्ग आदि यही छः प्रकारके किलेको अवलम्बन करके जिसमें सब सम्पत्ति प्रधान तथा बाहुल्यरूपसे सम्भव हो; वैसे ही सब पुर तैयार करावे। हे नरनाथ! जो पुर किलेसे युक्त धान्य और अस्त्रोंसे पूरित दृढ़ दीवार और परिखासे घिरा, हुआ, हाथी घोड़े तथा रथ समूहसे युक्त, विद्वान् शिल्पियोंसे अधिष्ठित धान्य आदि वस्तुओंसे परिपूरित, दक्ष-धर्म्मात्माओंसे प्रतिष्ठित बलवान मनुष्य, हाथी और घोड़ोंसे परिपूर्ण चौमरे तथा आचरणसे सुशोभित, प्रसिद्ध व्यवहारयुक्त प्रशान्त, अकुतोभय, सुन्दर प्रकाशयुक्त गीतवाद्यकी ध्वनिसे परिपूरित, बड़े घरोंसे युक्त शूर और आढ्यजन सम्पन्न, वेदध्वनिसे अनुनादित, सामाजिक उत्सवसे युक्त, और सदा पूजित देवताओंसे अधिष्ठित, ऐसे पुरके बीच

वनमें रहनेवाले सेवक, बलसे युक्त राजा स्वयं निवास करे। राजा उसकी पुरमें वास करके उस स्थानमें कोष, बल, मित्र और व्यवहारकी सदा वृद्धि करे और पुर तथा जनपद स्थित दोषोंको निवारण करे। भण्डार, अस्त्रालय, धान्य आदि संग्रह और मन्त्र तथा आयुधागारोंको यत्नपूर्व्वक बढ़ावे। काठ, लोहा, तुष, अङ्गार, देवदारु, काष्ठ, सींग, हड्डी, बांस, मज्जा, स्नेह, चर्व्वी, मधु, अनेक भांतिके औषध गन, सर्ज्जरस अर्थात् धूप, धान्य, अस्त्र, बाण, चर्म्म, स्नायु, बेंत, मूञ्ज और वल्वज-बन्धन, कूएंके समीप जलाधार उदपान, बहुतसे तालाब और चीरीवृक्ष; इन सब सामग्रियोंको सदा राजा निज पुरमें रक्षा करे। आचार्य्य, ऋत्विक, पुरोहित, महा धनुर्द्धारी योद्धा, ईंट आदिसे घर बननेवाले स्थपति, ज्योतिषी और चिकित्सक इन सबका यत्नपूर्व्वक सत्कार करे। बुद्धिमान, मेधावी, धर्म्मात्मा, दक्ष, शूर, बहुश्रुत, कुलीन और पराक्रम युक्त पुरुषोंको सब कार्य्योंमें नियुक्त करे। धार्म्मिक मनुष्योंकी पूजा करे, अधर्म्मियोंको दण्ड दे और यत्नपूर्व्वक सब वर्णोंको निज निज कर्म्ममें नियुक्त करे। बाह्य और अभ्यन्तर पौर तथा जनपदवासियोंसे जो कार्य्य करना हो, उसे पहिले दूतोंसे भली भांति मालूम करके तब कार्य्य प्रयोग करे। राजा स्वयं दूत, मन्त्र, कोष और दण्ड इन सबकी विशेष करके आलोचना करे; क्यों कि राज्यमें येही सब प्रतिष्ठित हुआ करते हैं। राजा दूत- तसे पुर जनपदवासी उदासीन, शत्रु, और मित्र सबके अभिलषित विषयको मालूम करे। अनन्तर सदा भक्तोंका सेवक शत्रुओंको पराजित करनेवाला वह राजा प्रमादहीन होकर उन लोगोंके उस विषयका प्रतिकार करे। राजा सदा अनेक प्रकारके यज्ञ क्षेम रहित दान और प्रजाकी रक्षा करे; परन्तु धर्म्म-बाधक कोई कार्य्य न करे। कृपण, अनाथ बूढ़े और विधवा स्त्रियोंकी वृत्ति; निज राज्यका पालन और पराए राष्ट्रका विचार रूपी योग क्षेम सदा सिद्ध करना चाहिये। राजा सदा आश्रम वासियोंको सत्कार सम्मान और आदरके सहित यथा समयमें अन्न, वस्त्र और पात्रदान करे। राजा यत्नपूर्व्वक तपस्वियोंसे राज्यके सब कार्य्य और निज शरीरका वृत्तान्त कहे, तथा सदा उनके समीप नत होके निवास करे।

राजा सब वस्तुओंके त्यागनेवाले सत्कुलमें उत्पन्न हुए तथा बहुश्रुत तपस्वियोंको देखके शय्या, आसन, और भोजनसे उनकी पूजा करे, राजा समस्त आपदाओंमें तपस्वियोंका अविश्वास न करे; क्यों कि डाकू लोग भी तपस्वियोंका सदा विश्वास किया करते हैं। राजा तपस्वियोंमें सब निधि स्थापित करे और उनके समीप बुद्धि ग्रहण करे; परन्तु बार बार उनकी सेवा न करे, तथा अत्यन्त पूजा न करे। निज राज्य, पर राष्ट्र, अटवी और सामन्त नगरोंमें अलग अलग तपस्वियोंको मित्र कर रखे और निज राज्यमें रहनेवाले तपस्वियोंकी भांति पर राज्य तथा अटवी स्थित तपस्वियोंका सत्कार और सम्मानके सहित धन आदि दान करे; क्यों कि राजा किसी दशामें तपस्वियोंके शरणागत होनेसे वह व्रत करनेवाले तपस्वी लोग इच्छानुसार राजाको आश्रयदान किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! जैसे नगरमें राजाको स्वयं वास करना उचित है, उसके यही लक्षण और उद्देश्य मैंने संक्षेपमें तुम्हारे समीप वर्णन किया है।

८६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! जिस प्रकार राज्यकी रक्षा और राष्ट्र संस्थापन करना होता है, उसे पूरी रीतिसे जाननेकी इच्छा करता हूं, इससे भली भांति विस्तार करके यह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राष्ट्ररक्षा और राष्ट्र संग्रह जिस प्रकारसे करना होता है, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं, तुम एकाग्रचित्त करके सुनो। राजा हर एक ग्राममें एक एक पुरुषोंको सबका स्वामी कर रखे, अनन्तर किसीको दश गांव, किसीको बीस, किसीको एक सौ और किसीको सहस्र गांवोंको प्रभुता प्रदान करे। वह एक गांवका स्वामी गांवके दोष और गुणका विचारके दश गांवके स्वामीसे कहे और दश गांवका स्वामी उसे बीस गांवके स्वामीसे कहे। वह बीस गांवका स्वामी जनपदमें जिन जिन कार्य्योंको सिद्ध करे, वह सब उसे सौ ग्रामके स्वामीके निकट निवेदन करना होगा। ग्राममें जो सब खाने योग्य वस्तु उत्पन्न हो, एक गांवका स्वामी उन सब वस्तुओंका उपभोग करे और वही दश गांवके स्वामीको और दश गांवका स्वामी बीस गांवके स्वामीका भरण करे। हे भरतश्रेष्ठ! जो ग्राम बहुत बड़ा उन्नत और जन समूहसे युक्त हो, सौ गांवका स्वामी सत्कारके सहित उसे ही भोगनेमें समर्थ होगा, परन्तु सौ गांवोंका स्वामी जिस गांवको भोग करेगा, वह गांव उस राज्यके अनेक लोगोंके अधीन रहेगा। और सबसे अधिक सहस्र गांवोंका स्वामी राष्ट्रीय लोगोंके साथ मिलके शाखा नगर और वहांके अन्न, सुवर्ण आदि सब भोगने योग्य वस्तुओंको भोगनेमें समर्थ होगा। उन लोगोंके युद्ध कार्य्य उपस्थित होनेपर कोई धर्म्म जाननेवाला आलस रहित मन्त्री उसे यथार्थ रीतिसे देखे और सब नगरोंमें एक एक जन सब अर्थोंके विचारने वाले मन्त्री उपस्थित होकर सब कार्य्योंको देखते रहें। जैसे महा घोर रूपी प्रबल ग्रह नक्षत्रोंके चिन्तक ऊंचे स्थानमें घूमते रहते हैं; वैसे ही वे सब अर्थोंके जानने-वाले मन्त्री सब सभासदोंके ऊपर परिक्रमा करते हुए उन लोगोंके सब कार्य्योंको देखें; और उनका कोई दूत राज्यमें सभासदोंके व्यवहारको गुप्त रीतिसे मालूम करे। वह मन्त्री राज्यमें स्थित पापी, हिंसक, परधन हरनेवाले, शठ, रक्षाधिकृत नामक मनुष्योंसे प्रजासमूहको रक्षा करे। और उत्पत्ति, दान वृत्ति, तथा शिल्प कार्य्यको देखके शिल्पकार्य्य वा शिल्पियोंके ऊपर कर निश्चित करें। वह राज्यमें बेचना खरीदना, मार्ग, भक्त, परिच्छद और योगक्षेम देखके बनियोंके ऊपर कर लगावे। हे युधिष्ठिर! ऐसा हो क्यों! जिसमे प्रजा दुःखित न हो उसी भांति विचार करके प्रजाके ऊपर यथायोग्य कर स्थापित करे। हे राजन्! फल अर्थात् धन धान्य और कर्म्म अर्थात् कृषि आदि कार्य्योंको पूरी रीतिसे देखके तब उस पर कर निश्चित करे, क्योंकि फल और कर्म्ममे किसीका स्वार्थ न रहनेसे वह कभी भी उसमे प्रवृत्त नहीं होता। जिससे राजा और कर्म्म करनेवाले दोनो ही कर्म्मभागी होसकें, वैसा ही विचार करके राजा सदा कर स्थापित करे। और जिससे अत्यन्त लोभके कारण आत्मामूल राज्य और परमूल क्रोध आदि कार्य्य नष्ट न हों, उसी भांति राजा लोभ त्यागके प्रजासमूहके समीप प्रिय मालूम होवे। राजाके अतिखादी अर्थात् बहुभक्षी कहके विख्यात होनेसे सब कोई उससे द्वेष किया करते हैं। राजा प्रजापुञ्जके विरुद्ध होनेसे किसी भांति कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता; इससे अप्रिय राजा किसी भांति भी फल लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता। हे भारत! इससे जैसे लोग बछड़ेको भूखा न रखके गऊ दुहते हैं, वैसे ही बुद्धिमान राजा राज्यको दुहे; क्यों कि बछड़ा बलवान होने पर पीड़ा सह सकता है। हे युधिष्ठिर! जैसे अधिक दुहनेसे बछड़ा कर्म्म करनेमें समर्थ नहीं होता, वैसे ही अत्यन्त दोहन करनेसे राष्ट्र भी महत् कर्म्म नहीं कर सकता। जो राजा स्वयं कृपा करके राष्ट्रको सब भांतिसे

रक्षा करता है, वह बहुत समय तक जीवित रहके अनेक फल लाभ कर सकता है, आपद कालमें यदि प्रजा राजाकी सहायताके वास्ते धन दान न करे, तो राजा राज्यकी कोषभूत करके कोषको गृहके भीतर करे। पुर और जनपदके आश्रित, उपाश्रित वा थोड़ा धन होनेपर भी राजा उन लोगोंके ऊपर सामर्थ्यके अनुसार कृपा करे। बाह्य अर्थात् आटविक डाकुओंको राज्यसे प्रत्याख्यान करके मध्यम अर्थात् गांवके लोगोंके निकट सुखसे धन ग्रहण करे, ऐसा होनेसे सुखी वा दुखी पुरुष उसके ऊपर क्रुद्ध न होंगे। और "राजाको धन लेनेकी आवश्यकता है,"—इसी भांति पहिले निज राज्यमें सूचना करके उसके अनन्तर इच्छानुसार ग्राममें प्रजा समूहको ऐसा कहके भय दिखावे कि दूसरेसे महत् भयरूपी एक आपदा उत्पन्न हुई है; बंशफलके आगमकी भांति वह आपद नाशकी मल होगी। यद्यपि हमारा शत्रु अपने नाशके वास्ते ही डाकुओंके सङ्ग प्रबल होके इस राज्यको पीड़ित करनेकी अभिलाषा करता है, तौभी उपस्थित घोर आपद तथा प्रचण्ड भयसे मैं तुम लोगोंका परित्राण करूंगा कहके तुम लोगोंसे धन ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं। उपस्थित भय नष्ट होनेसे ही तुम लोग मेरे समीपसे उस धनको फिर पाओगे; परन्तु शत्रु लोग बलपूर्व्वक इस राज्यसे जो धन हरण करेंगे, उसे फिर नहीं पाओगे इस समय यदि तुम लोग स्त्री-पुत्रोंके वास्ते सञ्चय करनेकी अभिलाषासे साधारणकी सहायताके वास्ते मुझे धन देनेमें विमुख होगे, तो शत्रुओंके निकट स्त्री पुत्रोंके पीछे तुम लोगोंका प्राण नाश होगा; और इस समय तुम लोग यदि मेरे सहकारी होकर हमारी सहायता करोगे, तो मैं इस राज्यको उपद्रवसे रक्षित करके पुत्रकी भांति तुम लोगोंकी सङ्ग लेकर आनन्द अनुभव करूंगा। और सामर्थ्यके अनुसार तुम लोगोंकी सहायता करूंगा। जैसे भार ढोनेके समय गुरु-भार बहुतसे लोगोंके जरिये उठाया जाता है, वैसे ही मुझको तुम लोगोंके साथ इस आपदके समयमें भार उठाना पड़ेगा। देखो, कोई आपद उपस्थित होनेपर उस समय धनको अत्यन्त प्रिय समझना उचित नहीं है।

अनन्तर समयवित राजा जब इस भांति उपचारयुक्त विनीत तथा मधुर वचनसे प्रजा-समूहके समीप कर स्वरूप धन ग्रहण न कर सके, तब वह योग अर्थात् धन ग्रहण करनेकी उपाय अवलम्बन करके उसके अनुसार निज तेज तथा पदातिसमूहके जरिये प्रजाके निकटसे धनग्रहण करे। राजा दोवार और सेवकोंके वास्ते व्यय, युद्धके भय और योगक्षेम देखके वैश्योंके ऊपर कर लगावे। बनमें बास करनेवाले वैश्य राजाकी उपेक्षा होनेसे ही नष्ट होते हैं, इससे विशेष करके उनके विषयमें मृदुताचरण करना होगा। हे पार्थ! सदा वैश्योंको धीरज देना, पालन, दान, उत्तम अवस्था, संविभाग और उनके साथ प्रिय आचरण करना उचित है। हे भारत! वैश्योंको सदा फलवान करना योग्य है, क्योंकि वे ही कृषि और व्यवसायसे राष्ट्रकी वृद्धि किया करते हैं। इसहीसे बुद्धिमान मनुष्य वैश्योंके ऊपर प्रीति किया करते हैं और दयावान तथा सावधान होके उन लोगोंके ऊपर कोमल कर स्थापित करते हैं। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण सर्व्वत्र ही वैश्योंके वास्ते मङ्गलाचरण सुलभ हुआ करता है और इसके समान उत्तम कार्य्य कुछ भी नहीं देखा जाता।

८७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! राजा समर्थ होकर भी यदि कोषकी अभिलाष

करे, तो किस भांति उस विषयमें प्रवृत्त होवे, उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, धर्म्मशील राजा प्रजाका हितैषी होकर देश, काल, बुद्धि और बलके अनुसार प्रजाको शासन करे। अपनी और प्रजासमूहकी जैसे सदा मङ्गलकामना की जाती है, वैसे ही राष्ट्रके सब कार्य्योंको भली भांति सिद्ध करना होगा। जैसे बछड़े माताके स्तनको न काटके केवल दूध दोहन करते और जैसे लोग मधुमक्खियोंको पीड़ित न करके मधु पान करते हैं, वैसे ही राजा राष्ट्रसे धन ग्रहण करे। जैसे बाघिन निज बच्चोंको दांतसे पकड़के उन्हें पीड़ित न करके हरण करती है, तथा जोंक जैसे मृदुभावसे लोहू पीती है; राजा भी उसी भांति राज्य भोग करे। प्रजाको पालन करनेवाला राजा पहिले प्रजाके निकटसे थोड़ा थोड़ा कर वसूल करके बढ़ाते हुए दूसरे वर्षमें अधिक करके धीरे धीरे बढ़ावे। जैसे बछड़ोंको अत्यन्त यत्नके सहित घास ग्रहण कराके क्रमसे भार बढ़ाके दमन करना होता है, वैसे ही प्रजासमूहको भी दमन करे। और जैसे बछड़े सदा पाशमें बन्धके दुःखित होके प्राणत्याग करते हैं, वैसे ही प्रजा भी इकबारगी कर भारसे आक्रान्त होनेपर दुःखित होके प्राणत्याग करती है; इससे राजाको बछड़ेकी भांति अत्यन्त यत्नके सहित धीरे धीरे दमन करना होगा, ऐसा न करनेसे प्रजाकी रक्षा नहीं होगी। हर एक पुरुषोंमें जो कार्य्य सहज रूपसे प्रयोग नहीं होसकता, उसके वास्ते मुख्य पुरुषोंको शान्त करके इतर लोगोंको दमन करना होगा। तिसके अनन्तर राजा मुख्य पुरुषोंके जरिये उस कर भारको उठानेवाले प्रजा समूहमें परस्पर भेद कराके स्वयं उन्हें शान्त करते हुए अयत्नके सहित सुख भोग करे। अवस्थान वा असमयमें उन लोगोंके ऊपर कर भार अर्पण न करे; परन्तु समय और नियमके अनुसार शान्तवा-दसे धीरे धीरे कर भार अर्पण करे। मैंने यह सब उपाय कहे, परन्तु माया मुझे विवक्षित नहीं है; देखिये वाजिगणोंको अनुपायसे दमन करनेसे वे अत्यन्त ही कोपित होजाते हैं। और राज्यके बीच मद्यशाला, तथा राज्यके उपघातक वेश्या कुटनी कुशीलव, कितव और दूसरे इस भांतिके जो मनुष्य निवास करें राजा उन सब लोगोंको शासन करे; क्यों कि उनके शासित न होनेसे उत्तम प्रजा अत्यन्त क्लेश पावेगी। किसी आपदके उपस्थित होने पर कोई किसीके समीप दिया हुआ धन तथा कर न मांगे; मनु पहिले प्राणियोंके वास्ते ऐसी ही व्यवस्था स्थापित कर गये हैं; इससे सब कोई उस व्यवस्थाके अनुगामी होवें; यदि इस समय उसमें अन्यथा होवे, तो ये सब लोक अवश्य ही नष्ट होंगे। हे नरनाथ! ऐसी जन श्रुति है, कि राजा ही सब प्राणियोंको शासन करनेवाला है; उससे जो राजा पापी पुरुषोंको शासन नहीं करता उसे उस पापका चौथा भाग भोग करना पड़ता है; तब जो पापी हों, उन्हें सदा शासन करना राजाको अवश्य उचित है। परन्तु जो राजा इन पापियोंको दमन नहीं करते उन्हें जैसे प्रजाके किये हुए धर्म्ममें चतुर्थ भाग भोगना पड़ता है वैसे ही उस पापका भी फल भोगना होगा। राजा भली भांति मद्य आदिकोंके स्थानको योग्य स्थानमें स्थित करे, नहीं तो स्वयं उसमें आसक्त होके ऐश्वर्य्यको नष्ट करना पड़ेगा; क्यों कि पुरुष कामासक्त होनेसे किसी कार्य्याकार्य्यमें नहीं रुक सकता अनायास ही सब कार्य्योंको कर सकता है; बल्कि मद्य, मांस, पर स्त्री और परधन हरनेमें लोगोंके समीप शास्त्र प्रदर्शित किया करता है। हे राजन्! जिन लोगोंको परिचित्त ग्रह नहीं है, आपदकालमें उन लोगोंके याचना करनेपर राजा उनके ऊपर कृपा करके धर्म्मपूर्व्वक उन्हें धन दान करे भयसे दान न करे। हे शास-

ष्ठिर ! तुम अपने राज्यमें याचक वा डाकुओंको कभी वास करने न देना; क्योंकि ये लोग प्राणियोंकी भलाईकी इच्छा न करके केवल मात्र अनिष्ठ आचरण किया करते हैं। जो प्राणियोंके ऊपर कृपा करते और जो लोग प्रजाकी बढ़ती करते हैं, वेही पुरुष तुम्हारे राज्यमें निवास करें। प्राणियोंके नाशक पुरुष वास न करने पावें। हे महाराज ! जो अधिकारी पुरुष निर्दिष्ट करके अतिरिक्त धन वसूल करें, वे राजाके समीप दण्डनीय होवें; अनन्तर दूसरे अधिकारी पुरुष यथार्थ कर वसूल करनेके वास्ते उन लोगोंको फिर नियुक्त करें। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, और ऐसे ही दूसरे जो कुछ कर्म्म उपस्थित हों, उसे अनेक पुरुषोंसे सिद्ध कराना होगा; ऐसा न करनेसे कर्म्म नष्ट होगा। यदि मनुष्य कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य कार्य्यका अनुष्ठान करके चोर वा राजकीय लोगोंसे कुछ संशय युक्त हों, तो उसके वास्ते राजाको लोगोंके समीप निन्दित होना पड़ता है। इससे राजा भोजन पान और वस्त्रोंसे सदा धनवान पुरुषोंका सम्मान करे और उन लोगोंको मेरे सहित प्रजाके ऊपर कृपा करो ऐसा वचन कहे, हे राजन् ! धनवान पुरुष ही राज्यके महत अङ्ग और सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं, इसमें सन्देह नहीं। ज्ञानी शूर, धनी, स्वामी, धर्म्मात्मा, तपस्वी, सत्यवादी और बुद्धिमान मनुष्य ही रक्षा किया करते हैं। हे महाराज! इससे तुम सब जीवोंमें प्रीतियुक्त होके सत्य, सरलता, अक्रोध और अनृशंसताके सहित पालन करो। हे राजन् ! तुम सत्य और सरलताके सहारे मित्र कोष और बलसे युक्त होनेपर निश्चय ही दण्ड, कोष, मित्र और भूमि लाभ करनेमें समर्थ होगे।

८८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर ! जिसका फल खाया जाता है, तुम्हारे राज्यमें स्थित वैसे वृक्षोंको कोई न काटने पावे, पण्डित लोग फल मूलको ही ब्राह्मणोंका धन और धर्म्म कहा करते हैं। और दूसरे लोग ब्राह्मणोंसे अतिरिक्त भोग किया करते हैं, इससे ब्राह्मणोंका भोग न होनेसे जिसमें दूसरे लोग किसी प्रकारसे ग्रहण न करें। हे नरनाथ ! यदि ब्राह्मण वृत्तिसे रहित होके अपने परित्राणके वास्ते दूसरे स्थानमें गमन करें, तो परिवारके सहित उसको वृत्ति कर देवे। यदि वह उससे भी निवृत्त न हो, तो ब्राह्मण सभा मण्डलीमें वह इस प्रकार निन्दनीय होंगे, कि इनके निवृत्त न होनेसे इस समय लोग किसकी मर्य्यादा करेंगे ? हे कौन्तेय ! इसके अनन्तर यद्यपि कोई उसे कुछ न कहें और पूर्व्व वृत्तान्तको भूल जावें तो वह अवश्य ही निवृत्त होंगे। लोग उसे ऐसा वचन कहें कि, हे ब्राह्मण ! जो भोगकी इच्छा करके भोगके अभावमें राज्य परित्याग करेंगे उन्हें भोगसे और वृत्तिके वास्ते वृत्तिके अभावमें राज्य त्यागनेपर उसे जो वृत्तिके वास्ते निमन्त्रण करना होगा, उसमें हम लोग श्रद्धा नहीं करते। कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य आदि कर्म्मोंसे ही इस लोकमें प्राणियोंकी जिविका निर्व्वाह होती है और वेद विद्या प्राणियोंको उर्द्धगामी किया करती है। इस संसारमें प्रवर्त्तमान उस वेदविद्याके विषयमें जो सब डाकू लोग विरुद्धता करते हैं; उनके नाश करनेके वास्ते ब्रह्माने क्षत्रिय जातिको उत्पन्न किया है। हे कुरुनन्दन ! इससे और होकर शत्रु जय, प्रजापालन, अनेक दक्षिणाके सहित यज्ञ और युद्ध करो। जो राजा प्रतिपालन करने योग्य प्राणियोंको सदा पालन करता है, वही राजसत्तम है; और जो उनकी रक्षा नहीं करते, उनसे कोई भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हे युधिष्ठिर ! राजा सदा लोक-रक्षाके

वास्ते युद्ध करे और उसमें सब मनुष्योंको नियुक्त करे; इससे तुम आत्मीयसे दूसरे और पराएसे आत्मीय तथा परायेसे पराये और आत्मीयसे आत्मीयको सदा पालन करो। राजा सब भांतिसे अपनी रक्षा करतेहुए पृथ्वीकी रक्षा करे, क्यों कि पण्डित लोग आत्मरक्षाको ही मूल कहा करते है। मेरा छिद्र क्या है, कौन सा व्यसन होरहा है, अविनिपातित क्या है, कहांसे मुझे दोष आश्रय करता ,—इन सब विषयोंको राजा सदा विचारता रहे। गत दिवसमें जिस कार्य्यको किया है, प्रजा उसको दूसरी बार प्रशंसा करती है, वा नहीं; मेरा यह कार्य्य यदि प्रजाको मालूम हुआ हो, तो वह पुनर्व्वार उसकी प्रशंसा करता है, वा नहीं? जनपद और राज्यके बीच मेरा यश प्रजाके अभिलषित हुआ है, वा नहीं? इन सब विषयोंके अनुसन्धान करनेके वास्ते आज्ञाकारी गुप्त दूतोंको पृथ्वीपर भेजे। और धर्म्म जाननेवाले, धैर्य्यशाली, तथा युद्धसे न भागनेवाले मनुष्योंके बीच जो लोग राजाको उपजीव्य करके नहीं रहते, वे लोग और कौन कौन सेवक तथा कौनसे मध्यस्थ पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करते है उसे भली भांति जाने। हे तात! साधारणको इकबारगी अभिलषित होना अत्यन्त कठिन है; क्यों कि सब प्राणियोंमें ही मित्र, शत्रु, और मध्यस्थ विद्यमान हैं।

युधिष्ठिर बोले, समान बल और तुल्य गुणशाली मनुष्योंमें कोई पुरुष किस कारणसे सबसे प्रबल होते, तथा वह पुरुष किस कारणसे उन लोगोंका भक्षक होता है।

भीष्म बोले, जैसे क्रुद्ध विषधारी प्रबल सर्प निर्ब्बल सांपोंको भक्षण करते हैं, वैसे ही चलनेवाले न चलनेवालोंको और दांतवाले बिन दांतवालोंको भक्षण किया करते हैं। हे युधिष्ठिर! इससे ये सब प्राणी भी शत्रुओंके निकट सदा सावधान रहें; क्यों कि प्रमाद उपस्थित होनेपर ये लोग गिद्धकी भांति निपतित हुआ करते हैं। हे राजन्! तुम्हारे राज्यमें थोड़े और अधिक मूल्यसे क्रय करनेवाले स्त्रियोंमें विश्राम शील और वणिक लोग कर भरसे पीड़ित होके व्याकुल तो नहीं होते जो राजाओंके बहुत् भारको उठाते और सब साधारण लोगोंका उद्धार करते हैं, वे कृषक लोग भारसे पीड़ित होके राज्यको परित्याग तो नहीं करते और तुम इस लोकमें देने योग्य भोग्य वस्तुओंसे देव, पितर, मनुष्य, सर्प, राक्षस, पशु और पक्षियोंका पोषण करते हो न? हे भारत! यही तुम्हारे राष्ट्र व्यवहार और राज्य गुप्तिकी कथा कही है। हे पाण्डव! यही अर्थ अवलम्बन करके फिर कहूंगा।

८९ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ब्रह्मवित्तम उतथ्यने युवनाश्व-पुत्र मान्धाताके ऊपर प्रसन्न हो कर उनसे अङ्गिरासम्बन्धीय जो सब क्षत्र धर्म्म कहा था, तथा जिस प्रकार उन्हें शासित किया था, वह सब मैं तुमसे पूरी रीतिसे कहता हूं।

उतथ्य बोले, हे मान्धाता! तुम यह निश्चय जान रक्खो, कि लोग धर्म्मके अनुष्ठान निबन्धनसे ही राजा हुआ करते हैं, कामानुष्ठानसे राजा नहीं हो सकते; इससे राजा ही सब लोगोंकी रक्षा किया करता है। राजा यदि धर्म्म आचरण करे, तो देवत्व प्राप्त कर सकता है और यदि अधर्म्म आचरण करे, तो नरकगामी हुआ करता है। सब प्राणी धर्म्ममें स्थित रहते और धर्म्म राजामें निवास किया करता है। इससे जो राजा उस धर्म्मकी उत्तम रीतिसे रक्षा करते हैं, वे ही पृथ्वीके स्वामी होते हैं। जो राजा श्रीमान् और परम धर्म्मशील होता है, लोग उसे ही धर्म्म कहा करते हैं। और ऐसा कहा करते हैं, कि जिस राजामें धर्म्म नहीं

रहता, उसके डरसे देवता लोग भाग जाते हैं। जो लोग निज धर्म्ममें विद्यमान रहते हैं; उनको ही प्रयोजन सिद्धि होती दीख पड़ती है, इससे सब कोई उस मङ्गलमय धर्म्मके अनुगामी होवें। पण्डित लोग कहा करते हैं, कि मनुष्योंके जब पाप निवारित नहीं होते तब उनके धर्म्मकी हानि होकर अधर्म्मकी बढ़ती होती है, और रात दिन भय हुआ करता है। हे तात! जब पाप निवारित नहीं होता, तब साधुओंमें भी "यह वस्तु मेरी और यह वस्तु मेरी नहीं है,"—इसी भांति धर्म्मयुक्त व्यवस्था नहीं रहती। मनुष्योंमें जब पापबल विद्यमान रहता है, तब उन लोगोंको भार्य्या, पशु, खेत और गृह नहीं दीखते। मनुष्योंके बिना पाप नष्ट हुए देवता लोग पूजा पितर लोग स्वधा और अतिथि लोग सत्कार ग्रहण नहीं करते। जब तक पाप दूर नहीं होता तब तक व्रत करनेवाले द्विजाति लोग देवताओंको नहीं जान सकते और ब्राह्मण लोग यज्ञ विस्तार करनेमें भी समर्थ नहीं होते। हे महाराज! जब तक पाप दूर नहीं होता तब तक मनुष्योंका मन छलोंकी तरह विह्वल हुआ करता है। ऋषि लोग दोनों लोकोंको अवलोकन करके "यह पुरुष ही धर्म्म पालक होगा" महाभूतमय राजाको उत्पन्न किया करते हैं, इस ही से उसमें धर्म्म विराजमान रहता है, उसे देवता लोग राजा कहा करते हैं और जिससे धर्म्म नष्ट होता है, उसे वृषल कहते हैं। जो राजा वृषरूपी भगवान धर्म्मका छेदन करता है, देवता लोग उसे ही वृषल कहा करते हैं; इससे धर्म्मको विशेष रूपसे वृद्धि करे; धर्म्मका बढ़ती होनेसे प्राणियोंकी भी सदा बढ़ती हुआ करती है; और धर्म्मकी हानि होनेसे प्राणी भी क्षीण हुआ करते हैं, इससे किसी भांति भी धर्म्मलोप न करे? हे पुरुषेन्द्र! जो प्राणियोंके धन प्राप्तिके वास्ते कृपायुक्त होता, तथा धारणाके कारण स्वयं प्राप्त होता है, उसे ही धर्म्म समझना चाहिये; वह अकार्य्योंकी सीमाका नाशक कहके वर्णित हुआ है। स्वयम्भू ब्रह्माने प्राणियोंकी बढ़तीके वास्ते ही धर्म्मको प्रकट किया है, इससे राजा प्रजाके ऊपर कृपा करके धर्म्मको प्रवर्त्तित करे। हे राजशार्दूल! धर्म्म ही श्रेष्ठ कहके वर्णित हुआ है; इससे जो पुरुषश्रेष्ठ हितकारी मनुष्य धर्म्म पूर्व्वक प्रजापालन करते हैं, उन्हें ही राजा समझना चाहिये। हे भरतसत्तम! धर्म्म ही राजाओंके निमित्त अत्यन्त कल्याणदायक है; इससे तुम काम क्रोध त्यागके केवल धर्म्मका ही पालन करो। हे मान्धाता! ब्राह्मण धर्म्मकी योनि हैं, इससे उन ब्राह्मणोंकी सदा पूजा करे और मत्सरता रहित होकर उनकी कामना पूरी करे उनके अहित आचरण करनेसे राजाओंको भय उपस्थित होता है, और मित्रोंकी हानि होकर शत्रुओंकी उत्पत्ति होती है। विरोचनपुत्र बलि सदा ब्राह्मणोंके साथ असूया करते थे, इसहीसे श्री देवी उनसे सन्तापित होके उन्हें परित्याग करके पाकशासन इन्द्रके समीप चली गई थीं; अनन्तर बलि श्रीको इन्द्रके समीप देखके अत्यन्त ही शोकित हुए थे। विभु मान्धाता! तुम असूया और अभिमानका ऐसा ही फल समझो देखो श्री तुम्हारे ऊपर क्रुद्ध होके तुम्हें परित्याग न करे। ऐसा कहा गया है, कि श्रीका पुत्र दर्प अधर्म्मसे उत्पन्न हुआ है, तुम यह निश्चय जान रखो, कि अनेक देवता, असुर और राजऋषि लोग उससे ही नाशको प्राप्त हुआ करते हैं। उसे जय करनेसे ही पुरुष राजा होता और उसके समीप पराजित होनेसे ही दास हुआ करता है। हे मान्धाता! यदि तुम चिरजीवी होनेकी इच्छा करते हो, तो जैसे राजा अभिमानके सहित अधर्म्म को सेवा परित्याग करता है, तुम भी वैसा ही करो। मत्त, प्रमत्त, पाखण्डी और उन्मत्तोंके समीप न जावे, उनके

साथ परिचय तथा उनकी सेवा न करे। दण्डित सेवक, स्त्री, विषय और दुर्गम पहाड़, हाथी, घोड़े, तथा सांपोंके निकटसे निवृत्त होवे। जो कदापि इन सबमें सदा युक्त रहना पड़े, तो भी रात्रिके समय इनका सङ्ग परित्याग करे, और बहुसुष्ठिता, अभिमान, दम्भ और क्रोधको त्याग करे। हे राजेन्द्र! बिन जानी हुई स्त्री क्लीव, स्वैरिणी, पराई स्त्री और कन्यासे कभी मैथुन न करे। वर्णसङ्कर होनेसे कुलमें पापी, राक्षस, क्लीव, अङ्गहीन स्थूल जिह्वा और चित्तहीन पुरुष उत्पन्न हुआ करते हैं। राजाके प्रमादग्रस्त होनेसे ही ये सब उत्पन्न होते हैं; इससे राजा विशेष करके प्रजाके हितमें अनुरक्त रहे। क्षत्रियोंके प्रमत्त होनेसे महान् दोष उत्पन्न होता है और प्रजाको वर्णसङ्कर करनेवाले सब अधर्मों-की बढ़ती हुआ करती है। गर्म्मीके समयमें शर्दी होती, शीतकालमें शर्दी नहीं रहती और अत्यन्त वृष्टि अनावृष्टि और व्याधि प्रजा समूहको आक्रमण करती हैं। नक्षत्र और धूमकेतु आदि भयङ्कर ग्रह उदय होते तथा राज्य नाशके अनेक उत्पात दीख पड़ते हैं, जो राजा अपनी और प्रजाकी रक्षा करनेमें असमर्थ है, उसकी प्रजाका नाश होता है; पीछे उसका भी नाश होजाता है। जब एक पुरुषके धनको दो मनुष्य मिलके ग्रहण करते और दो पुरुषोंका धन अनेक मनुष्य ग्रहण करते तथा कुमारी पूर्वरीतिसे लुप्त होती हैं, उस समय पण्डित लोग राजाका ही दोष कहा करते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होके धर्म त्याग कर "यह धन मेरा है, यह दूसरेका नहीं है,"—इसी भांति आचरण करते हुए जन समाजमें निवास करता है, तब लोग वैसे राजाको दुष्ट कहा करते हैं।

९० अध्याय समाप्त।

उतथ्य बोले, जब बादलके समयपर बरसने और राजाके धर्मचारी होनेपर सम्पत्ति बढ़ती है, तब वह सम्पत्ति प्रजासमूहको सुखपूर्वक पालन करती है। जो धोबी वस्त्रके रङ्गको न छुड़ाके मैलमात्रको दूर करना नहीं जानता, जिस राजामें धर्म नहीं है, उसे वैसा ही समझे इसी भांति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंके बीच जो शूद्र निज धर्मसे च्युत होकर अनेक कर्मोंमें रत रहता है, उसे रजकके समान समझे। शूद्रमें सेवा, वैश्यमें कृषि क्षत्रियोंमें दण्डनीति और ब्राह्मणोंमें ब्रह्मचर्य्य, तपस्या, मन्त्र और सत्य प्रतिष्ठित है। उसमेंसे जो क्षत्रिय धोबीके वस्त्र धोनेकी भांति शील-दोष बिलकुल दूर करना जानते हैं वेही सबके पिता और प्रजाके स्वामी होते हैं। हे भरतर्षभ! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये सब ही राजवृत्त हैं, इससे राजा ही युगरूपसे कहा जाता है। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब चारों वर्ण चारों आश्रम और चारों वेद मुग्ध हुआ करते हैं। जब राजा प्रमत्त होता है, तब गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आवहनीय ये तीनों अग्नि, ऋक, यजु और साम ये तीनों विद्या तथा दक्षिणा युक्त यज्ञ सब प्रमादग्रस्त हैं। राजा ही प्राणियोंका हर्त्ता और कर्त्ता है परन्तु जो राजा धर्मात्मा है वेही कर्त्ता और जो अधर्मी हैं वेही हर्त्ता कहाते हैं। जब राजा प्रमादग्रस्त होता है, तब उसके स्त्री, पुत्र, बान्धव और सुहृद लोग उस ही समय शोकग्रस्त हुआ करते हैं। राजाके अधर्मी होनेसे हाथी घोड़े, गऊ, ऊंट, खच्चर और गर्दभ आदि सब जन्तु ही अवसन्न हुआ करते है। हे मान्धाता! ब्रह्माने निर्बल प्राणियोंकी रक्षाके वास्ते ही बलवानको उत्पन्न किया है; क्यों कि उससे ही निर्बल प्राणिप्रतिष्ठित होते हैं। हे राजन्! राजाके अधर्मी होनेसे राजसेवक तथा राजवंशीय सब प्राणी शोक किया करते हैं। निर्बल, मुनि और विषधर सर्पकी दृष्टिको मैं अत्यन्त ही असह्य बोध करता हूं; इससे तुम दुर्बलको दुःखी न

करना । हे तात ! तुम निर्व्वल पुरुषोंको सदा अवमानित बोध करना, जिससे निर्व्वलोंके नेत्र तुम्हें बान्धवोंके सहित भस्म न करें ; क्यों कि जो पुरुष निर्व्वलोंके जरिये भस्म होता है, उसके कुलमें कुछ भी अङ्कुरित नहीं होता ; बल्कि समूलसे ही भस्म हो जाता है , इससे तुम निर्व्व-लोंको कभी पीड़ित न करना । अत्यन्त बल-वानसे भी बलहीन पुरुषश्रेष्ठ हुआ करता है ; क्यों कि बलवान पुरुष निर्व्वलके द्वारा भस्म होनेसे उसका कुछ भी बाकी नहीं रहता । यदि विमानित, घायल, वा आक्रुष्ट पुरुष किसी त्राणकर्त्ताको न प्राप्त कर सके, तो अमानुषिक दण्ड राजाकोही नष्ट करता है । हे तात ! तुम निज बलके सहारे विपक्षी होकर निर्व्वल पुरु-षोंको भोग न करना, छिपी हुई अग्निकी भांति जिससे निर्व्वलोंके नेत्र तुम्हें भस्म न करें । मनुष्य यदि किसी पुरुषसे मिथ्या अभिशप होकर रोदन करता है, तब उसके नेत्रसे जो सब आंसू गिरता है, वह उसके मिथ्यावादके कारण वेही सब आंसू उसके पुत्र और पशुओंको नष्ट किया करते हैं । गऊ जैसे सदा फलदायक नहीं होती वैसे ही यदि पाप कर्म्म सदा फलित हो, तो पुत्रमें फलेगा ; पुत्रमें न फलित हो, तो पौत्र और दौहित्रमें फलित होता है । जिस स्थलमें निर्व्वल पुरुष बलवानसे पीड़ित होके किसीको अपना परित्राण करनेवाला नहीं पाता, उस स्थानमें दैवी महान् दण्ड पतित हुआ करता है । जनपदवासी सब लोग एकत्रित होकर ब्राह्मणोंकी भांति भिक्षा मांगे, तो उनका भिक्षुक रूप ही सदा राजाका नाश किया करता है । यदि जनपदके बीच राजाके बहुतसे राज पुरुष राज कार्य्यमें नियुक्त होकर नीतिके विरुद्ध कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हों, तो राजाको बहुत ही पाप होता है । और वे लोग काम तथा अर्थके वशमें होकर अयुक्तिके अनुसार दरिद्रोंका भी धन हरण करें, तो ऐसा होनेसे राजाका एकबारगी नाश होता है । जैसे वृक्ष उत्पन्न होके बड़ा होने पर प्राणी लोग उसकी ही आशा करते हैं और उस वृक्षके कटने वा जलनेसे वह लोग आश्रय हीन होते हैं, वैसेही राजाके बढ़ने वा नष्ट होने पर प्रजा समूहकी वैसे ही दशा हुआ करती है । यदि राजपुरुष लोग राज्यमें राजाके गुण और मानस धर्म्मको वर्णन करके उत्तम धर्म्माचरण भी करें, तो उस ही समय उनका सुकृत नष्ट होजावे और यदि धर्म्मके भ्रमसे अधर्म्म आचरण करें, तो उससे दुष्कर्म्म नष्ट हुआ करता है । यदि राज्यके बीच पापी पुरुष राजाको विदित होकर साधु-ओंके समीप भ्रमण करें, तो ऐसा होनेसे कलि-युग उस राजाका आश्रय किया करता है । परन्तु यदि राजा मूर्ख मनुष्योंको शासन करे, तो उसका राज्य बढ़ता है । जो राजा सेव-कोंका यथोचित सम्मान करके युद्ध और विचार कार्य्योंमें नियुक्त करता है, उस राजाका राज्य विशेष रूपसे बढ़ता है और वह बहुत दिनोंतक समस्त पृथ्वी भोग किया करता है । राजा सब पुरुषोंके उत्तम वचनको सुनके तथा सुकृत कर्म्मोंको देखकर उन लोगोंका सम्मान करनेसे उत्तम धर्म्मलाभ करता है । यदि राजा यथा नियमसे विभाग करके भोजन करे, सेव-कोंका अपमान न करे, और बलके अभिमानी पुरुषोंका दमन करे , ऐसा होनेसे वही राज्यका धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है । जब राजा काया, वाचा और कर्म्मसे सबका परित्राण करते हैं, पुत्रके विषयमें भी क्षमा नहीं करता, तब उसका वह कर्म्म ही धर्म्मरू-पसे वर्णित हुआ करता है । राजा दुर्व्वल प्राणियोंको भोजन कराके स्वयं भोजन करने पर, उन लोगोंका शील बल प्राप्त होता है, उससे राजाको परम धर्म्म होता है । जब राजा राज्यके डाकुओंको दमन और युद्धमें जय प्राप्त करता है, तब उसका जनसमाजमें

वही धर्म्म गाया जाता है। प्रिय पुरुषको पापाचरण करने पर भी यदि राजा उसके विषयमें क्षमा न करे, तो राजाका वही धर्म्म कहके वर्णित हुआ करता है। जब राजा शरणागत मनुष्योंको मर्य्यादा भेद न करके उन्हें पुत्र समान पालन करता है, तब राजाका वह परम धर्म्म कहके गाया जाता है। यदि राजा काम क्रोधका अनादर करके दक्षिणा युक्त यज्ञ करे, तो उससे परम धर्म्म होता है। यदि राजा कृपण, अनाथ और बूढ़े मनुष्योंके क्लेशयुक्त आंसूको पोंछके उन्हें हर्षित करे, तो उसके जरिये उसे बहुत धर्म्म होता है। जो राजा मित्रोंको ऊंचा, शत्रुओंको नीचा और साधुओंको सम्मानित करता है, वही धार्म्मिक कहाता है। जो राजा सत्यका पालन प्रीतिपूर्व्वक सदा भूमिदान अतिथि सेवा और सेवकोंका भरण पोषण करता है लोग वैसे राजा कोही धार्म्मिक कहा करते हैं। जिसमें निग्रह अनुग्रह दोनों ही प्रतिष्ठित हैं, वही राजा इस लोक और परलोकमें उत्तम फल भोग किया करते हैं।

हे मान्धाता! धार्म्मिक पुरुषोंकेवास्ते इन्द्रिय निग्रह ही अत्यन्त उत्तम कार्य्य है; क्योंकि वे लोग प्राण और इन्द्रिय संयम कर सके, तो ईश्वरत्व लाभ करनेमें समर्थ होते हैं, परन्तु इन्द्रिय संयम न कर सके तो अग्निकी भांति हुआ करते हैं। जैसे यम अर्थात् बिरति सब प्राणियोंको जिस प्रकार स्थित करती है, वैसेही राजा सब प्रजाको यथारीतिसे स्थित कर रखे। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब कि लोग सहस्र पुत्रवाले इन्द्रके साथ राजाको तुलना करते हैं, तब राजा जिसे धर्म्म रूपसे देखे, वही धर्म्म कहके गिना जावेगा, हे राजन्! तुम सदा प्रमाद रहित होकर क्षमा, बुद्धि, धृति, सहारे प्राणियोंका शक्ति जानके साधु और दुष्टोंकी शिक्षा करो। सेना संग्रह करो, सबको दान दो, सबसे मीठे वचन कहो; पुर और जनपदवासियोंको यथा रीतिसे सुखपूर्व्वक पालन करो। हे राजन्! अपटु राजा कभी प्रजा-पालन करनेमें समर्थ नहीं होता; क्योंकि राज्यरूपी महत् भारको उठाना अत्यन्त ही कठिन है। जो राजा दण्डवित् बुद्धिमान और शूर हैं, वही राज्य रक्षा करनेमें समर्थ होता है, परन्तु दण्डज्ञानसे रहित क्लीव और बुद्धिरहित राजा उसको रक्षा करनेमें कभी समर्थ नहीं होता। तुम सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए भक्त, बहुश्रुत, दक्ष और अनुयाई सेवकोंके सहित तापसाश्रमियोंके बुद्धिको सब भांतिसे परीक्षा करना। यदि तुम इसी प्रकार सब प्राणियोंके परम धर्म्मको मालूम कर सको तो ऐसा होनेसे स्वदेश और विदेशमें कहीं भी तुम्हारा धर्म्म नष्ट न होगा। हे राजन्! इस ही कारण अर्थ और कामसे धर्म्म उत्तम है और धर्म्मात्मा मनुष्यही इस लोक तथा परलोकमें सुख भोग किया करते हैं। जो मनुष्य स्त्री पुत्रोंको त्याग सकते हैं, वे सबके समीप पूजित होते हैं। हे मान्धाता! सेना संग्रह, दान मधुर वचन, अप्रमाद और पवित्रता ये सब राजाओंके अत्यन्तही ऐश्वर्य्यकारी हैं; इससे इन सब विषयोंमें सदा सावधान रहना। राजा सावधान होके अपना और दूसरेके छिद्रोंका अनुसन्धान करे, परन्तु दूसरे लोग राजाके छिद्रोंको न देखने पावें; क्यों कि आत्मछिद्रोंको छिपाना और परछिद्र देखना ही राजाओंका कर्त्तव्य कर्म्म हैं। हे महाराज! इन्द्र, यम, वरुण और राजर्षियोंकी ऐसा ही वृत्ति है, तुम भी यत्नवान होकर इसे पालन करो, हे भरत श्रेष्ठ! राजर्षि लोग जिस धर्म्मको सेवन करते है, तुम भी उस ही को सेवा करो। और शीघ्र ही दिव्य पथ अवलम्बन करो। हे भारत! महातेजस्वो देवर्षि, पितर और गन्धर्व्व लोग इस लोक तथा परलोकमें धर्म्मात्मा राजाके यशको गाया करते हैं।

भीष्म बोले, हे भरतवंश प्रवीर युधिष्ठिर ! मान्धाताने उतथ्यसे ऐसे ऐसे वचन सुनके शङ्का रहित चित्तसे उस ही भांति धर्म्माचरण किये थे, इसीसे अकेले ही पृथ्वी प्राप्त की । हे पृथ्वीनाथ ! तुम भी मान्धाताकी भांति वैसा ही धर्म्माचरण करनेसे इस लोकमें पृथ्वी पालन करके मरनेके अन्तमें स्वर्ग लोकका स्थान प्राप्त करोगे ।

९१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! राजा धर्म्म मार्गमें निवास करनेका अभिलाषी होकर किस प्रकार धार्म्मिक होगा ? उसे मैं आपके समीप जाननेकी इच्छा करता हूं; इसे विस्तार करके कहिये ।

भीष्म बोले, तत्वार्थदर्शी बुद्धिमान वामदेवने पृथ्वीपति वसुमनासे जो कथा कही थी, पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासका ही ऐसे स्थलमें प्रमाण दिया करते हैं ; मैं भी तुमसे कहता हूं, सुनो । ज्ञानवान्, धृतिमान्, पवित्रतायुक्त पृथ्वीनाथ वसुमनाने महातपस्वी महर्षि वामदेवसे धर्म्म और अर्थयुक्त वचन पूछा, हे भगवन् ! जिस प्रकार धर्म्माचरण करनेसे धर्म्मच्युत न होके निज धर्म्ममें रह सके, आप मुझे उसहीका उपदेश करिये ।

परम तपस्वी तेजस्वी वामदेव नहुषपुत्र ययातिकी भांति सुखसे बैठे हुए हेमवर्ण वसुमनासे बोले, महाराज ! आप केवल धर्म्मके अनुवर्त्ती होइये, धर्म्मसे उत्तम दूसरा कुछ भी नहीं है ; राजा लोग एक मात्र धर्म्ममें स्थित होके ही पृथ्वी जय किया करते हैं । जो राजा अर्थसिद्धिसे धर्म्मको उत्तम समझकर निज बुद्धिको धर्म्म बढ़ानेमें ही प्रवर्त्तित करते हैं, वेही धर्म्मके जरिये विराजमान होते हैं । जो राजा अधर्म्मी होकर बलपूर्व्वक अधर्म्म आचारणमें प्रवृत्त होता है, वह शीघ्र ही धर्म्म अर्थसे रहित होता और धर्म्म अर्थ दोनों ही उससे अलग हो जाते हैं । जिसके मन्त्री लोग दुष्ट और पापी हैं, तथा जो स्वयं धर्म्मकी हानि करते हैं, वे शीघ्र ही परिवारके सहित दुःखित होकर लोगोंके निकट वध्य होते हैं । जो राजा अर्थानुष्ठानसे रहित कामाचारी और अपनी बड़ाई करनेवाला है, वह समस्त पृथ्वी प्राप्त करनेपर भी शीघ्र ही नष्ट होता है । परन्तु जो राजा कल्याणग्राही असूया रहित, जितेन्द्रिय और बुद्धिमान होता है, वह सोतेसे बढ़नेवाले समुद्रकी भांति बढ़ता है । जो राजा ऐसा समझता है । कि मैं धर्म्म अर्थ, काम, बुद्धि और मित्र किसीसे भी परिपूरित नहीं हूं, इन्हीं सबसे लोकयात्रा प्रतिष्ठित है ; वह सब सुनके यश, कीर्त्ति, श्री और प्रजा लाभ कर सकता है । जो राजा धर्म्म अर्थका चिन्तक तथा धर्म्मका अनुगामी होकर इसी भांति अर्थ दृष्टि करना आरम्भ करता है, वह अवश्य ही विपुल अर्थ भोग कर सकता है । जो राजा कृपण, प्रीतिरहित और साहस प्रकृति युक्त होकर प्रजाके विषयमें यथार्थ दण्डविधान नहीं करता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है । जो बुद्धिहीन राजा जानके भी पापी पुरुषोंके विषयमें उपेक्षा करके उनकी ओर दृष्टि नहीं रखता, वह अकीर्त्तिसे युक्त होकर बारबार नरक भोग किया करता है । जो राजा दाता, अच्छ, वशवर्त्ती और सबका सम्मान करनेवाला होता है, उसे विपद उपस्थित होनेपर सब मनुष्य आत्मविपदकी भांति उसके उस विपदके नाश करनेकी इच्छा करते हैं । जिसके धर्म्म उपदेशक गुरु नहीं हैं और जो अर्थ लाभमें सुख परतन्त्र होकर दूसरे किसीको भी धर्म्म विषयको नहीं पूछते, तथा वे सदा सुखभोग नहीं कर सकते और जिसके धर्म्म उपदेश करनेवाला मुख्य गुरु है, वह स्वयं धर्म्मकी आलोचना करता है और अर्थ

लाभमें धर्म-परतन्त्र होता है ; वही सदा सुख भोग कर सकता है ।

९२-अध्याय समाप्त ।

वामदेव बोले, जिस राज्यमें बलवान राजा निर्बल पुरुषोंके ऊपर अधर्म आरोपित करता है, उसके वंशवाले जो सब पुरुष उस ही वृत्तिको उपजीव्य किया करते हैं, तथा दूसरे जो सब मनुष्य उस पाप प्रवर्त्तक राजाके अनुगामी होते हैं, वह विनयरहित मनुष्योंसे युक्त राज्य शीघ्र ही विनष्ट होता है। राजा प्रकृतिस्थ अर्थात् स्वधर्मावलम्बी होनेपर वह जैसा व्यवहार करता है, साधारण मनुष्य भी उस ही व्यवहारके अनुगामी हुआ करते हैं। परन्तु राजा विषमस्थ अर्थात् अन्य धर्मावलम्बी होकर जैसा व्यवहार करेगा, स्वजन पुरुष उस व्यवहारके अनुगामी न होंगे। जिस राज्यमें साहस प्रकृति राजा शास्त्र लक्षणसे विपरीत कार्य करता है, उस राज्यमें वह उस ही समय नष्ट होता है। जो क्षत्रिय जित अर्थात् आपन्न और अजित् अर्थात् स्वस्थ मनुष्योंके अत्यन्त आचरित वृत्तिके अनुवर्त्ती नहीं होते, वे क्षत्रियधर्मसे बाहिर हुआ करते हैं। जो क्षत्रिय अपकार करनेवाले द्वेषी राजाको युद्धभूमिमें पाके द्वेषके कारण उसका सम्मान नहीं करते, वह क्षत्र धर्मसे बाहिर होते हैं। जो राजा आपदकालमें सुख भोगनेमें समर्थ होके भी दुःख भोग करते हुए प्रजाको आपदसे निवारण करते हैं, वह प्रजासमूहके प्यारे होते हैं, राजलक्ष्मी वैसे राजाको कभी परित्याग नहीं करतीं। हे राजन्! जिसकी बुराई करे, दूसरी बार उसकी भलाई करे; क्योंकि बुराई करनेवाला पुरुष फिर भलाई करनेपर थोड़े ही समयके बीच प्रिय हुआ करता है। मिथ्या वचन परित्याग करे, विना कहे ही लोगोंका प्रिय कार्य करे; काम क्रोध और द्वेषके वशमें होकर कभी धर्म परित्याग न करे। कोई प्रश्न करे, तो उसे निठुर होके उत्तर न दे, कठोर वचन प्रयोग न करे, किसी कार्यमें शीघ्रता न करे किसीकी निन्दा न करे और शत्रुओंको संग्रह न करे। प्रिय होनेसे अत्यन्त हर्षित न होवे, अप्रिय होनेपर उसमें दुःखी न होवे और प्रजाके हितको स्मरण करते हुए अत्यन्त अर्थसे भी तृप्त न होवे। जो राजा गुणके अनुसार सेवकोंका सदा प्रियकार्य किया करता है, उसके सब कार्य सिद्ध होते और राजश्री उसे कभी परित्याग नहीं करती। राजा सदा स्थिरताके सहित विरोधियोंको निवृत्त और अनुकूल रहनेवाले भक्तोंका सत्कार करे। जो सेवक दृढ़ इन्द्रियोंसे युक्त, अत्यन्त अनुगत, पवित्रचित्तवाला अनुरक्त और सब कार्यमें समर्थ हो, उसे ही राजा महत् कर्ममें नियुक्त करे। जो सेवक ऐसे गुणोंसे युक्त हो और स्वामीके कार्योंमें सावधान होके उसे अनुरक्त कर सके, वैसे सेवकको ही राजा अर्थकार्यमें नियुक्त करे, जो राजा मूढ़ इन्द्रियपरायण, लोभी, अनार्योंके आचरित कर्मका करनेवाला, शठ, कपटता युक्त, हिंसक, नीचबुद्धि, मूर्ख, उदार कर्मोंको त्यागनेवाला, मद्यमें रत और जुआ, स्त्री तथा मृगयापरायण सेवकको महत् कार्योंमें नियुक्त करता है वह राजा श्रीभ्रष्ट हुआ करता है। जो राजा अपनी रक्षा करके प्रतिपालन करने योग्य सेवकोंकी रक्षा करता है, उसकी सब प्रजा बढ़ती है, और वह अवश्य ही विपुल ऐश्वर्य भोग किया करता है जो राजा गुप्त दूतोंके जरिये अधीनमें रहनेवाले राजाओंके सब कार्योंको मालूम करता है, वह सबसे मुख्य हुआ करता है। राजा बलवान पुरुषका अपकार करके "मैं दूर हूं" इस प्रकार धीरज पूर्व्वक उपेक्षा न करे, क्योंकि वे लोग बाज पक्षीकी भांति प्रमादयुक्त अपकारी राजाके समीप आके उपस्थित

होते हैं। दृढ़ मूल साधु राजा अपना बल मालूम करके निर्ब्बल पुरुषोंके ऊपर चढ़ाई करे; परन्तु जो बलवान हैं, उनके ऊपर चढ़ाई न करे। धर्म्ममें तत्पर राजा पराक्रमसे पृथ्वी प्राप्त करके धर्म्मपूर्ब्वक प्रजा पालन और युद्धमें शत्रुओंका बध करे। इस लोकमें प्रजा पालन आदि कार्य्य करनेके अनन्तर स्वर्ग-हेतु निबन्धन अनामय अर्थात् कुशल जनक हुआ करता है; इससे राजा निजधर्म्ममें स्थित होके धर्म्म पूर्ब्वक प्रजापालन करे। युद्धमें रक्षाधिकार अर्थात किले आदिकी दृढ़ता करनी, युद्ध, धर्म्मका अनुशासन, मन्त्र चिन्ता और प्रजाको सुख देना, इन पांच प्रकारके कार्य्योंसे पृथ्वी विशेष रूपसे बर्द्धित हुआ करती है। जो इन सबकी भली भांति रक्षा करते, वेही राजेन्द्र होते और वह सदा इस लोकमें वर्त्तमान रहके इस पृथ्वीमण्डलको धारण किया करते हैं अकेले राजाके जरिये इन सब विषयोंका सिद्ध होना अत्यन्त ही कठिन है; इससे राजा किले आदिके अधिष्ठाता मन्त्रियोंके ऊपर समस्त कार्य्यभार अर्पण करनेसे बहुत समयतक पृथ्वी भोग करनेमें समर्थ होता है। हे राजन्! जो पुरुष दाता, संविभक्त, कोमल-स्वभाव, पवित्र और अनुरक्त होता है, उसे ही लोग नृपति कहा करते है। जो निःश्रेयस विषय सुनके अपना मत परित्यागके उस निःश्रेयस ज्ञानको ही प्रतिपन्न करते हैं, लोग उसे ही नृप रूपसे मानते हैं। जो द्वेषके कारण अर्थकामी पुरुषोंके वचनको क्षमा न करके, उनके निकट विमनाकी भांति सदा प्रतिकूल वचन सुनते; और ‥जित् अर्थात आपन्न और आजत् तथा स्वस्थ पुरुषोंके अग्राम्य अर्थात् बुद्धिमान पुरुषोंके आचरित वृत्तिकी सदा सेवा नहीं करते, वे क्षत्र धर्म्मसे बहिस्कृत होते है। निग्रहीत सेवक, स्त्री, विषय, और दुर्गम, पर्ब्बत, हाथी, घोड़े और सांप इन सबसे सदा निवृत्त होके आत्मरक्षा करे; परन्तु जो पुरुष इन सबमें सदा नियुक्त रहके आत्मरक्षा करता है, और मुख्य सेवकोंको परित्याग करके अत्यन्त हीन प्रकृतिवाले सेवकोंको प्रिय समझता है; वह पुरुष व्यसनमें फंसके कार्य्यका अन्त प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता। जो राजा द्वेषके कारण कल्याण गुणसे युक्त स्वजनोंके समीप निवास करने की इच्छा नहीं करता, वह अदृढ़ात्मा दृढ़ क्रोधयुक्त राजा मृत्युके निकट वास किया करता है; और गुणवान पुरुषोंको हृदयके अप्रिय होनेपर भी जो राजा उन्हें प्रिय वचनसे वशमें कर सकता है, वह सदा भूमण्डल पर यशस्वी होके निवास करता है। राजा असमयमें अर्थ प्रणयन न करे, अनिष्ठ होने पर उससें कभी अत्यन्त सन्तापित न होवे, प्रिय कार्य्यसे बहुत हर्षित न होवे और शुभ कर्म्मोंमें सदा तत्पर रहे। कौन राजा अनुरक्त हैं, कौनसे भयके कारण अनुगत हैं और कौन निर्दोष है, इसे सदा विचारता रहे। राजा बलवान होकर भी निर्ब्बलका कभी तनिक विश्वास न करे, क्योंकि वे लोग असावधानीरूपी अवसर पानेसे गिद्धकी भांति आ गिरते है। स्वामी प्रियवादी और सब गुणोंसे युक्त होने पर भी पापी सेवक उसका अपकार किया करते हैं, इससे वैसे मनुष्योंका कभी विश्वास न करे। नहुष पुत्र ययातिने इसी भांति राजोपनिषत् अर्थात् राजाओंकी रहस्य विद्या कही है; इससे जो इस रहस्य विद्याके अनुसार मनुष्य राज्यमें नियुक्त होते हैं, वेही महान् शत्रुओंका नाश कर सकते हैं।

९३ अध्याय समाप्त।

वामदेव बोले, हे नरनाथ! राजा बिना युद्ध किये ही विजय प्राप्त करे, युद्धसे जो विजय होती है, पण्डित लोग उसे निन्दित कहा करते हैं। मूल अत्यन्त दृढ़ न रहने पर राजा अप्राप्त वस्तुओंके-वास्ते कभी इच्छा न करे; क्योंकि

निर्व्वेद मूलवाले राजाको अप्राप्त-वस्तुका लाभ नहीं विहित होता। जिसका जनपद उन्नत सम्पत्ति युक्त, राजप्रिय, सन्तुष्ट और मन्त्रियोंसे सम्पन्न है, उस पृथ्वीपतिका ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। जिसकी सब सेना सन्तुष्ट, सान्त्वित दूसरेको वंचनामें निष्ठावान है, वह राजा ही थोड़ी सेनाके जरिये पृथ्वी जय कर सकता है। जिसके पुरवासी और जनपद वासी प्रजा दयालु, बलवान और धान्यवान है उस राजाको ही दृढ़मूल कहके जानना चाहिये। हे राजन्! मेधावी राजा जब अपने प्रतापका समय सबसे अधिक समझे, तभी परभूमि और परधनकी लालसा करें; क्योंकि भोगोंमें उदयमान, सब प्राणियोंमें दयावान, शीघ्रता करनेवाले और आत्मरक्षामें समर्थ राजाका ही विषय वर्द्धित हुआ करता है। जो विद्यमान आत्मीय पुरुषोंके विषयमें सब भांतिसे मिथ्या आचरण करता है, वह परशुसे काटे हुए वनकी तरह आप ही नष्ट होता है। जो राजा आत्महिंसक नहीं है, शत्रु लोग भी उससे द्वेष नहीं करते, क्योंकि जो पुरुष क्रोधका नाश कर सकते हैं, कोई भी उनका द्वेषी नहीं होता। आर्य्य पुरुष जिन कर्म्मोंमें विद्वेष प्रकाश करें, विद्वान राजा उस कर्म्मको कभी भी न करे; और उन लोगोंके कल्याणदायक वचनको न टाले, जो राजा सब कर्त्तव्य कर्म्मोंको सिद्ध करके अन्तमें सुख अनुभव करनेकी अभिलाषा करता है, वैसे राजाकी दूसरा कोई भी अवज्ञा नहीं कर सकता। जो राजा मनुष्य राज्यमें इसी भांति व्यवहार करता है, वह दोनों लोकोंको जय करके विजय-पथमें प्रतिष्ठित होता है।

भीष्म बोले, राजा वसुमनाने महर्षि वामदेवका ऐसा वचन सुनके उसके अनुसार ही सब कार्य्योंका अनुष्ठान किया था; तुम भी वैसा कार्य्य करनेसे अवश्य ही दोनों लोकोंको जय कर सकोगे।

९४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि कोई क्षत्रिय युद्धमें दूसरे क्षत्रियको जीतनेकी इच्छा करे, तो वह विजय-विषयमें कैसा धर्म्म आचरण करे? यही मैं आपसे पूछता हूं; आप मुझसे यह वृत्तान्त विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, राजा सहाययुक्त वा बिना सहायकके ही अकस्मात दूसरेके राज्यमें आगमन करके प्रजा समूहसे ऐसा वचन कहे, कि मैं तुम लोगोंकी सर्व्वदा रक्षा करूंगा; इससे तुम लोग मुझे धर्म्मपूर्व्वक कर प्रदान करो, और मुझे राजा कहके मानो। ऐसा वचन सुनके यदि प्रजा समूह उस समागत राजाको राज्यमें वरण करे तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका कुशल होता है। परन्तु, हे नरनाथ! यदि वे लोग अक्षत्रिय होकर राजाके विषयमें किसी प्रकार विरुद्धाचरण करें तो ऐसा होने पर उन विकर्म्मस्थ प्रजा समूहको सब भांतिके उपायसे शासन करना उचित है। अपर अर्थात् हीन क्षत्रिय भी दूसरोंमें उत्तम जांचनेके वास्ते श्रेष्ठ क्षत्रियको आत्मत्राणमें असमर्थ और शस्त्रहीन देखके शस्त्र ग्रहण किया करते हैं; इससे राजा निज शस्त्रबलसे विजित गावोंको आक्रमण करके उनके स्वामी होकर सुख पूर्व्वक निवास करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यदि कोई क्षत्रिय राजा युद्धके वास्ते दूसरे क्षत्रियके निकट उपस्थित होवे तो वह क्षत्रिय राजाके साथ किस प्रकार युद्ध करे। वह मुझसे कहिये।

भीष्म बोले, युद्धमें असावधान क्षत्रिय कवच रहित क्षत्रियके साथ युद्ध करे, क्यों कि एक पुरुष एक एकके साथ युद्ध करनेसे क्रमसे असमर्थ होके युद्ध परित्याग किया करता है। यदि राजा सावधान होके आगमन करे, तो सावधान होना चाहिये और यदि वह सेनाके सहित आगमन करे, तो सेना युक्त होके उसे आवाहन करे। और यदि राजा शठताके सहित युद्ध करे; तो शठता पूर्व्वक ही उसके साथ युद्ध करे

और धर्म्मयुद्ध करनेपर धर्म्मयुद्धके जरिये ही उसे निवारण करे। घुड़सवार होके रथीके निकट न जावे; रथपर चढ़के ही रथीके समीप जावे और व्यसनसे आर्त्त, डरे हुए और पराजित पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करे। विषमें बुझे हुए बाण असत् पुरुषोंके ही आयुध हुआ करते हैं; क्योंकि उन लोगोंका अस्त्र नहीं होता; इससे यथार्थ युद्ध करे, जिघांसु पुरुषके ऊपर क्रोध न करे। प्राणहीन, अनपत्य, जिसका शस्त्र टूट गया हो, विपदग्रस्त और वाहन रहित पुरुषोंके ऊपर अस्त्र न चलावे; बल्कि यदि वे अपने गृह वा अपने राज्यमें उपस्थित हों तो उनकी चिकित्सा करावे। साधुओंके बीच यदि कोई साधु पुरुष भेदके कारण व्यसनमें फंसा हो, तो उसे चत न करके मुक्त करना होगा; यही राजाओंका सनातनधर्म्म है। इसही कारण स्वयम्भूपुत्र मनुने कहा है, कि साधुओंके साथ धर्म्मयुद्ध करना ही कर्त्तव्य है। साधुओंको सनातन धर्म्म अवलम्बन करना ही उचित है; कभी भी उसे नष्ट न करना चाहिये। जो धर्म्म-सङ्कर चत्रिय अधर्म्म आचरणसे जय लाभ करते हैं, वह शठजीवी, पापी राजा स्वयं नष्ट हुआ करते हैं। दुष्ट लोग ही ऐसा कर्म्म करते हैं; परन्तु साधु पुरुषउत्तम व्यवहारोंसे ही साधुओंको जय किया करते हैं; क्यों कि धर्म्मपूर्व्वक मरनेसे भी वह कल्याणकारी होता है; परन्तु पाप कर्म्मके जरिये जय होनेपर भी वह कल्याणकारी नहीं होता। हे राजन्! अधर्म्म आचरण करना उचित नहीं है; क्यों कि वह वज्र गिरनेकी भांति उसही समय फल प्रदान करता है, परन्तु वह फल शाखा और मूल पर्य्यन्त सब भस्म करके लोगोंके हस्तगत होता है। पापी पुरुष पाप कर्म्मोंसे अर्थ प्राप्त करके अत्यन्त तृप्त होता है और उससे बर्द्धित होकर उस पाप कर्म्ममें ही आसक्त रहता है। जो पापी पवित्र पुरुषोंकी उपहास करते हुए धर्म्मकी अविद्यमानता बोध करता है, वह धर्म्म विषयमें श्रद्धाहीन मनुष्य विनष्ट हुआ करता है; और स्वयं वरुण पाशमें बन्धके अपनेको अमरकी भांति समझता है; वायुसे परिपूरित बड़े चमड़ेकी भांति सत्कर्म्मसे निवृत्त रहता है; और अन्तमें नदीके किनारे रहनेवाले वृक्षकी भांति जड़ सहित नष्ट होता है, अनन्तर उस पापीके मरनेपर लोग उसे पत्थरसे फूटे हुए घड़ेकी भांति अभिनन्दन किया करते हैं, इससे राजा धर्म्मके जरिये विजय और कोष प्राप्त करनेकी अभिलाषा करे।

९५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा अधर्म्मके अनुसार जयकी इच्छा न करे; क्यों कि कोई भूपति भी अधर्म्मके अनुसार विजय लाभ करनेमें सम्मत नहीं हैं। हे भरत-श्रेष्ठ! अधर्म्मयुक्त विजय अनित्य है; उससे स्वर्ग प्राप्त नहीं होता; बल्कि वैसी विजय पृथ्वी और भूपति दोनोंको ही नष्ट किया करती है। इससे जो पुरुष युद्धमें कवचरहित होकर हाथ जोड़के 'मैं आपकी शरणमें हूं' ऐसा वचन कहके शस्त्र परित्याग करे राजा वैसे मनुष्यका वध न करे। जो पुरुष बलसे जीता जाय, राजा उसके साथ युद्ध न करके एकवर्ष पर्य्यन्त "मैं आपका दास हुआ" उसे ऐसी ही शिक्षा दे। सम्वत् बीतनेसे उस भांति शिक्षित होनेपर पुत्रके समान उसका पालन करना होगा। जो कन्या बलपूर्व्वक हरण की जावे; राजा उससे कहे कि तुम मुझे वा दूसरेको बरण करोगी? सम्वत् भरके बीच ऐसाही पूछे। अनन्तर यदि वह कन्या दूसरेकी अभिलाषिनी हो, तो उसे परित्याग करना होगा; और ऐसे ही कुलसे दास दासी आदि जो कुछ धन हरके लाया गया होवे, उसे भी फिर लौटाना होगा। कष्य अर्थात् तस्कर आदि दुष्टोंका जो

धन हरण किया जाता है, वह स्थायी नहीं होता ; इससे उसे व्यय करना चाहिये और उनकी सब गौवें ब्राह्मणोंको दूध पीनेके वास्ते दी जावें, बैल बोझा ढोनेके वास्ते नियुक्त होवें; परन्तु वे लोग यदि शरणागत हों, तो उनके विषयमें क्षमा करनी होगी। राजा राजाके साथ ही युद्ध करे, उससे धर्म्म होता है ; इससे दूसरे क्षत्रिय पुरुष राजाके सम्मुख होकर कभी शस्त्र न चलावें। दोनों ओरकी सेना इकट्ठी होनेपर यदि ब्राह्मण उसके मध्यवर्त्ती हो, तो उस समय दोनों ओरकी सेना शान्ति अवलम्बन करके युद्धसे निवृत्त होवें। जो ब्राह्मणको उल्लङ्घन करते हैं, वे सदा मर्य्यादा भेद किया करते हैं। अधिक कहांतक कहें, जो लोग इस मर्य्यादाको अतिक्रम करते हैं, वेही अधम क्षत्रियोंमें गिने जाते हैं। जो क्षत्रियधर्म्मको लुप्त और मर्य्यादाको भेद करता है, वह पुरुष क्षत्रियसभामें अग्राह्य होता तथा क्षत्रियोंके बीच नहीं गिना जाता। विजयकी इच्छा करनेवाला राजा कभी उस वृत्तिका अनुवर्त्ती न होवे, क्यों कि धर्म्मसे प्राप्त हुई विजयसे बढ़के क्या कोई अधिक लाभ होसक्ता है। सहसा-नीचस्वभाववाले प्राणियोंको शीघ्र शान्तवाद और भोगदानसे प्रसन्न करना ही राजाओंको परम नीति है; क्यों कि वे सब कठोर वचन कहके बलपूर्वक वशमें किये जानेपर अत्यन्त ही दुखित होके राजाके सब व्यसनोंकी परीक्षा करते हुए अपने राष्ट्रसे भागकर सब भांतिसे शत्रुओंकी उपासना किया करते हैं। हे राजन्! वे लोग असन्तुष्ट होनेपर सब प्रकारसे राजाके व्यसनके अभिलाषी होकर आपदकालमें राजाके शत्रुओंकी अनुकूलता करते हैं ; इससे राजा किसी प्रकार भी शत्रुओंको छलसे न ठगे तथा उन्हें अत्यन्त क्रुद्ध न करे। क्यों कि वे लोग चाहे कितने ही उत्पन्न क्यों होवें ; उससे उनका जीवन नष्ट नहीं होता ; इस ही कारण राजा थोड़ेमें ही सन्तुष्ट होकर पवित्र जीवनका ही अत्यन्त मान करे। जिसका जनपद उन्नत, सम्पत्तियुक्त, राजप्रिय और सन्तुष्ट सेवक तथा मन्त्रीयुक्त होता है, वह राजा ही दृढ़मूल हुआ करता है। जो ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और दूसरे पूजनीय श्रुतिसम्मत ब्राह्मणोंकी पूजा तथा उचित सम्मान किया करते हैं, वे जगत्में लोकवित कहके विख्यात होते हैं। महाराज! सुरपति इन्द्रने ऐसे ही व्यवहारोंसे पृथ्वीमण्डल प्राप्त किया है ; इससे राजा लोग इन्हीं व्यवहारोंके अनुसार इन्द्रके विषयकी जय करनेकी इच्छा करते हैं। हे राजन्! राजा प्रतर्द्दनने महायुद्धमें प्रजा समूहके भूमिके अतिरिक्त समस्त धन तथा अन्न और औषधियोंको भी हरण किया था; और राजा दिवोदासने अग्निहोत्रके अग्निसे बची हुई हवि तथा भोजनीय सिद्धान्न हरण किया था, उस ही कारण वे लोग निन्दित हुए। हे भारत! राजा नाभागने श्रोत्रियार्थ और तापसार्थके अतिरिक्त दूसरे स्थानोंका सराजक राज्य दान किया था। हे युधिष्ठिर! धर्म्म जाननेवाले प्राचीन राजाओंमें जो सब उत्तम व्यवहार विद्यमान थे, वे सब मेरे अभिलषित हुए हैं। राजा दूसरी सब भांतिकी विद्याके जरिये विजयकी इच्छा करे ; परन्तु माया और दम्भके जरिये अपने ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा न करे।

९६ अध्याय समाप्त।

युधिषिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रधर्म्मसे बढ़के पापयुक्त धर्म्म दूसरा नहीं है ; क्यों कि राजा युद्धमें पराजित होकर स्वयं भागते हुए सेनामें स्थित निर्दोषी महाजन-वैश्योंको कालके ग्रासमें डालते हैं। हे विद्वन्! इससे राजा किन कर्म्मोंसे सब लोकोंकी जय करे? इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं ; इसे आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, राजा लोग पापियोंके निग्रह, साधुओंके संग्रह, यज्ञ और दानसे ही पवित्र हुआ करते हैं। जो राजा विजयकी इच्छासे प्राणियोंको पीड़ित करते हैं; वे ही फिर विजय प्राप्त करके प्रजा समूहको बर्द्धित किया करते हैं। वे दान; यज्ञ और तपोबलसे बुराइयोंको दूर करते और प्राणियोंके ऊपर कृपा करते हैं; इस ही कारण उनका पुण्य विशेष रूपसे बर्द्धित हुआ करता है। जैसे खेतको परिष्कार करनेवाला कृषक खेतको साफ करनेके वास्ते तृण और धान्य दोनोंको काटता है, उससे धान्य नष्ट नहीं होता; बल्कि उससे खेत सब भांतिसे साफ होनेसे फिर उसमें धान्यकी अत्यन्त वृद्धि होती है। इसी भांति जो राजा तस्कर आदि वध्य पुरुषोंको बध करते हैं, उन तस्करोंके नष्ट होनेसे उनके प्रजाको बार बार वृद्धि हुआ करती है। जब डाकू लोग प्रजाके धनको हरते और प्राण बध करते हुए उन्हें अनेक प्रकारके क्लेश देते हैं, उस समयमें जो राजा डाकुओंके दलसे उन प्रजापुञ्जको रक्षा करता है; वैसा राजा ही प्रजा समूहका धनदाता और सुखदाता होके विराजमान होता है। अनन्तर वह अभय दक्षिणा-युक्त यज्ञकरके इस लोकमें अनेक भांतिके सुखको भोगता हुआ इन्द्र लोकके समान स्थानको प्राप्त करता है। शत्रु लोग ब्राह्मण बधके वास्ते उद्यत हुए हों, तो उस समय जो राजा युद्ध यज्ञमें गमन करके यूपस्वरूप निज शरीरको त्यागता है, वह अनन्त दक्षिणायुक्त यज्ञ रूपसे गणित होता है। और वह युद्धमें भयरहित होके शत्रुओंके ऊपर बाण चलावे, तो देवता लोग उससे बढ़के पृथ्वी पर कुछ भी कल्याण नहीं देखते। युद्ध-भूमिमें जितने बाण उसके देहके चमड़ेको बेधते हैं, उतने ही परिमाणसे वह सर्व्वकाम-प्रद और अक्षय लोकोंको इच्छानुसार भोगता रहता है; और युद्धमें उसके शरीरसे जो रुधिर बाहर होता है, उस रुधिर बहनेसे वह दुःखके जरिये सब पापोंसे मुक्त होता है। धर्म्म जान-नेवाले पुरुष ऐसा कहा करते हैं, कि जो क्षत्रिय बाणोंकी चोटसे पीड़ित होकर जिन दुःखोंको सहते हैं, उस ही दुःख भोगके जरिये उनको महत् तपस्या हुआ करती है। जैसे प्राणी बादलोंसे जलकी इच्छा करते हैं, वैसे ही भय-शील सब धर्म्मात्मा पुरुष भी युद्धमें शूर पुरुषोंके पीछे रहके निज शरीर रक्षाकी अभिलाषा करते हैं। यदि शूर पुरुष क्षेमकालकी भांति भयके समय पिछाड़ी स्थित उन भयभीत मनु-ष्योंकी रक्षा करके उन लोगोंको किसी प्रकार युद्धकी ओर नहीं जाने देते, तो ऐसा होनेसे उन लोगोंका वह पुण्य विद्यमान रहता है। हे राजन्! युद्धमें समान बलवाले पुरुषोंमें भी महत् अन्तर देखा जाता है, क्योंकि समस्त सेनाके इकट्ठी होनेपर जो पुरुष प्रचण्ड हो जाता है, उसके सम्मुख कोई भी गमन करनेमें समर्थ नहीं होता। उस भयङ्कर युद्धमें शूर पुरुष ही स्वर्ग प्राप्तिके मार्गको अवलम्बन कर शत्रुओंके सम्मुख होकर निज शरीर त्याग करते हैं; परन्तु भीरु मनुष्य उस समय सहायको त्यागके भाग जाते हैं। यदि भीरु मनुष्य युद्धमें शूर पुरुषोंसे रक्षित होके उन्हें नमस्कार करें, तो उनका न्याय कार्य्य करना सिद्ध होता है; नहीं तो उन लोगोंको वह भय विद्यमान रहता है। हे तात! जो लोग सहायकोंको त्यागके अपने मङ्गलकी अभिलाष करके घरकी ओर भाग जाते हैं, तुम वैसे अधम पुरुषोंका संग्रह मत करो। जो सहायोंको परित्याग करके निज प्राण रक्षाकी अभिलाष करते हैं, इन्द्र आदि देवतालोग उसका कल्याण नहीं करते। इससे शूरवीर क्षत्रिय पुरुष वैसे मनु-ष्योंको काठ वा ढेलोंसे नष्ट करें अथवा कटा-किसे जला देवें; वा पशु मारनेकी भांति मार डालें। शूरवीर क्षत्रियोंको क्लेद और मूत्र परि

त्याग कर रोदन करते हुए शय्यापर मरनेसे उन्हें अधर्म्म होता है। जो क्षत्रिय घाव रहित शरीरसे मृत्युको प्राप्त होता है, शास्त्र जाननेवाले पण्डित लोग उसके वैसे कार्य्यको प्रशंसा नहीं करते। हे तात! इससे क्षत्रियोंको घरमें मरना श्रेष्ठ नहीं है; क्यों कि शूरताभिमानी पुरुषोंका शरण नष्ट होनेपर वह अत्यन्त अधर्म्म युक्त और निन्दनीय हुआ करता है। और मुझे यह दुःख हुआ है, मैं बहुत कष्ट पाता हूं, तथा मैं पापी हूं,—ऐसा वचन लोगोंके समीप प्रकाशित करते हुए मुख बनाकर मलिन और कीर्त्तिरहित होकर पुत्र, सेवक आदिमें शोचनीय हुआ करता है। शूरता रहित क्षत्रिय ही रोगसे पीड़ित होके आरोग्यताकी इच्छा करता है, और आरोग्य न होनेपर बार बार मृत्युकी अभिलाष किया करता है। परन्तु बलसे युक्त शूरताभिमानी वीर क्षत्रिय ऐसी मृत्युकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वे लोग स्वजनोंसे घिरकर युद्धमें संग्राम करके शाणित शस्त्रोंसे घायल होके मृत्युलाभ किया करते हैं, शूर पुरुष काम क्रोधसे युक्त होकर अत्यन्त युद्ध करते हुए शत्रुओंके बाणोंसे शरीर घायल होनेपर भी उसे पीड़ा नहीं समझते। वे शूर क्षत्रिय युद्धमें निज धर्म्मसे प्राप्त धनक लोकोंसे पूजित उत्तम मृत्युलाभ करके शत्रुओंको सलाकताको पाते है। जो शूर पुरुष प्राणकी आशा छोड़के सब तरहके उपायके सहित युद्धमें सम्मुख स्थित होके पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भागते नहीं; वे इन्द्रलोकमें बास करते हैं। और जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुओंमें घिरकर दीन भावसे युक्त नहीं होते, वे अक्षय लोक प्राप्त करते हैं।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! संग्राममें पीठ न दिखाके युद्ध करनेवाले शूर क्षत्रिय रणभूमिमें मरके किन लोकोंमें गमन करते हैं, वह मुझसे विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग अम्बरीष और इन्द्रके सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहासको दृष्टान्त रूपसे वर्णन किया करते हैं।

नाभागपुत्र उदार बुद्धिवाले अम्बरीष अत्यन्त दुर्लभ स्वर्ग लोकमें जाके देवलोकमें सब तेजोमय बिमानोंपर स्थित शत्रु-सचिवोंके ऊपरसे जानेवाले अपने सेनापति सुदेवकी समृद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित होके इन्द्रसे बोले, हे सुरनाथ! मैं समुद्रके सहित सब पृथ्वीको यथारीति शासित करके धर्म्मको अभिलाषासे शास्त्र विधिके अनुसार चातुर्व्वर्ण्यधर्म्ममें प्रवृत्त हुआ हूं कठिन ब्रह्मचर्य्य और गुरु सेवासे धर्म्मपूर्व्वक सब वेद शास्त्रोंको पढ़ा है; खाने पीनेकी वस्तुसे अतिथियों स्वधा-मन्त्रोंसे पितरों, निज शाखामें वर्णित वेदाध्ययन और दानसे ऋषियों और सब भांतिके उत्तम यज्ञोंसे देवताओंको सन्तुष्ट किया है; और क्षत्रधर्म्ममें स्थित होकर यथा रीति शास्त्रको ओर दृष्टि करके शत्रुओंको सेनाका जय किया है। हे देवराज! यह शान्तात्मा सुदेव पहिले मेरे सेनापति थे; इन्होंने मुख्य दक्षिणा युक्त यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न नहीं किया था; तब इन्होंने किस प्रकार मुझे अतिक्रम किया?

इन्द्र बोले हे तात! पहिले इस सुदेवने बहुतसे बड़े बड़े संग्राम यज्ञका विस्तार किया था; अब भी जो क्षत्रिय युद्ध करते हैं, उनका भी यह युद्ध यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। ऐसा निश्चय है, कि जो सब योद्धा सेनाके मुखमें प्राप्त होकर सावधान और दीक्षित होते हैं, वे युद्धयज्ञके अधिकारी हुआ करते हैं।

अम्बरीष बोले, हे इन्द्र! युद्धयज्ञमें हवि क्या है घृत और दक्षिणा क्या है? और ऋत्विक किसको कहते हैं, वह मुझसे कहिये।

इन्द्र बोले, उस यज्ञमें हाथी ही सब ऋत्विक घोड़े अध्वर्यु, दूसरेका मांस ही हवि और रुधिर घृतरूपसे वर्णित हुआ है। सियार गिद्ध ही काकोल और बाण ही इस यज्ञके सदस्य हैं; वेही यज्ञमें घृतशेष और हवि भोजन किया करते हैं। जलते हुए तेजधारवाले उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति और फरसे येही सब यज्ञ करनेवालेके स्रुवा हैं। वेगपूर्व्वक धनुषसे खींचे हुए दूसरेके शरीरका बेधनेवाले तीक्ष्ण बाण ही ऋजु, उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे और बड़े बाण ही उसके स्रुवा है, बाघके चमड़ेसे युक्त मियान और हाथी दांतके मूंठसे बने हुए हाथियोंके शरीरको विदारनेवाले खड्ग ही इस युद्ध-यज्ञमें रेखा खींचनेवाले खड्गाकार काष्ट हैं। शस्त्र छूटनेके समय अत्यन्त चोखे जलते और उत्तम पानी चढ़े हुए प्रास, शक्ति ऋष्टि और फरसोंका शब्द ही उस यज्ञकी संख्या और युद्धके जरिये विस्तीर्ण पुरुषोंसे उत्पन्न हुई बहुत सी वस्तु अर्थात् युद्धकी हवि हुआ करती है। संग्राम करते समय शस्त्रोंके लगनेपर शरीरसे पृथ्वीपर जो रुधिर गिरता है, वह होमकार्य्यमें उस यज्ञ करनेवालेको सर्व्वकामप्रद; समृद्धियुक्त पूर्णाहुति हुआ करती है। काटो! बेधन करो,— ऐसे जो सब शब्द सेनाके बीच सुनाई देते हैं, यज्ञके सामगान करनेवाले यमलोकमें उसे सामरूपसे गाया करते हैं। उस यज्ञमें शत्रुओंके सेना मुख हवि स्थापन करनेके पात्र और हाथी घोड़े आदि श्येनाचित् नाम अग्नि कहके वर्णित होते हैं। उस युद्धयज्ञमें सहस्र सेनाके मरनेपर जो सब कबन्ध उठते हैं वेही कबन्ध यज्ञ करनेवाले शूरके खदिरसे बने हुए आठ कोनेसे युक्त यूप रूपसे कहे जाते हैं। हे राजन्! हाथियोंके समूहको अङ्कुश देनेपर जो शब्द होता है, वही उस यज्ञके इड़ोपहूत मन्त्र और वषट्कार रूपी होता है। तलवाण और नगाड़ेके शब्द ही उस यज्ञमें त्रिसामा नाम उद्गाता हुआ करते हैं। हे राजन् युद्धमें ब्रह्मस्व हरण होनेपर जो क्षत्रिय प्रिय शरीरकी रक्षाकी आशा त्यागके निज देहको यूप रूपसे छोड़ते हैं; वह अत्यन्त दक्षिणासे युक्त यज्ञ रूपसे विराजमान होते हैं। जो शूर स्वामीके हितके वास्ते सेनाके सम्मुख पराक्रम प्रकाशित करके भयके कारण युद्धसे निवृत्त नहीं होते, वे मेरे स्थानके समान स्थानमें वास किया करते हैं। जिसकी वेदी अर्थात् युद्ध यज्ञकी भूमि काले चमड़ोंसे युक्त तलवार और परिघ समान भुजाओंसे परिपूरित होती है, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास करते हैं जिसके संग्राममें लोहू नदीके प्रवाह स्वरूप, मेरी मेढ़क और कछुवे, वीरोंकी हड्डियां कङ्कड़ समान मांसयुक्त रुधिर ही कीचड़, तलवारके चमड़े प्लव, केश सिवार, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़े पुल, पताकाध्वजा बेतसवृक्ष समान मरे हुए हाथी ग्राह, रुधिर ही जल, मरे हुए कुञ्जर महाग्राह, ऋष्टि और तलवार महानौका, गृद्ध, कङ्क, प्लवस्वरूप और वह नदी पार जानेवाले पुरुषोंसे दुःखसे तरने योग्य है, राक्षस समूहोंसे युक्त और भीरुओंको पापसागरमें बहाने वाली है। वह नदी उस संग्राम यज्ञका अवभृत-स्थान हुआ करता है। जिसके युद्धयज्ञमें भूमि शत्रुओंके सिर घोड़े और हाथियोंके गर्दनोंसे परिपूरित होती हैं, वह मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जिसके शत्रु सेनामुख पत्नीशाला, निज सेना मुख हवि स्थापनका पात्र, दक्षिण ओर स्थित सब योद्धा सदस्य और उत्तर ओर स्थित योद्धा लोग आग्नीध ऋत्विक होते हैं, उस शत्रुसेनारूपी भार्य्यासे युक्त यज्ञ करनेवाले पुरुषके वास्ते इन्द्रलोक आदि सब लोक निकटमें ही विद्यमान रहते हैं। व्यूहबद्ध दोनों सेनाके सम्मुखवर्त्ती शून्य प्रदेश ही युद्ध यज्ञ करनेवालेकी

त्याग कर रोदन करते हुए शय्यापर मरनेसे उन्हें अधर्म होता है। जो क्षत्रिय घाव रहित शरीरसे मृत्युको प्राप्त होता है, शास्त्र जाननेवाले पण्डित लोग उसके वैसे कार्य्यकी प्रशंसा नहीं करते। हे तात! इससे क्षत्रियोंको घरमें मरना श्रेष्ठ नहीं है; क्यों कि शूरताभिमानी पुरुषोंका शरबल नष्ट होनेपर वह अत्यन्त अधर्म युक्त और निन्दनीय हुआ करता है। और मुझे यह दुःख हुआ है, मैं बहुत कष्ट पाता हूं, तथा मैं पापी हूं,—ऐसा वचन लोगोंके समीप प्रकाशित करते हुए मुख बनाकर मलिन और कीर्त्तिरहित होकर पुत्र, सेवक आदिमें शोचनीय हुआ करता है। शूरता रहित क्षत्रिय ही रोगसे पीड़ित होके आरोग्यताकी इच्छा करता है, और आरोग्य न होनेपर बार बार मृत्युकी अभिलाष किया करता है। परन्तु बलसे युक्त शूरताभिमानी वीर क्षत्रिय ऐसी मृत्युकी इच्छा नहीं करते, बल्कि वे लोग स्वजनोंसे घिरकर युद्धमें संग्राम करके शाणित शस्त्रोंसे घायल होके मृत्युलाभ किया करते हैं, शूर पुरुष काम क्रोधसे युक्त होकर अत्यन्त युद्ध करते हुए शत्रुओंके बाणोंसे शरीर घायल होनेपर भी उसे पीड़ा नहीं समझते। वे शूर क्षत्रिय युद्धमें निज धर्मसे प्राप्त अनेक लोकोंसे पूजित उत्तम मृत्युलाभ करके शत्रुओंको सलाकताको पाते हैं। जो शूर पुरुष प्राणकी आशा छोड़के सब तरहके उपायके सहित युद्धमें सम्मुख स्थित होके पीठ नहीं दिखाते अर्थात् भागते नहीं; वे इन्द्रलोकमें वास करते हैं। और जो शूरवीर क्षत्रिय शत्रुओंमें घिरकर दीन भावसे युक्त नहीं होते, वे अक्षय लोक प्राप्त करते हैं।

९७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! संग्राममें पीठ न दिखाके युद्ध करनेवाले शूर क्षत्रिय रणभूमिमें मरके किन लोकोंमें गमन करते हैं, वह मुझसे विशेष करके कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें पण्डित लोग अम्बरीष और इन्द्रके सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहासको दृष्टान्त रूपसे वर्णन किया करते हैं।

नाभागपुत्र उदार बुद्धिवाले अम्बरीष अत्यन्त दुर्लभ स्वर्ग लोकमें जाके देवलोकमें सब तेजोमय बिमानोंपर स्थित शत्रु-सचिवोंके ऊपरसे जानेवाले अपने सेनापति सुदेवकी समृद्धि देखकर अत्यन्त विस्मित होके इन्द्रसे बोले, हे सुरनाथ! मैं समुद्रके सहित सब पृथ्वीको यथारीति शासित करके धर्मकी अभिलाषासे शास्त्र विधिके अनुसार चातुर्व्वर्णधर्ममें प्रवृत्त हुआ हूं कठिन ब्रह्मचर्य्य और गुरु सेवासे धर्मपूर्व्वक सब वेद शास्त्रोंको पढ़ा है; खाने पीनेकी बस्तुसे अतिथियों स्वधा-मन्त्रोंसे पितरों, निज शाखामें वर्णित वेदाध्ययन और होत्रासे ऋषियों और सब भांतिके उत्तम यज्ञोंसे देवताओंको सन्तुष्ट किया है; और क्षत्रधर्ममें स्थित होकर यथा रीति शास्त्रकी ओर दृष्टि करके शत्रुओंकी सेनाका जय किया है। हे देवराज! यह शान्तात्मा सुदेव पहिले मेरे सेनापति थे; इन्होंने मुख्य दक्षिणा युक्त यज्ञोंको करके ब्राह्मणोंको प्रसन्न नहीं किया था; तब इन्होंने किस प्रकार मुझे अतिक्रम किया?

इन्द्र बोले हे तात! पहिले इस सुदेवने बहुतसे बड़े बड़े संग्राम यज्ञका विस्तार किया था; अब भी जो क्षत्रिय युद्ध करते हैं, उनका भी यह युद्ध यज्ञ विस्तृत हुआ करता है। ऐसा निश्चय है, कि जो सब योद्धा सेनाके मुखमें प्राप्त होकर सावधान और दीक्षित होते हैं, वे युद्धयज्ञके अधिकारी हुआ करते हैं।

अम्बरीष बोले, हे इन्द्र! युद्ध-यज्ञमें हवि क्या है घृत और दक्षिणा क्या है? और ऋत्विक किसको कहते हैं, वह मुझसे कहिये।

इन्द्र बोले, उस यज्ञमें हाथी ही सब ऋत्विक घोड़े अध्वर्य्यु, दूसरेका मांस ही हवि और रुधिर घृतरूपसे वर्णित हुआ है। सियार गिद्ध ही काकोल और बाण ही इस यज्ञके सदस्य हैं; वेही यज्ञमें घृतशेष और हवि भोजन किया करते हैं। जलते हुए तेजधारवाले उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति और फरसे येही सब यज्ञ करनेवालेके स्रुवा हैं। वेगपूर्व्वक धनुषसे खींचे हुए दूसरेके शरीरका वेधनेवाले तीक्ष्ण बाण ही ऋजु, उत्तम पानी चढ़े हुए चोखे और बड़े बाण ही उसके स्रुवा है, बाघके चमड़ेसे युक्त मियान और हाथी दांतके मूंठसे बने हुए हाथियोंके शरीरको विदारनेवाले खड्ग ही इस युद्ध-यज्ञमें रेखा खींचनेवाले खड्गाकार काष्ट है। शस्त्र छूटनेके समय अत्यन्त चोखे जलते और उत्तम पानी चढ़े हुए प्रास, शक्ति ऋष्टि और फरसोंका शब्द ही उस यज्ञको संख्या और युद्धके जरिये विस्तीर्ण पुरुषोंसे उत्पन्न हुई बहुत सी वस्तु अर्थात् युद्धको हवि हुआ करती है। संग्राम करते समय शस्त्रोंके लगनेपर शरीरसे पृथ्वीपर जो रुधिर गिरता है, वह होमकार्य्यमें उस यज्ञ करनेवालेको सर्व्वकामप्रद; समृद्धियुक्त पूर्णाहुति हुआ करती है। काटो! बेधन करो,— ऐसे जो सब शब्द सेनाके बीच सुनाई देते हैं, यज्ञके सामगान करनेवाले यमलोकमें उसे सामरूपसे गाया करते हैं। उस यज्ञमें शत्रुओंके सेना मुख हवि स्थापन करनेके पात्र और हाथी घोड़े आदि श्येनाचित् नाम अग्नि कहके वर्णित होते हैं। उस युद्धयज्ञमें सहस्र सेनाके मरनेपर जो सब कबन्ध उठते हैं वेही कबन्ध यज्ञ करनेवाले शूरके खदिरसे बने हुए आठ कोनेसे युक्त यूप रूपसे कहे जाते हैं। हे राजन्! हाथियोंके समूहको अङ्कुश देनेपर जो शब्द होता है, वही उस यज्ञके इड़ोपहूत मन्त्र और वषट्कार रूपी होता है। तलत्राण और नगाड़ेका शब्द ही उस यज्ञमें त्रिसामा नाम उद्गाता हुआ करते हैं। हे राजन् युद्धमें ब्रह्मस्व हरण होनेपर जो क्षत्रिय प्रिय शरीरकी रक्षाकी आशा त्यागके निज देहको यूप रूपसे छोड़ते हैं; वह अत्यन्त दक्षिणासे युक्त यज्ञ रूपसे विराजमान होते हैं। जो शूर स्वामीके हितके वास्ते सेनाके सम्मुख पराक्रम प्रकाशित करके भयके कारण युद्धसे निवृत्त नहीं होते, वे मेरे स्थानके समान स्थानमें वास किया करते हैं। जिसकी वेदी अर्थात् युद्ध यज्ञको भूमि काले चमड़ोंसे युक्त तलवार और परिघ समान भुजाओंसे परिपूरित होती है, वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास करते हैं जिसके संग्राममें लोहू नदीके प्रवाह स्वरूप, भेरी मेढ़क और कछुवे, वीरोंकी हड्डियां कङ्कड़ समान मांसयुक्त रुधिर ही कीचड़, तलवारें चमड़े प्लव, केश सिवार, कटे हुए रथ, हाथी और घोड़े पुल, पताकाध्वजा बेतसवृक्ष समान मरे हुए हाथी ग्राह, रुधिर ही जल, मरे हुए कुञ्जर महाग्राह, ऋष्टि और तलवार महानौका, गृद्ध, कङ्क, प्लवस्वरूप और वह नदी पार जानेवाले पुरुषोंसे दुःखसे तरने योग्य हैं, राक्षस समूहोंसे युक्त और भीरुओंको पापसागरमें बहाने वाली है। वह नदी उस संग्राम यज्ञका अवभृत-स्नान हुआ करता है। जिसके युद्धयज्ञमें भूमि शत्रुओंके सिर घोड़े और हाथियोंके गर्दनोंसे परिपूरित होती हैं, वह मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। पण्डित लोग ऐसा कहा करते हैं, कि जिसके शत्रुसेनामुख पत्नीशाला, निज सेना मुख हवि स्थापनका पात्र, दक्षिण ओर स्थित सब योद्धा सदस्य और उत्तर ओर स्थित योद्धा लोग आग्नीध ऋत्विक होते हैं, उस शत्रुसेनारूपी भार्य्यासे युक्त यज्ञ करनेवाले पुरुषके वास्ते इन्द्रलोक आदि सब लोक निकटमें ही विद्यमान रहते हैं। व्यूहबद्ध दोनों सेनाके सम्मुखवर्त्ती शून्य प्रदेश ही युद्ध यज्ञ करनेवालेकी

वेदी होती है; उसमें यजमान ऋक, यजु और साम इन तीनों वेदोंको अग्निरूप कल्पना करके नित्ययज्ञके जरिये यज्ञ किया करते हैं। परन्तु जो शूर शत्रुओंसे पीड़ित हो भयके कारण भागता है, वह शूर पुरुष प्रतिष्ठारहित होकर नरकमें गमन करता है। जिनकी वेदी रुधिरके वेगसे युक्त और केश, मांस तथा हड्डियोंसे परिपूरित होती है, वे लोग परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो शूर पुरुष शत्रुके सेनापतिका वध करते उसकी सवारीपर चढ़ते हैं, बृहस्पतिके समान बुद्धिमान और विष्णुके समान पराक्रमशाली वे शूर पुरुष सबके स्वामी हुआ करते हैं। जो युद्धमें सेनापति वा उसके पुत्रको सामान्य जीवकी भांति ग्रहण करके वहांपर सत्कार युक्त होते हैं; वे मेरे तुल्य स्थानमें निवास किया करते हैं। शूर पुरुषोंके युद्धमें मरनेपर उनके वास्ते कभी शोक न करे; क्योंकि युद्धमें मरनेपर शूर पुरुष अशोचनीय होकर स्वर्गलोकमें सम्मानके पात्र हुआ करते हैं। युद्धमें मरे हुए पुरुषोंके वास्ते पिण्डदान, जलदान और अशौचकी विधि नहीं है, इससे कोई उनके वास्ते इन सब कर्म्मोंको करनेकी इच्छा न करे; युद्धमें मरनेपर पुरुष जिन लोकोंको प्राप्त करते हैं, वह मुझसे सुनो। जो पुरुष युद्धमें मरते हैं, उससे उत्तम अप्सराओंकी एक हजार कन्या "ये हमारे पति होंगे।" ऐसा कहती हुई उनकी ओर शीघ्रताके सहित दौड़ती हैं। जो शूर युद्ध कर्म्मको सिद्ध करते हैं, उनके वास्ते वही तपस्या, पुण्य, सनातन धर्म और चारों आश्रमरूपी हुआ करता है। जो पुरुष संग्रामके समय मुखमें तृण, धारण, करके "मैं आपका हुआ," ऐसा वचन कहे, उसे और बूढ़े बालक स्त्री तथा पीठ देनेवाले मनुष्योंका वध न करे। मैं जम्भ, वृत्त, बल, पाक, शतमाय, विरोचन, दुर्व्वार्य्य, नमुचि, नैकमाय, शम्बर, दैतेय, विप्रचित्ति, सब दनुपुत्रों और प्रह्लादको युद्धमें मारके देवताओंका स्वामी हुआ हूं।—भीष्म बोले, योद्धा अम्बरीषने इन्द्रका ऐसा वचन सुनकर उसे ग्रहण करके निज सिद्धि लाभ की थी।

९८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! राजा प्रतर्द्दन और मिथिलापति जनक इन दोनोंने जिस प्रकार शत्रुसे युद्ध किया था, शूर पुरुषोंके उत्साह विषयमें पण्डित लोग उस प्राचीन इतिहासको दृष्टान्तरूपसे वर्णन किया करते हैं। हे राजन्! संग्रामयज्ञमें दीक्षित मिथिलापति जनकने निज योद्धाओंको स्वर्ग और नरक दिखाते हुए उन लोगोंसे कहा था, हे योद्धा लोगो! तुम लोग युद्धमें भय रहित शूरपुरुषोंके इस प्रकाशमान लोकको देखो; यह स्थान गन्धर्व्वोंकी कन्याओंसे; घिरा हुआ सब कर्म्म सिद्ध करनेवाला और अक्षय है। और युद्धसे भागनेवाले पुरुषोंके वास्ते यह नरक उपस्थित है; इसमें पतित होनेपर सदा अयश हुआ करता है, इससे तुम लोग संन्यास बुद्धि अवलम्बन करके शत्रुओंको जीतो; अप्रतिष्ठित नरकके वशवर्त्ती न बनो। हे शत्रुओंके जीतनेवाले! योद्धाओंने राजा जनकका ऐसा वचन सुनके युद्धमें उन्हें हर्षित, करके शत्रुओंको जीता था। इससे ऊंचे चित्तवाले शूरवीर मनुष्योंको युद्धमें सदा अगाड़ी स्थित रहना अवश्य उचित है। गजसेनाके बीच रथी, रथियोंके बीच घुड़सवार और घुड़सवारोंके बीच पैदल सेना स्थापित करनी उचित है। युधिष्ठिर! जो राजा इस प्रकार व्यूह बनाते हैं, वे शत्रुओंको सदा जय किया करते हैं। अत्यन्त ऊंचे चित्तवाले शूर पुरुष समुद्रको क्षोभित करनेवाले मकर घड़ियालकी भांति अच्छी प्रकार युद्ध करते हुए शत्रुसेनाको क्षोभित करके स्वर्ग गति लाभ करते हैं। विपदग्रस्त योद्धाओंको इकट्ठे कर यथा रीति

स्थापित करके उन्हें रक्षित करे, विजभूमिकी रक्षा करे, और जो लोग लौटनेके भयसे युद्धसे भागें, अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीड़ा न करे। हे राजन्! जोनेकी आशा त्यागके लौटे हुए शूर पुरुषोंका वेग अत्यन्त असह्य होता है, इससे उन लोगोंका बहुत पीड़ा करना उचित नहीं। शूर पुरुष अत्यन्त भागनेवाले पुरुषोंके ऊपर शस्त्र चलानेकी इच्छा नहीं करते; इससे अपनी सेनासे उन लोगोंका बहुत पीड़ा न करे अचर चरके, बिन दांतवालोंके, जल प्यासे लोगोंके और कादर पुरुष शूर पुरुषोंके अन्न हुआ करते हैं। डरपोक पुरुष पीठ, उदर, हाथ और पांवसे समान होनेपर भी पराजित हुआ करते हैं; इससे भयसे आरत पुरुष पृथ्वीमें गिरके हाथ जोड़कर शूर पुरुषोंकी उपासना करें। शूर पुरुषोंकी भुजासे ये लोग सदा पत्रकी भांति रक्षित हुआ करते हैं, इससे सब अवस्थाओंमें ही शूर लोग सम्मान भाजन हुआ करते हैं। तीनों लोकोंके बीच पराक्रमसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है; क्योंकि शूर पुरुष सबको ही पालन किया करते हैं, और शूर पुरुषोंसे ही सब प्रतिष्ठित रहता है।

९९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! विजयकी इच्छा करनेवाला अत्यन्त धर्म्म पीड़न करके भी भयभीत सेनाके सब पुरुषोंको राज भय दिखाके किस भांति रणभूमिको ओर भेजे? यह मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

भीष्म बोले, क्षत्रधर्म्म, मृत्यु निश्चय, शिष्टाचार और राजभय प्रदर्शनजनित प्रवृत्त इन चार कारणोंसे युद्धधर्म्म स्थिर हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! मैं तुमसे सदा फल देनेवाले उपाय धर्म्म सब फिर कहूंगा; डाकूलोग धर्म्म और अर्थके बाधक हुआ करते हैं, उनके नाश और सब कार्य्योंकी उत्तम सिद्धिके वास्ते इस समय मैं तुमसे शास्त्रोक्त उपाय कहता हूं, सुनो हे भारत! राजा लोग सरल और कुटिल दोनों ही बुद्धि मालूम करें; परन्तु कुटिल बुद्धि मालूम करके उसका सेवन न करें, क्योंकि कुटिल बुद्धि आगत विषयोंका बाधक हुआ करती है। शत्रु लोग भेदके जरिये राजाके निकट उपस्थित होने पर जैसे राजा उन लोगोंको दण्ड देता है, वैसे ही उन दुष्टोंको भी दण्ड दे। हे पार्थ! हाथियोंके शरीरको ढापनेके वास्ते गज, बैल और बकरेके चमड़े; शल्य, कांटे, लोह, तनत्राण, चवंर, पानी चढ़े और चोखे शस्त्र, पीतल और लोहेके कवच, अनेक रङ्गोंसे रङ्गी हुई ध्वजा पताका, तेजधारवाली ऋष्टि, तोमर, तलवार, फरसे और ढाल इन सब सामग्रियोंको युद्धके वास्ते संग्रह कर रखे। शस्त्रों पर पानी चढ़ाना, और योद्धाओंको युद्धमें दृढ़ करना होगा. हे भारत! चैत और अगहनका महीना ही सेनाकी यात्राका उत्तम समय है; इससे जब पृथ्वी कीचड़ और शस्योंसे रक्षित तथा निर्म्मल हुआ करती है, और समय बहुत शीत तथा अत्यन्त उष्ण नहीं रहता तभी शत्रुओंको व्यसनमें फंसा देखके उनको ओर सेना भेजे। क्योंकि शत्रुओंको निवारण करनेके विषयमें इसी भांति सेनाका नियोग ही उत्तम हुआ करता है। जल और तृणयुक्त समतल मार्ग ही सुगम होता है, इससे मार्गको जाननेवाले वनचारी दूतोंके जरिये उसे भलीभांति बारम्बार मालूम करे। मृगसमूहकी भांति जङ्गलके मार्गसे गमन करना कठिन है, इससे विजयकी इच्छा करनेवाले राजा लोग सेनाको पहिले कहे हुए मार्गसे भेजा करते हैं। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए सामर्थवान पुरुष सेनाके अगाड़ी रहें और टिकनेका स्थान जल दुर्गसे घिरा हुआ एक मार्गवाला होवे, ऐसा होनेसे समीप स्थित

शत्रुलोग किसी प्रकार भी उसे आक्रमण नहीं कर सकेंगे। जिस निवास स्थानके समीपवाली भूमिमें अवकाश रहें और उसके निकट वन हो, उस स्थानको ही राजा अधिक गुण युक्त समझे; इससे निज सेनाके निकटमें रहनेवाले वैसे स्थानमें अनेक गुणोंसे युक्त युद्ध जाननेवाले पुरुषोंको स्थापित करे। निज वनके समीप ऊपर कहे हुए पुरुषोंका स्थित होना पैदल सेनाका उतरना और संगोपन इन सब कार्य्योंके ही शत्रुओंको पराजित करनेके परम उपाय जानना चाहिये। इस ही रीतिके अनुसार योद्धा लोग सप्तर्षियोंको आगे करके पर्व्वतकी भांति अचल भावसे युद्ध करने पर दुर्ज्जय शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे।

हे युधिष्ठिर! जिस दिशामें वायु, सूर्य्य और शुक्र रहें, उस ही ओर युद्ध करनेसे जय होती है; परन्तु ये सब यदि एक ओर रहें, तो पूर्व्वापरके अनुसार श्रेष्ठ हुआ करते हैं। युद्ध जाननेवाले पुरुष कीचड़हीन जलरहित अमर्य्याद अर्थात् पुल और प्रकार आदि सीमारहित तथा ढेलेसे रहित समतल भूमिकी प्रशंसा किया करते हैं। हे भारत! रणभूमि कीचड़ और गड्ढेसे रहित तथा हाथी और योद्धाओंके वास्ते भूमि छोटे हत्तों महाकक्ष और जलसे युक्त होने पर प्रशंसनीय होती है। पैदल सेनाके निवासकी जमीन बहुतेरे वक्षिलोंसे घिरो हुई महाकक्षयुक्त, वास और वेलोंसे परिपूरित तथा पहाड़ और उपवनसे युक्त होनेसे प्रशंसनीय हुआ करती है। हे राजन्! वर्षारहित दिनोंमें अनेक पैदल, रथ और घोड़ोंसे युक्त सेना दृढ़ और प्रशंसनीय हुआ करती है; प्रावट् ऋतुमें अनेक हाथी और पैदलयुक्त सेना प्रशंसित होती है; इससे राजा ये ही सब गुण और देश कालका विचार करके सेना प्रयोग करें। जो राजा इसी भांति विचार करके तिथि और नक्षत्रमें शुभ आशीर्व्वादसे युक्त होकर पूरी रीतिसे सेना नियोग करता है, वह सदा जय लाभ किया करता है। मोक्षमार्ग अवलम्बन करनेवाले, भागने, चलने खाने, और पीनेवालों तथा सोते, प्यासे और विक्षिप्त पुरुषोंके ऊपर प्रहार न करें। जो अत्यन्त क्षिप्त, व्यतिक्षिप्त, निहत, प्रतनूकृत अविश्वस्त, कृतारम्भ सुरङ्ग आदि गुप्त उपाय जाननेवाले, प्रतापित तृण आदि लानेके वास्ते बाहिर होनेवाले, निज गृह राजद्वार वा अमात्य द्वारके अनुवर्त्ती इत्यादि इन सबके स्वामी हैं, उनका वध न करें। जो दूसरेको सेनाको भेदकर अपनी सेना स्थापित करते हैं, उन्हें अपने समान खाने पीनेकी वस्तु प्रदान करें और उनका दूना वेतन कर देवे। जो लोग दशके स्वामी हैं, उन्हें, एक सौके स्वामोको सहस्राधिपति करके सावधानोके सहित उनको रक्षा करें। मुख्य सेनाको इकट्ठी करके सब पुरुषोंसे कहना चाहिये, कि तुम लोग शपथ करके मेरे समीप यह स्वीकार करो, कि हम सब इकट्ठे होकर विजयके वास्ते युद्धमें प्रवृत्त होंगे, आपसमें कोई किसीको परित्याग करके न भागेंगे। जो युद्ध आरम्भ करके मुख्य योद्धाओंको शत्रुओंसे नष्ट करावें, और जो लोग डरपोक हों, वे इसी समय स्वयं निवृत्त होवें। जो लोग शपथ पूर्व्वक ऐसा कार्य्य स्वीकार करें, वे लोग युद्धमें सेनाके आने वा युद्ध बन्द होने पर अपनी ओरके मुख्य सैनिक पुरुषोंका वध न करें, बल्कि वे लोग अपनी तथा अपनी ओरकी सेनाके पुरुषोंकी रक्षा करके शत्रु पक्षीय सेनाका वध करें। और जो पुरुष संग्राममें भागता है, उसका अर्थनाश वध और अकीर्त्ति होती है और वह लोगोंके निकट कठोर और निन्दित वचन सुना करता है; इससे हमारे शत्रुपक्षीय प्रतिध्वस्त दांत-ओठसे युक्त शस्त्ररहित शत्रुओंके अरिसे घिरे पुरुषोंको सदा अर्थनाश आदि होवे। जो सब पुरुष

दुस्से भागते हैं, वे नीच मनुष्योंमें गिने जाते हैं, बल्कि वैसे पुरुष समूहको हानि भावके वास्ते हैं, इस लोक और परलोकमें वे लोग सुखभागी नहीं होते। हे तात! विजई शत्रु भागोंके हर्षयुक्त चित्त और प्रसंसा वादके सहित मण्डलाकार गतिसे भागनेवाले पुरुषोंकी ओर दौड़ने पर वह अत्यन्त ही असह्य होजाता है; ऐसा ही क्यों! युद्धमें शत्रुओंके जरिये जिसका यश नष्ट होता है, मैं मृत्युको भी उससे अधिक असह्य और दुःखदायक नहीं समझता इससे जयको ही धर्म और सब तरहके सुखका मूल जानना चाहिये, क्योंकि जय न होने पर शूर पुरुष भी कादरोंकी तरह परम ग्लानिसे युक्त होते हैं। 'मैं स्वर्गके कामनासे युद्धमें जीनेकी आशा त्यागके विजयी वा मरके महत् गति लाभ करूंगा'—ऐसी ही शपथ करके जो वीर पुरुष जीनेकी आशा त्याग कर युद्धमें शत्रुसेनाका नाश करते हैं, वेही लोग भय-रहित होके विख्यात हुआ करते हैं। हे राजन्! शत्रुओंके साथ युद्ध करनेके वास्ते ढाल तलवार ग्रहण करनेवाले पुरुष सेनाके आगे, शकट सेना पीछे और दुर्गस्थित सेना बीचमें रहे; और पुरमें रहनेवाली जो सब सेना पुरमें गमन करे, वह पदातियोंकी रक्षा करे। जो सब मनस्वी शूरवीर बलवान पुरुष आगे रहनेकी इच्छा करें, और वे सब पहिले पैदल सेनाको घेरके स्थित रहें। और यत्न पूर्व्वक डराङ्गोंके उत्साहको बढ़ाना होगा, क्योंकि वे सब उत्साहित होने पर दल बांधके समीपमें ही स्थित होंगे। सेनापति थोड़ी सेना इकट्ठी करके शत्रुओंके साथ युद्ध करावे और उसे इच्छानुसार अनेक भांतिसे विस्तारित करे, और बहुतोंके सहित थोड़ी सेनाको सूचीमुख होकर युद्ध करना उचित है; इससे वह भी करे। निकृष्ट सेना युद्धमें तत्पर होके जब बाहु युद्ध करती रहे, तब उसके उत्साहको बढ़ानेके वास्ते सत्य वा मिथ्या ही हो, "हमारा शत्रु बलवर्जित हुआ है, तुम लोग निर्भय होके प्रहार करो शत्रुओंके भागने पर ऐसा ही कहके हर्ष प्रकाश करे। बलवान पुरुष भयानक शब्द करते हुए शत्रुओंकी ओर दौड़ें; ताली; तलत्राण गोशृङ्ग आदि शब्द किये जावें, और आगे चलनेवाले पुरुष लोग मृदङ्ग, भेरी और ढोल आदि बाजे बजावें।

१०० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे रूप कैसे स्वभाव, किस प्रकारके आचार, कैसे कवच और किस भांतिके शस्त्रशास्त्रों शूर लोग युद्ध करनेमें समर्थ होते हैं?

भीष्म बोले, युद्धमें वीर पुरुष देशाचार और कुलाचारसे युक्त होके जैसे शस्त्र तथा वाहन आदि सब सामग्रियोंको संग्रह करके युद्ध कार्य्यमें प्रवृत्त होते हैं, उसे सुनो। गान्धार, सिन्धु और सौवीर देशीय वीर लोग नखर और गाड़से युद्ध किया करते हैं, वे सब युद्ध करनेमें निडर और अत्यन्त बलवान हैं; तथा सब युद्धके जाननेवाले हैं। उशीनर देशीय शूर लोग सब शस्त्रोंके जाननेवाले और बलवान हैं। प्राग्देशीय योद्धा लोग हाथियोंके युद्धमें निपुण और कूटयोधी हैं। काम्बोज, यवन और मथुरा वासी शूर पुरुष प्राग्देशिय योद्धाओंकी भांति युद्ध किया करते हैं। दक्षिणी लोग तलवार और बाहु युद्धमें अत्यन्त निपुण हैं।

हे युधिष्ठिर! सभी स्थानोंमें इसी भांति महापराक्रमी महाबलवान पुरुष प्रायः उत्पन्न हुआ करते हैं; अब उनके यथोक्त लक्षण सुनो। वे सब ही प्राणियोंको पीड़ित करनेवाले, उनका बोलना, चलना और देखना सिंह और शार्दूलके समान, नेत्र कुलिङ्ग और पारावत पक्षीकी तरह होते हैं। स्वर हरिनके शब्द समान, आंख हाथी तथा ऋषभनेत्रके समान

होता है ; वे सब ही प्रमत्त, मूढ़, क्रोधी, क्रोधमुखी शरभकी भांति होते हैं ; किङ्किणी और बादलकी भांति शब्द करनेवाले दूरगामी तथा दूरपाती होते हैं। उनकी नाक चौड़ी जीभ नासिकाके अग्रभागको स्पर्श करनेवाली शरीर बिड़ालके समान ; कुजा, केश, त्वचा अत्यन्त सूक्ष्म और वृत्ति शीघ्रतायुक्त तथा चपल हुआ करती है। उनमेंसे कोई कोई गोधाकी भांति निमीलित, कोमल स्वभाव, तुरङ्गकी तरह गमन और शब्द करनेवाले तथा सब युद्धके जाननेवाले हुआ करते हैं। और उनमेंसे जो लोग सुसंहत उत्तम शरीरसे युक्त, सुन्दर दृढ़ अवयव और बड़ी छातीवाले हैं, वे प्रवादके समय कोपित और झगड़ेके समयमें हर्षित हुआ करते हैं। गम्भीर लोचन, कढे नेत्र, पिङ्गाक्ष, भृकुटी मुख, नकुल नेत्र, युद्धमें शरीर त्यागनेवाले, कुटिल दृष्टि, पृथुललाटवाले, मांसरहित दाढ़ीसे युक्त, बज्रकी तरह भुजा अङ्गुली चक्रसम्पन्न, कृश, शिराल और दुरासद होती है ; ये सब शूर लोग युद्ध उपस्थित होनेपर हाथीकी भांति मतवाले होकर वेगके सहित उसमें प्रवेश करते हैं। जिनके केशान्त प्रकाशमान और स्फुटित, पार्श्व स्थल स्थूल, मुख दाहड़ीयुक्त, स्कन्धसे उन्नत ग्रीवास्थल पृथु, विकटरूप, स्थूल और पिण्डाकार, स्वभाव वासुदेव तथा गरुड़की भांति उद्दत, वर्त्तुलाकार सिर, मुख बिड़ालकी तरह बड़ा और स्वर कठोर होता है ; वे उग्र स्वभावयुक्त, मनस्वी, शब्दके अनुसार बाण चलानेवाले, अधार्म्मिक, गर्व्वित भयङ्कर, रौद्रदर्शन युद्धमें शरीर त्यागनेवाले युद्धसे न भागनेवाले अन्त्यज जातीय योद्धा लोग सदा सेनाके मुखस्थलमें स्थित हुआ करते हैं। हे युधिष्ठिर ! अधार्म्मिक भिन्न वृत्त पुरुष शान्त वचनसे वशमें नहीं होते ; बल्कि वे लोग शान्तवाक्यसे राजाके ऊपर अत्यन्त क्रोधित हुआ करते हैं।

१०१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ ! जय शील सेनाके कौन लक्षण श्रेष्ठ होते हैं उसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे भरतावतंस ! जयशील सेनाके जो सब लक्षण श्रेष्ठ हैं, उसे पूर्ण रीतिसे कहता हूं। हे राजन् ! दैवके प्रतिकूल तथा मनुष्योंके कालप्रेरित होनेपर विद्वान पुरुष ज्ञानमय दिव्य-नेत्रसे उसका अनुसन्धान विशेष रूपसे मालूम कर उसे निवारण करनेके वास्ते प्रायश्चित्त, जप और होम आदि मांगलिक कार्य्योंको करके उसकी शान्ति किया करते हैं। हे भारत ! जिस सेनामें वाहन और योद्धा लोग सदा उत्साहपूर्व्वक निवास करते हैं, उस सेनाकी निश्चय ही उत्तम विजय हुआ करती है ! जब वायु, इन्द्रधनुष, बादल और सूर्य्यकी किरण सेनाके अनुगामी होती है, तथा शियार और गिद्ध आदि अनुकूल होकर उसकी अर्चना करते हैं ; तभी वह उत्तम सिद्धि लाभ किया करती है। हे युधिष्ठिर ! अग्नि प्रसन्न किरण, ऊर्द्ध रश्मि, दक्षिणावर्त्त शिखासे युक्त और धूंएसे रहित होने तथा आहुतिकी पुण्य गन्ध प्रवाहित होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयके लक्षण कहा करते हैं। गम्भीर शब्दवाले भेरी और शंख आदिके बजने तथा युयुत्सुओंके अनुकूल होनेसे ही पण्डित लोग उसे भावी जयका रूप कहते हैं। मृगोंके समूह युद्धप्रस्थित पुरुषोंके पीछे, जो संग्रामके वास्ते गमन करें उनके बांई ओर ; तथा जिघांसु पुरुषके दाहिनी ओर रहनेसे ऊपर कहे हुए सब कार्य्य इष्टसिद्धिसूचक होते हैं ; और अगाड़ी रहनेपर पहिले कहे हुए कार्य्योंमें प्रतिषेध किया करते हैं। शकुन, हंस, क्रौञ्च, सारस और स्वर्णचातक आदि पक्षियोंके मांगलिक शब्द करने और बलवान योद्धाओंके हर्षित होनेपर पण्डित लोग उसे भविष्य जयके लक्षण कहा करते हैं। जिसकी सेनाका समूह शस्त्र, यन्त्र, कवच, पताका

और सुखमण्डलको उज्ज्वल किरणोंसे प्रकाशित होकर शत्रुओंको भयानक दीखता है, वही शत्रुओंको पराजित कर सकते हैं। शूर पुरुषोंके स्वामीसेवामें रत, अभिमान रहित, आपसमें सुहृदभावयुक्त और पवित्र आचार वाले होनेपर पण्डित लोग उसे भावी जयका लक्षण कहा करते हैं। मनके प्रसन्न करनेवाले शब्द, स्पर्श और गन्ध प्रवाहित होने और योद्धाओंके धैर्य्यशाली होनेपर बुद्धिमान पुरुष उसे विजयका रूप कहा करते हैं। कौआ संग्राममें प्रविष्ट हुए पुरुषके बाईं ओर तथा जो युद्धमें प्रवेश करेंगे, उनको दाहिनी ओर रहनेसे इष्ट साधन करता है; और पीछे रहनेपर अर्थबाधा तथा अगाड़ी रहनेपर प्रतिषेध करता है। हे युधिष्ठिर! पहिले महत् चतुरङ्गिनी सेना संग्रह करके उसे सामके जरिये स्थापित करे और तिसके अनन्तर युद्धमें नियुक्त करे। हे भारत! रणभूमिमें युद्ध करते करते यदृच्छा क्रमसे वा दैवी संयोगसे जो जय होती है, वह अधम जय कहके गिनी जाती है। भागती हुई बड़ी सेना जलके वेग और डरे हुए महामृगोंकी भांति दुःखसे निवारित होती है। उरु-जङ्घा समान उदार सारयुक्त भागती हुई बड़ी सेना विदुषी होनेपर भी रणभङ्ग किया करती है; स्थिर रहनेसे जो रणभङ्ग नहीं करती, ऐसा कोई कारण निर्दिष्ट नहीं है। आपसमें परिचित, हर्ष युक्त, प्राण त्यागनेवाले, सुनिश्चित, पचास शूर पुरुष युद्धमें बहुतसी शत्रुसेनाको नाश करनेमें समर्थ होते हैं। यहांतक कि युद्धमें कृतनिश्चय, सत्कुलमें उत्पन्न हुए सम्मानित पांच छः, वा सात शूर पुरुष ही युद्ध करनेपर अनायास ही बहुत सी शत्रुसेना जय कर सकते हैं। दूसरी भांतिके उपायसे किसी प्रकार युद्धकी अभिलाष न करे, क्योंकि साम, भेद और दान इन सबके अनन्तर युद्ध विहित हुआ करता है, जैसे "प्रज्वलित वज्रसे बिजली कभी गिरेगी"—

इसी भयसे कादर पुरुष बाध्य होते हैं; वैसे ही सेनाके बीच भय दिखाके कादरोंको बाधित करे। शत्रुसेनाको युद्धके वास्ते आती जानके जो लोग उसकी ओर गमन करते हैं, उन सब योद्धाओंका शरीर खिन्न हुआ करता है। हे राजन्! स्थाणु और जङ्गमके सहित विषय अर्थात् सब देश अनेक भांति अस्त्र तापसे व्यथित होता है और अस्त्रतापसे तापित देहधारियोंकी मज्जा अवसन्न होजाती है। जो लोग शत्रुओंसे पीड़ित होकर उनके साथ सब भांतिसे सन्धि करते हैं; उनके साथ कठोरता मिले हुए सामभावका बार बार प्रणय करना उचित है। अनन्तर शत्रुओंमें भेद करानेके वास्ते दूत भेजे; शत्रुओंके बीच जो प्रधान होवे, उसहीके साथ राजा सन्धि करे। यदि ऐसा न हो, तो जिससे शत्रुके साथ सब भांतिसे प्रतिकूलता होवे, उसी भांति शत्रुओंको पीड़ित करना असाध्य होजाता है। हे पार्थ! क्षमा साधुओंके समीपमें ही सदा समागत होती है, दुष्टोंके निकट कभी समागत नहीं होती; इससे क्षमा और अक्षमा दोनोंके प्रयोजनको मालूम करे। जो राजा जयलाभ करके क्षमा अवलम्बन करता है उसका यश विशेषरूपसे बढ़ता है और शत्रु लोग महा अपराध रहनेपर भी उसका विश्वास किया करते हैं। दैत्यवर शम्बरने ऐसा मत स्थिर किया है, कि पहिले शत्रुको दुःखित करके फिर क्षमा करनीही उत्तम कार्य्य है; क्योंकि टेढ़ी बांस आदि लकड़ियोंको न जलाके सरल करनेसे वे सब फिर सीधी हुआ करती हैं। हे युधिष्ठिर! आचार्य्य लोग इस शम्बर मत और साधु निदर्शनकी प्रशंसा नहीं करते; परन्तु वे लोग ऐसा कहते हैं कि क्रोध वा नाश न करके शत्रुओंका निज पुत्रके समान पालन करना उचित है। हे राजन्! राजाके प्रचण्ड होनेपर सब प्राणी उससे द्वेष करते हैं और कोमल होने पर भी

सब कोई उसकी अवज्ञा किया करते हैं इससे राजा उग्रता और मृदुता दोनोंका ही आचरण किया करे।

हे भारत! शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेके पहिले और प्रहारके समय प्रिय वचन कहे, तथा प्रहार करके रोदन और शोक प्रकाश करके उन पर कृपा करे। और घायल तथा प्रहार करनेवाले पुरुषोंका गुप्त रीतिसे सम्मान करके यह वचन कहे, कि मेरी सेनाने युद्धमें शूर पुरुषोंको मार कर मेरा अत्यन्त ही अनिष्ट किया है, मैंने बार बार उन लोगोंसे कहा है, उन्होंने मेरे वचनकी रक्षा न की। ओहो! युद्धमें पीछे न हटनेवाले उत्तम पुरुष अत्यन्त दुर्लभ हैं, मैं उनके जीवनकी अभिलाष करता हूं, ऐसा बध अत्यन्त अयोग्य हुआ है। जिन्होंने युद्धमें इन शूरवीरोंको मारा है, उन्होंने मेरे अनिष्टके अतिरिक्त इष्ट नहीं किया है, ऐसा वचन कहके गुप्त रीतिसे प्रहर्त्ता पुरुषोंको सम्मानित करे। और पुरुषोंको संग्रह करनेके इच्छावाले पराक्रमी राजा मेरे और प्रहर्त्ता पुरुषोंके वास्ते ऐसा ही करके अपराधी पुरुषोंकी दोनों भुजा ग्रहण करके उनके ऊपर आक्रोश प्रकाश करे। निर्भय धर्म्मात्मा राजा इसी प्रकार सब अवस्थामें ही शान्तना युक्त कार्य्य करनेसे सब प्राणियोंके प्यारे होते हैं। वे इच्छानुसार भोग कर सकते और सब कोई उनका विश्वास किया करते हैं। इससे जो राजा पृथ्वी भोग करनेके अभिलाषी होवें वे कपटरहित होके सबको ही विश्वासित करें और सब तरहसे प्रजाकी रक्षा करें।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! प्रबलपक्षवाले शत्रुके कोमल वा कठोर होने पर राजा पहिले उसके साथ कैसा आचरण करे? वह मुझसे यथार्थ कहिये।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे समयमें पण्डित लोग इन्द्र और बृहस्पतिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहास वर्णन किया करते हैं, उसे सुनो। शत्रुओंके नाश करनेवाले देवराज शचि-पतिने बृहस्पतिको प्रणाम कर हाथ जोड़के उनसे पूंछा, हे ब्रह्मन्! मैं सावधान होके शत्रु-ओंके साथ किस प्रकार प्रवृत्त होऊंगा और उन लोगोंको जड़ सहित नष्ट न करके फिर किस उपायसे उन्हें दमन करूंगा? दोनों सेनाके इकट्ठी होकर संग्राम करने पर साधा-रणकी जय हुआ करती है, इससे मैं क्या करूं, जिससे लक्ष्मी लज्जित और सन्तापित होकर मुझे परित्याग न करे?

धर्म्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्ग कुशल, प्रतिभाशाली राज-धर्म्मके जाननेवाले बृहस्प तिने सुरपतिसे कहा, हे देवराज! राजा कल-हसे आहत पुरुषोंको दमन करनेकी अभि-लाष न करे, क्यों कि बालक ही क्रोध और अक्षमाकी सेवा किया करते हैं। शत्रुबधकी इच्छा करनेवाला राजा शत्रुओंको सावधान न करे; क्रोध, भय और हर्षको निज शरीरमें छिपाते हुए उन लोगोंका विश्वास न करके विश्वस्तकी भांति उनके साथ व्यवहार करे, उन लोगोंसे सदा प्रियवचन कहे; उनके साथ कोई अप्रिय आचरण न करे, निष्फल बैरसे विरत होवे और मूर्खता परित्याग करे। हे इन्द्र! जैसे उपयुक्त मांस बेचनेवाला व्याधपक्षि-योंकी तरह शब्द करते हुए विहङ्गोंको अपने वशमें करके उनका बध करता है, वैसे ही उपयुक्त राजा शत्रुओंको वशमें करके उन लोगोंका बध करे। हे वासव! राजा शत्रु-ओंको पराभव करके सदा सुखकी नींद न सोवे दुष्टात्मा शत्रु लोग उठी हुई अङ्गारग्निकी भांति सदा ही जागते रहते हैं। जयका निश्चय न होनेपर युद्ध करना उचित नहीं है, इससे उन लोगोंका विश्वासपात्र और मित्र होके

उन्हें वशीभूत करके धर्म-साधनमें प्रवृत्त होवे। शत्रुओंके उपेक्षा वा अवज्ञा करनेपर भी मनसे प्रज्वलित न होकर महात्मा मन्त्र जाननेवाले मन्त्रियोंके सहित मन्त्रणा स्थिर करे। अनन्तर शत्रुओंके तनिक विचलित होनेपर ही उस समय उनके ऊपर प्रहार करे और आप्तकारी पुरुषोंके जरिये उनकी सेना तथा दण्ड दूषित करे। राजा शत्रु आदिके मध्य और अन्तको मालूम कर गुप्त भावसे मन ही मन विषम भाव धारण करके उन लोगोंका सब बल प्रमाणके अनुसार जानके भेद, दान अथवा औषधिके जरिये उन लोगोंको दूषित करे; परन्तु शत्रुओंके साथ कभी संसर्ग करनेकी अभिलाषा न करे। शत्रुओंको मारनेके वास्ते बहुत समय तक उपेक्षा करे, वे लोग जिस प्रकार विश्वास लाभ करें वैसे ही कार्य्योंको करते हुए बहुत समयकी आकांक्षा करके समय बितावे। सब शत्रुओंको नष्ट न करके उन लोगोंको विजय प्रदर्शित करे। हे देवेन्द्र! राजा शत्रुओंके ऊपर शस्त्र न चलावे और वाक्यवाणसे भी उन्हें घायल न करे; शत्रुवधकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नाशका समय बीतनेसे वह फिर नहीं प्राप्त होता; इससे समय उपस्थित होने-पर ही राजा शत्रुओंके ऊपर प्रहार करे, कभी समयको न बीतने देवे। जो समय समयको अभिलाष करनेवाले पुरुषको अतिक्रम करता है, कार्य्य चिकीर्षु पुरुषके वास्ते फिर उस सम-यका मिलना अत्यन्त कठिन हो जाता है। असमयमें शत्रुके प्राप्त होनेपर राजा साधुस-म्मत सामर्थ्य संग्रह करके उसे शिक्षित करे, परन्तु उन लोगोंको पानेसे स्वकार्य्य साधन वा उन्हें पीड़ित न करे। योग्य राजा काम क्रोध और अभिमान त्यागके बारबार शत्रुओंके छिद्रका अनुसन्धान करे। हे देवताओंमें उत्तम शक्र! मृदुता, दण्ड, आलस्य और प्रमाद ये चारों तथा बहु माया सुन्दर रीतिसे विहित हुई हैं; येही सब मूर्ख पुरुषोंको अवसन्न किया करती हैं। इससे राजा मृदुता आदि ऊपर कहे हुए चारों गुणोंको दमन करके तथा समस्त माया परित्याग करनेसे ही शत्रु-ओंके वध करनेमें समर्थ होते हैं। राजा अकेले जहांतक मन्त्रको गोपन करनेमें समर्थ होसके, वहां तक गोपन करे; क्योंकि मन्त्री लोग गुप्त मन्त्रोंको गोपन करते और आपसमें प्रकाश भी किया करते हैं। परन्तु अकेले विचार विषयमें एकबारगी असमर्थ होनेपर दूसरेके साथ मन्त्रणा करे। अनन्तर शत्रुओंके अदृष्ट अर्थात् दूर होनेपर उनके ऊपर ब्रह्म-दण्ड अभिचार आदि प्रयोग करे; और निक-टमें रहनेपर उनकी ओर चतुरङ्गिनी सेना नियुक्त करे। राजा पहिले शत्रुओंके ऊपर भेद और साम दोनोंको ही प्रयोग करे; फिर युद्ध उपस्थित होनेपर उस शत्रुके ऊपर सेना नियोग करनेमें प्रवृत्त होवे राजा समयके अनुसार शत्रुके निकट प्रणत होवे; परन्तु शत्रुके प्रमत्त होनेपर राजा प्रमत्त होके उसके वधका अनुसन्धान करे। राजा प्रणिपात; दान और मीठे वचनसे शत्रुओंकी प्रसन्नता सिद्ध करे परन्तु कदापि उन्हें शङ्कित न करे। जो सब शत्रु शङ्कित हुए हैं, राजा वैसे शत्रुओंके स्थान पर न जावे, उनका कभी विश्वास न करे; क्योंकि वे लोग शङ्कायुक्त होके सदा ही साव-धान रहते हैं। हे सुरपति! शङ्कित शत्रुओंके वास्ते कठिन कार्य्य कुछ भी नहीं है; ऐसा कहा गया है, कि विविधवृत्त मनुष्योंके ऐश्वर्य्य की भांति वे लोग योग अवलम्बन करके फिर शिक्षित होनेके वास्ते यत्न किया करते हैं। हे सुरोत्तम! इससे राजा मित्र और शत्रुके विष-यमें विशेष करके विचार करे। हे सुरराज! राजाके मृदुस्वभाव होनेपर प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और कठोर स्वभाव होने पर उससे व्याकुल हुआ करती है; इससे तुम केवल

कोमल वा कठोर न होकर कठोर और कोमल दोनों भावको ही अवलम्बन करो। जैसे वेग-शाली जलके जरिये सब तरहसे परिपूरित तट सदा विदारण करनेसे उसमें बाधा होती है, वैसे ही राजाके प्रमत्त होनेपर उसके राज्यमें बाधा हुआ करती है। हे पुरन्दर! राजा साम, दान, दण्ड और भेद इन सब उपायोंको एक ही समय शत्रुके ऊपर प्रयोग न करे; परन्तु मेधावी राजा समस्त उपाय प्रयोग करनेमें समर्थ होनेपर भी उसे न करके बुद्धिमानोंके बीच जो पुरुष निपुण हों उनके ऊपर ही इन उपायों-मेंसे एक एकको बांटकर प्रयोग करे। जब हाथी, घोड़े और रथोंसे युक्त अनेक पदाति और यन्त्रोंसे परिपूरित षड़ाङ्गिनी सेना अनु-रक्त होवे, और जिस समय राजा शत्रुसे अपने बलको अनेक भांतिसे वृद्धि समझे, उस समय विचार न करके प्रकाश्य भावसे शत्रुओंके वध करनेमें प्रवृत्त होवे। शत्रुके ऊपर साम उपाय प्रयोग करना उत्तम नहीं है, इससे राजा उसे न करके शत्रुके विषयमें रहस्य दण्डका विधान करे; परन्तु कोमल दण्ड, युद्धके वास्ते यात्रा, शस्यनाश, विष आदिसे जल दूषित करना और बार बार प्रकृति विचार न करे। किन्तु उनके ऊपर अनेक तरहकी माया, उन्हें परस्पर उत्तापर आदि और जिससे अपनेको अपयश न हो, वैसी कपट उपाय करे; अनन्तर उन लोगोंको निज पुर वा राष्ट्रमें प्रविष्ट होनेपर आप्त पुरु षोंको उनके निकट रखे। हे बल-हसूदन! राजा लोग शत्रुओंके अनुगामी होकर उन लोगोंके पुर और राज्यमें स्थित सब भोग्य वस्तुओंको जय करके निजपुरीमें विधिपूर्व्वक नीति स्थापित करें। हे राजन्! राजा लोग हम लोगोंको गूढ़ धन प्रदान करके निज भोग्य वस्तुओंमें सङ्कोच करते हुए मेरे सब सेवक दुष्ट हैं, ये लोग मुझे त्यागके दूसरे राजाके शरणागत हुए हैं,— लोगोंके समीप उन लोगोंके इसी प्रकार दोष वर्णन करके उन्हें पराये देश वा पर राज्यमें नियोजित करें। और दूसरे शास्त्रवित्, उत्तम रीतिसे सज्जित, शास्त्र विधानके जाननेवाले सुशोभित तथा भाष्य कथा विशारद सेवकोंके जरिये शत्रुपुरीके बीच मृत्युके अधिष्ठात्री देव-ताको स्थापित करें।

इन्द्र बोले, हे द्विजसत्तम! दुष्टका क्या चिन्ह है? दुष्टको किस प्रकार मालूम करे? इसे मैं पूछता हूं, आप मुझसे विस्तार पूर्व्वक कहिये।

बृहस्पति बोले, जो पुरुष परोक्षमें लोगोंके दोष प्रकाशित करे, सद्गुणोंसे युक्त मनुष्योंकी निन्दा करे और दूसरे किसीके गुणके वर्णन करनेपर पराङ्मुख होकर मौनभावसे स्थित होवे; उसे दुष्ट समझना चाहिये। यद्यपि दुष्ट पुरुषोंके मौनभावसे स्थित होनेपर उसकी दुष्ट-ताका कारण नहीं मालूम होसकता, परन्तु उस समय वह पुरुष लम्बी सांस छोड़ता, ओठ काटता शिर कंपाता, और अत्यन्त संसर्ग करता असन्तुष्ट होकर वार्त्तालाप करता, परोक्षमें स्वीकृत कार्य्योंको पूरा नहीं करता और अप-रोक्ष होनेपर उस विषयका उल्लेख नहीं करता, स्वयं पृथक् आके भोजन आदि करता है और आज भोजनादि विधिपूर्व्वक नहीं हुआ कहके परोक्षमें उसकी निन्दा किया करता है, इससे असन, शयन और सवारी आदिसे दुष्टोंके अभि-प्रायको मालूम करना चाहिये। हे राजन्! जो पुरुष आर्त्त लोगोंके समीप आरत होता और प्रिय पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होता है, उसे ही मित्र जानना चाहिये; इसके विपरीत होनेपर शत्रुका लक्षण मलूम करे। हे त्रिदशनाथ! मैंने तुमसे इन सब लक्षणोंको जिस प्रकार कहा है, उसे विशेष करके मालूम करो; दुष्टोंका स्वभाव अत्यन्त बलवत्तर होता है। हे सुरसत्तम! मेरे कहे हुए इस दुष्टविज्ञानको सुनके शास्त्रके अनुसार इसके यथार्थ तत्वको मालूम करो।

भीष्म बोले, इन्द्रने बृहस्पतिका ऐसा वचन

सुननेसे उसके अनुसार शत्रुओंके अनुष्ठानमें रत होके विजयके निमित्त वैसा ही आचरण करके शत्रुओंको वशमें किया था।

१०२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धर्म्मात्मा राजा सेवकोंसे प्रबाधित, कोष और दण्डसे च्युत तथा अर्थलोभमें असमर्थ होकर सुखका अभिलाषी होनेपर कैसा आचरण करे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसे स्थलमें क्षेमदर्शी राजाके जिस इतिहासको वर्णन किया करते हैं, वह मैं तुमसे कहता हूं, सुनो। मैंने सुना है, पहिले राजपुत्र क्षेमदर्शी शत्रुके जरिये बलहीन होके तथा घोर आपदमें पडके कालक वृक्षीय मुनिके निकट आके उनसे पूछा था—राजा क्षेमदर्शी कालकवृक्षीय मुनिसे बोले, हे ब्रह्मन! मेरे समान अर्थभागी पुरुष अर्थ प्राप्तिके वास्ते बार बार यत्नवान होकर राज्य लाभ न कर सकनेपर कैसा आचरण करे? हे मुनिसत्तम! मेरे समान पुरुषोंका मरना, स्तैन्यपर अंसय और क्षुद्र आचारके अतिरिक्त जो कर्त्तव्य है, उसे कहिये। आपके समान धर्म्मजाननेवाले कृतज्ञ पुरुष ही शारीरिक और मानसिक व्याधिसे युक्त मनुष्योंके आश्रय हुआ करते हैं। पुरुष विषय भोगसे विरक्त होकर शक्ति और प्रीति परित्याग करके बुद्धिमय वस्तु लाभ करनेसे सुख भोगनेमें समर्थ होता है। जो लोग सुखको धनके आधीन समझते हैं, उनके वास्ते मैं शोक करता हूं; क्यों कि स्वप्न धनकी भांति मेरा बहुतसा अर्थ नष्ट हुआ है। अहो! हम अब इस अविद्यमान धनकी आशा परित्याग नहीं कर सकते, तब जो लोग उपस्थित बहुतसे धनका परित्याग करते हैं, वे लोग कितने कठिन कार्य्यको करते हैं; हे ब्रह्मन! मैं श्रीभ्रष्ट होकर अत्यन्त ही आर्त्त, दीन और ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूं; इस समय जिसमें सुख-लाभ हो, मुझे वही उपदेश करिये।

महातेजस्वी कालकवृक्षीय मुनि बुद्धिमान कौशल्य क्षेमदर्शीका ऐसा वचन सुनकर बोले, हे राजन्! यद्यपि आप "मैं और मेरा जो कुछ वस्तु विद्यमान हैं, ये सब अनित्य हैं," इस प्रकार जानते हैं, तो पहिले ही आपको ऐसा समझना उचित था। आप जो समझते हैं, कि सब वस्तु विद्यमान हैं, वे सभी नहीं हैं, ऐसाही समझिये; क्यों कि बुद्धिमान पुरुष ऐसा समझनेसे अत्यन्त आपदायुक्त होनेपर भी दुःखित नहीं होते। जो होगया और जो होगा, वह सब फिर न होवेगा, इसी भांति आप जानने योग्य विषयोंको जानकर अधर्म्मसे मुक्त होंगे। पहिले पूर्व्व राजाओंको जो कुछ धन थे और उसके अनन्तर जो कुछ थे, तुम्हारा वह सब, कुछ भी नहीं है; इससे उन सब विषयोंसे ममता-रहित होके शान्त होइये, कौन पुरुष इसे जानके दुःखित होगा? जो हुआ है, वह फिर नहीं होता; जो नहीं हुआ है, वही हुआ करता है, शोकसे आरत पुरुषोंमें धन उपार्जनकी सामर्थ नहीं रहती; इससे आप किसी प्रकारका शोक न कीजिये, महाराज! देखिये, तुम्हारे पिता और पितामह आज कहां हैं; आज आप उन लोगोंको नहीं देख सकते हैं और वे लोग भी आपको नहीं देखते हैं। आप अपने देहकी अनित्यता देखकर उन लोगोंके वास्ते क्यों शोक करते हैं? बुद्धिसे यह विचारिये, कि कोई विषय भी नित्य न होगा। हे राजन्! मैं, आप और आपके सुहृद लोग, निश्चय ही हम कोई न रहेंगे, सब कोई मृत्युग्रासमें पड़ेंगे और सभी वस्तु नष्ट होंगी। जो सब मनुष्य बीस वा तीस वर्षके जीवित हैं, एक सौ वर्षके बीच उन सबको ही मरना होगा। यद्यपि पुरुष महत् वृत्तसे निवृत्त नहीं

होता, तो ऐसा होनेपर मेरा नहीं है, यह मेरा नहीं है, यह समझके अपना दुःखशमन करें। जो लोग अनागत और अतीत वस्तुओंको "मेरी नहीं है" ऐसा समझते और भाग्यको ही बलवान जानते हैं; पण्डित लोग उन्हें ही ममतारहित और साधुओंके समान मानते हैं। आपके समान आर्य्य वा बुद्धि पौरुष युक्त बहुतेरे मनुष्य जीवित रहते और राज्य भी शासन किया करते हैं। परन्तु आपकी तरह वे लोग शोक नहीं करते; इससे आप भी शोक न कीजिये। आप क्या उन बुद्धि और पौरुष युक्त पुरुषोंसे श्रेष्ठ वा उनके समान नहीं हैं?

राजाने कहा, हे द्विज! यदृच्छानुसार जो सब वस्तु प्राप्त होती हैं, उसे ही मैं राज्य बोध किया करता हूं और वह सभी महाकालके जरिये नष्ट हुआ करती है। हे तपोधन! इससे मैं यथा प्राप्त धनसे जीविका निर्व्वाह करते हुए स्रोतकी भांति महाकालके जरिये ह्रियमाण उस राज्यका यह फल देखता हूं, कि यदृच्छा प्राप्त राज्य आदिके नाश होनेपर जीवन नष्ट न होकर केवल शोक बढ़ता रहता है।

मुनि बोले, हे कौशल्य! जैसे मनुष्य अनागत और अतीत वस्तुके यथार्थ रूपको निश्चय करके सब विषयोंमें शोक नहीं करते, आप भी उस ही भांति होइये। हे राजन्! आप प्राप्त अर्थकी इच्छा करिये अप्राप्त अर्थकी कभी अभिलाषा न करिये और वर्त्तमान समयके विषयोंका अनुभव कीजिये तथा अनागत विषयके वास्ते शोक न करिये। हे कौशल्य! आप लब्ध धनसे ही सन्तुष्ट रहिये, श्री हीन होने पर शोकसे आर्त्त होकर कभी शुद्ध स्वभावसे विचलित न होइये। पुरुष पूर्व्वके कर्म्मके अनुसार भाग्यहीन बुद्धि होकर सदा विधाताकी निन्दा करते हैं, और यथा लब्ध धनसे सन्तुष्ट नहीं होते। और इस ही कारणसे दूसरे ऐश्वर्य आदि श्रीमान् पुरुषोंका सम्मान करके बारम्बार ऐसा ही दुःख अनुभव किया करते हैं। हे राजन्! इससे जैसे बहुतसे अभिमानी मनुष्य ईर्षा और अभिमानके वशमें होकर दूसरेकी बुराई करनेमें प्रवृत्त होते हैं, आप मत्सरयुक्त होकर वैसा न करिये। यद्यपि आपमें वह श्री विद्यमान न रहे, तौभी आप दूसरेकी श्री सह्य कीजिये; कभी द्वेष न करिये, क्यों कि जो मनुष्य मत्सरी होकर लोगोंकी श्रीसे द्वेष करते हैं, लक्ष्मी उनके निकटसे भाग जाती है; और जो मनुष्य मत्सरता रहित होते हैं, वे शत्रुके निकट रहनेवाली लक्ष्मीको भी सदा भोग किया करते हैं। योग धर्म्म जाननेवाले धीर धर्म्मचारी मनुष्य श्री, पुत्र, और पौत्रोंको स्वयं परित्याग किया करते हैं। दूसरे साधारण पुरुष विधित्सा अर्थात् सब कार्य्योंके अनुपरम और धन, इन दोनोंके अस्थिर अर्थ तथा परम दुर्लभ समझके परित्याग करते हैं। परन्तु आप बुद्धिमान होके भी अकाम्य, पराधीन अस्थिर अर्थकी कामना करते हुए केवल कृपणकी तरह व्यर्थ शोकित होरहे हैं। इससे आप उस बुद्धिको जाननेके अभिलाषी होकर यह सब अर्थ परित्याग कीजिये; क्योंकि सब अनर्थ, रूपी होकर अर्थ रूपसे मालूम हो रहे हैं। हे राजन्! कितने ही लोगोंका अर्थके ही वास्ते धननाश होता है, कोई उसे अत्यन्त सुखदायक समझके सब भांतिसे श्रीलाभ करनेकी अभिलाष किया करते हैं। जो पुरुष श्रीमें रममाण होकर दूसरा कुछ भी श्रेष्ठ नहीं समझता उस चेष्टमान पुरुषके सब कार्य्य ही नष्ट हो जाते हैं। हे कौशल्य! यदि किसी पुरुषके अभिप्रेय कृच्छ्रलब्ध धन नष्ट होवे, तो वह पुरुष आशा भङ्ग होनेपर उससे निवृत्त हुआ करता है। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य पारलौकिक सुखकी इच्छा करते हुए लौकिक कार्य्योंसे विरत होकर केवल धर्म्म कार्य्य किया करते हैं।

धन लोभसे युक्त पुरुष धनके वास्ते जीवन परित्याग करते हैं। ऐसा क्या वे लोग धनके अतिरिक्त जीवनको भी अधिकारी नहीं समझते। वरन उनको ऐसी कृपणता और निर्बुद्धिता देखिये कि जो लोग मोहके वशमें होकर अनित्य जीवनमें अर्थ दृष्टि अवलम्बन किया करते हैं; उनके बीच कोई विनाशके अनन्तर सञ्चय मरणके अनन्तर जीवन और वियोगके बाद संयोग, इन सबमें चित्त नहीं लगाते। हे राजन्! कभी पुरुष धनको और कभी धन पुरुषको अवश्य परित्याग करता है; इससे जो लोग इस विषयको विशेष रूपसे जानते हैं, वे उस विषयमें कभी शोकित नहीं होते; क्यों कि इसी तरह दूसरेके भी मित्र और धन नष्ट हुआ करते हैं। हे राजन! आप विचार करके देखिये, कि मनुष्य लोग अपनी और दूसरेकी बुद्धिसे आपदमें पतित होते हैं; इससे आप उसे विशेष रूपसे देखकर इन्द्रियनिरोध, मन और वचनको संयम कीजिये; क्यों कि अहितकारी इन्द्रिय, मन और वाक्य इन सबके दुर्ब्बल और सन्निकृष्ट विषयोंमें आसक्त होनेपर कोई भी उन्हें निवारण करनेमें समर्थ नहीं होता; पर विषय सन्निकृष्ट होनेपर ये सब स्वयं निवारित हुआ करते हैं। आपके समान ज्ञानसे तृप्त पराक्रमी पुरुष इन्द्रियोंको दमन किया करते हैं, इससे वे लोग इस विषयमें शोक नहीं करते। इसके अतिरिक्त आपके समान मृदु, धार्म्मिक सुनिश्चित और ब्रह्मचर्य्य युक्त मनुष्य अल्प विषयको अभिलाषासे चञ्चल नहीं होते और उसके वास्ते शोक भी नहीं करते; तथा वे लोग धिक्कार पूर्व्वक कापालीवृत्ति, नृशंसता पापी, दुष्ट और कादरोंके योग्य वृत्तिको अवलम्बन करनेमें प्रवृत्त नहीं होते। हे राजन्! इससे आप मन और वचनको संयम करके सब प्राणियोंमें दया प्रकाशित करते तथा महावनमें फल मूलसे जीविका निर्व्वाह करते हुए अकेले ही विहार कीजिये। जैसे ईषा समान दांत युक्त हाथी महावनमें अकेले ही विहार करता है, वैसे ही विद्वान पुरुष वनके बीच अरण्यवृत्ति अवलम्बन करके अकेले ही विहार करें। जैसे महातालाब पूर्व्वरीतिसे क्षुभित होकर स्वयं ही प्रसन्न होता है; मैं ऐसी अवस्थायुक्त पुरुषोंको इसी भांति जीवित रहना ही सुख समझता हूं। महाराज! लक्ष्मी आदिकोंसे रहित मनुष्योंको श्रीअसम्भव है और केवल दैवके ऊपर निर्भर करनेसे आप कौनसा कल्याण समझते हैं?

१०४ अध्याय समाप्त।

अनन्तर मुनि बोले, हे राजन! यदि आपके निज शरीरमें कुछ पौरुष है, ऐसा समझते हैं, तो जिसमें आपको फिर राज्य प्राप्त होवे, मैं वैसी नीति कहता हूं; आप यदि उस नीतिका अनुष्ठान करने और कार्य्य करनेमें अपनेको समर्थ समझें; तो मैं आपसे जो सब यथार्थ वचन कहूंगा, उसे चित्त लगाके सुनिये। हे राजन्! मैं जो कहूंगा, आप यदि वैसा ही आचरण करें, तो आप निश्चय ही उस महान् सब अर्थ, राज्य, राज्यके मन्त्र और महती श्री को फिर प्राप्त करेंगे, इससे मैं आपसे फिर कहता हूं, कि यह आपको रुचता है, वा नहीं वह मुझसे कहिये। राजाने कहा, हे भगवन्! मैं पौरुषसे युक्त हुआ हूं, आप मुझसे जिस नीतिको कहना चाहते हैं उसे कहिये, आपके साथ मेरा यह समागम सफल होवे।

मुनि बोले, आप दम्भ, काम, क्रोध, हर्ष और भय त्यागके प्रणत भावसे हाथ जोड़के शत्रुओंकी सेवा कीजिये। आप उस सत्यसन्ध विदेहराजको शुभ और उत्तम कर्म्मोंसे आराधना कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे आपको वेतन दान करेंगे। इसी भांति क्रमसे सबके विश्वासपात्र होनेपर आप विदेहराजके बाहुस्वरूप

होंगे, अनन्तर उत्साहयुक्त, व्यसनरहित, शुद्ध स्वभाववाले सहायकोंको प्राप्त कर सकेंगे। नीतिशास्त्रके अनुसार चलनेवाले स्थिर चित्त जितेन्द्रिय विदेहराजकी प्रजाको प्रसन्न करके आप स्वयं अपना उद्धार कीजिये। श्रीमान् धैर्य्यशाली उस विदेहराजसे आप सत्कृत होनेपर सबके विश्वासपात्र होकर अत्यन्त ही आदरणीय होंगे। तिसके अनन्तर आप सुहृदलाभ कर उत्तम मन्त्रियोंके साथ विचार करके वेलसे वेल तोड़नेकी भांति शत्रुपक्षीय आन्तरिक पुरुषोंके जरिये शत्रुओंमें भेद अथवा शत्रुओंके साथ सन्धि करके विदेह राजके सब बलको नष्ट कीजिये। शुद्धभाव युक्त मनुष्य, स्त्री, ओढ़नेके वस्त्र, शय्या, आसन, महामूल्यवान सवारी, गृह; पशु, पक्षी, गन्ध, रस और फल आदि जो सब वस्तु अलभ्य हैं, आप उन सबको इस प्रकार सज्जित कराइये, कि जिससे सब शत्रु स्वयं ही नष्ट होवें। हे राजन्! आप सुनीतिके अभिलाषी हैं, शत्रु लोग यदि आपके जरिये इन सब विषयोंमें प्रतिषिद्ध होकर उसे उपेक्षा करें, तो आप कदापि उन लोगोंको निवृत्त न कीजिये। हे राजेन्द्र! आप बुद्धिमान पुरुषोंमें सम्मत होकर शत्रुओंके विषयमें विहार करिये और सदा सावधानी तथा भय-चकित आदि ध्रुवतकारी उपायसे मित्र धर्म्मका आचरण कीजिये। आप ऐसे ही उपायके अनुसार विदेहराजको दुस्तर महान् आरम्भ सब प्रयोजित करिये और बलवान सेनाके जरिये नदीको भांति सब विरोध विशेष रूपसे रुद्ध करिये। और विदेहराजके बगीचे, महामूल्य शय्या, आसन तथा कोष इन सबको सुखसे भोग करके उनका कोष खाली करिये। आप ब्राह्मणोंको विदेहराजके उद्देश्यसे यज्ञ और दान आदि कार्य्योंमें नियुक्त करके पीछे अपना मङ्गलार्थ कीजिये, ऐसा होनेसे ही वे लोग भेड़ियेको तरह उन्हें भक्षण करते हुए आपका मङ्गल करेंगे। पुण्यशील पुरुष निश्चय ही परम गतिको प्राप्त होते हैं, ऐसा ही क्यों, वे लोग स्वर्गमें भी पुण्यस्थान लाभ किया करते हैं। हे कौशल्य! धर्म्म और अधर्म्मके जरिये शत्रुओंके कोषको नष्ट कर सके, तो वे लोग धर्म्म और अधर्म्म युक्त पुरुषके वशमें हुआ करते हैं। हे राजन्! शत्रु लोग स्वर्ग और जयके जरिये ही आनन्द अनुभव किया करते हैं; इससे आप उनके स्वर्ग और जयके मूल कोषको विशेष करके नष्ट करें परन्तु मनुष्य-कर्म्म और दैव कर्म्म जय आदि उनके समीप वर्णन करना। दैव परायण मनुष्य शीघ्र नष्ट होता है, यह निश्चय ही है; इससे आप उनसे सर्व्वस्व दान स्वरूप विश्वजित् यज्ञ कराके उन्हें राज्यसे विरत कीजिये, उससे वह सिद्धार्थ होकर गमन करेंगे। इससे आप उस विदेहराजको याग धर्म्म जाननेवाले महाजनोंके पीड़ाका सब वृतान्त कहिये, और कुछ पुण्य उपदेश करिये। वह महाजनोंके किसी प्रकारकी पीड़ाका वृत्तान्त सुननेसे ही राज्य त्याग करेंगे तब आप सब शत्रुओंके नाश करनेवाले सिद्ध औषध प्रयोग करके उनके हाथी, घोड़े और मनुष्योंका नाश करियेगा। हे राजन्! इसी प्रकार तथा दूसरे अनेक तरहके दम्भ योग निश्चित हैं, कृतात्मा पुरुष विष प्रयोग करके सबको ही नाश करनेमें समर्थ हुआ करते हैं।

१०५ अध्याय समाप्त।

राजाने कहा, हे ब्रह्मन्! मैं कपट और दम्भके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा नहीं करता और अधर्म्म युक्त महत् अर्थको भी अभिलाष नहीं करता। हे भगवन्! कपटता और दम्भ रहनेसे कोई मुझ पर शङ्का करेगा ऐसा समझ कर और उससे अपनी बुराई होनेकी सम्भावना देखकर मैंने पहिलेसे ही इसे परित्याग किया है। मैं इस लोकमें अनु-

शंस धर्म्मके जरिये जीवित रहनेकी इच्छा करता हूं; इससे मैं ऐसा आचरण नहीं कर सकूंगा, और आपसे भी ऐसा होना उपयुक्त नहीं है।

मुनि बोले, हे राजन्! आपने जैसा कहा है, उससे मैं आपको प्रकृतिस्थ वा बुद्धिस्थ और अनृशंस धर्म्म युक्त बोध करता हूं। मैं आप-दोनोंके मङ्गलके वास्ते यत्न करूंगा और आपके साथ विदेहराजकी जिसमें सदाके वास्ते अक्षय सन्धि होवेगी, वही उपाय करूंगा। महाराज आपके समान सत्कुलमें उत्पन्न बहुश्रुत अनृशंस, राज्य प्रणयनमें कुशल पुरुषको पाके कौन राजा अमात्य पद पर नियुक्त न करेगा? आप क्षत्रिय कुलमें जन्म ग्रहण करके राज्यच्युत और अत्यन्त विपद्ग्रस्त होकर भी जब अनृशंस वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करनेके अभिलाषी हुए हैं, तब मैं आपको धन्यवाद देता हूं। हे तात! सत्यसन्ध विदेहराज मेरे गृहपर आवेंगे, मैं उन्हें जिस कार्य्यमें नियुक्त करूंगा, वह उसको ही करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। अनन्तर मुनिने विदेहराजको आवाहन करके कहा यह जो क्षेमदर्शी राजकुलमें उत्पन्न हुआ है, मैंने उसके अन्तःकरणको सब भांतिसे परीक्षा करके देखा है, इसका चित्त आरसी और शरदकालके चन्द्रमा समान शुद्ध है; मैं इसके चित्तमें किसी प्रकारकी कुटिलता नहीं देखता हूं। इससे इसके साथ आपकी सन्धि होवे, आप जैसा मेरा विश्वास करते हैं, वैसे ही इसका भी विश्वास करिये। हे राजन्! जिस राजाके अमात्य नहीं हैं, वे राज्यको तीन दिन भी अपने शासनमें नहीं रख सकते; इससे राजा वीरता और बुद्धियुक्त मनुष्यको मन्त्री करे, दोनोंके पराक्रम और बुद्धिबलसे ही दोनों लोक तथा राजके प्रयोजन सिद्ध हुआ करते हैं। धर्म्मात्मा मनुष्योंको इस प्रकार दूसरी गति कहीं भी नहीं है। यह राजपुत्र क्षेमदर्शी अत्यन्त धार्म्मिक हैं; विशेष करके इन्होंने साधु-ओंके मार्गको अवलम्बन किया है इस धर्म्मात्मा राजपुत्रको आप संग्रह करके पूर्ण रीतिसे सेवा करनेसे यह आपके शत्रुओंका निग्रह करेगा। यदि ये पिता पितामह पदके वास्ते युद्धकी इच्छा करके आपके साथ क्षत्रियोंके स्वकार्य्य अर्थात् संग्राम करनेमें प्रवृत्त होंगे। तो आप भी विजयकी अभिलाषासे इनके सङ्ग युद्ध करियेगा; परन्तु ऐसा न करके मेरी इच्छाके अनुसार हितैषी होकर इन्हें वशमें करिये। आप धर्म्मदर्शी होके अपने समान पुरुषोंसे अनुचित लोभको त्यागकर धर्म्मकी रक्षा करिये; काम और क्रोधके वशमें होकर निज धर्म्मको त्यागना आपको उचित नहीं है। हे तात! एक पुरुषकी सदा जय और एकको सदा पराजय नहीं होती; जय-पराजय दोनों ही हुआ करती है; इससे भोग्य वस्तुओंके जरिये शत्रुके साथ सन्धि करनी उचित है। हे तात! जय-पराजय दोनों ही आपमें देखी जाती है। निःशेषकारियोंको निःशेष-निबन्धन रूपी भय हुआ करता है। विदेहराज जनक कालक वृक्षीय मुनिका ऐसा वचन सुनकर उन पूजनीय ब्राह्मणश्रेष्ठ मुनिका सम्मान और सत्कार करके बोले, हे ब्रह्मन्! आप महाबुद्धिमान और महाश्रुत हैं; इससे आपने हम दोनोंके मेलकी इच्छा करके जो कुछ कहा वह योग्य है। आपने मुझसे जैसा कहा, मैं वैसाही करूंगा, क्यों कि मैं इसे परम कल्याणदायक बोध करता हूं; इस विषयमें अब मैं कुछ भी विचार न करूंगा। अनन्तर मिथिलापति जनकने कौशल्य क्षेमदर्शीको आवाहन करके कहा, हे राजसत्तम! मैंने धर्म्म और नीतिसे पृथ्वी जय किया; परन्तु आपने अपनी अवज्ञा करके निज गुणोंसे मुझे जय किया है; इससे आप विजयीकी भांति विराजमान रहिये। यद्यपि मैंने आपको जय किया है, तौभी आपके बुद्धि और पौरुषकी अवज्ञा नहीं कर सकता; इससे आप विजयीकी तरह

विद्यमान रहिये। हे राजन्! इस समय आप यथारीति पूजित होकर मेरे घर चलिये। अनन्तर मिथिलाराज जनक और कौशल्य दोनों ही ब्राह्मण श्रेष्ठ मुनिको पूजा करके विश्वासी होकर घर गये। तब विदेहराजने कौशल्यको गृहमें प्रवेश कराके पाद्य, अर्घ और मधुपर्कसे उनकी पूजा करके उन्हें कन्या तथा विविध वस्तु दान की। राजाओंका यही परम धर्म है, जय और पराजयको अनित्य जानना चाहिये।

१०६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे परन्तप! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके धर्मवृत्त, साधारणके व्यवहार जीवन उपाय और फल, राजाओंके व्यवहार, कोष, कोषस्थापन, जय, सेवकोंके गुण, व्यवहार, प्रजाकी वृद्धि, षाड्गुण्यके गुण कल्पना, सेनाके व्यवहार, सत् और असत् पुरुषोंके लक्षणका ज्ञान, समान, हीन और अधिक कुछ पुरुषोंके यथावत् लक्षण मध्यवित्त और पुरुषोंकी प्रसन्नताके वास्ते वर्द्धित मनुष्यकी जिस भांति रक्षा होता है, हीन मनुष्योंको ग्रहण और जीविका, उपदेशयुक्त सुगम ग्रन्थोंसे जैसा धर्म वर्णित हुआ है, आपने विजयी पुरुषोंका जैसा व्यवहार कहा है, वह व्यवहार, शूर पुरुषोंकी वृत्ति, शूरलोग पृथक् न होके जिस प्रकार वर्द्धित होवे, वे लोग शत्रुओंके जीतनेकी अभिलाषा करके किस भांति सुहृद पुरुषोंको प्राप्त करें? हे शत्रुतापन! मैं बोध करता हूं, कि शूर पुरुषोंमें परस्पर भेद ही नाशका कारण है। इससे उन लोगोंमें जिससे भेद न होवे और अनेक पुरुषोंके निकट मन्त्रको छिपाना अत्यन्त कठिन है; वह जिस प्रकार गोपन करना होता है और इन सबके उपाय मैं आपके निकट सुननेकी इच्छा करता हूं। आप यह सब वृत्तान्त विस्तारके सहित मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! राजकुल और गण अर्थात् शूरकुल, ये दोनों ही कुल वैर-सन्दीपक लोभ और क्रोधके वशीभूत हैं। राजा लोभको इच्छा करे, तो शूर लोग क्रोधको अभिलाष करते हैं; इससे दोनों कुल क्षय और व्ययसे युक्त होकर परस्परमें एक दूसरेके नाशक हुआ करते हैं। वे लोग दूत, मन्त्र, बल, आदान, साम, दान, भेद, क्षय और भय आदि इन सब उपायोंके जरिये आपसमें परस्परका आकर्षण किया करते हैं। उसमेंसे एक मतके अनुसार चलनेवाले शूरोंमें आदानसे भेद होता है। वे लोग पृथक् होनेसे ही आपसमें चित्तकी अनैक्यताके कारण शत्रुओंके वशमें हुआ करते हैं हे राजन्! जब शूरलोग मतभेद होनेसे ही नष्ट और शत्रुओंसे पराजित होते हैं; उस समय उन लोगोंको सदा एक मतमें रहनेके वास्ते अच्छी तरहसे यत्न करना उचित है। शूर पुरुषोंके बल और पौरुष एक होनेपर वे लोग अर्थलाभमें समर्थ हो सकते हैं। यहां तक कि उन लोगोंकी वृत्ति एक तरहकी होनेपर अन्य मतावलम्बी शूर पुरुष भी उनके साथ मित्रता करते हैं। जो शूर पुरुष परस्परकी सेवा करते हैं, ज्ञानवृद्ध पण्डित लोग उनकी प्रशंसा किया करते हैं; क्योंकि उन लोगोंकी अभिसन्धि पृथक् न होनेसे ही वे लोग सब भांतिसे सुख भोग कर सकते हैं। जो शूर लोग सब धर्म व्यवहार शास्त्रके अनुसार स्थापित करके उसपर यथावत् दृष्टि रखते हैं, वे समूहके बीच श्रेष्ठ होकर वर्द्धित हुआ करते हैं। शूर पुरुष पुत्र और भाइयोंको सदा युद्धकार्य्यमें विशेष रूपसे शिक्षा देके उन शिक्षित पुत्र और भाइयोंका ग्रहण करनेसे सब गुणोंमें वर्द्धित हुआ करते हैं। हे महाबाहो! जो सब शूर दूत, मन्त्र, उपाय

और कोषके कार्य्योंमें सदा रत रहते हैं, वह सब तरहसे बढ़ते हैं। हे राजन्! जो सब शूर बुद्धिमान, महा उत्साहयुक्त और कार्य्योंमें स्थिर पौरुषवाले, शूरोंको सदा सम्मानित करते हैं, उनको बढ़ती हुआ करती है। जो सब शूर धनवान, शास्त्रज्ञ और शास्त्रपारग हैं, वे कष्ट-युक्त घोर आपदमें मोहित मनुष्योंका परित्राण किया करते हैं। हे भरतसत्तम! क्रोध, भय, दम्भ, कर्षण, निग्रह और वध, ये सब शूर पुरुषोंको सदा शत्रुओंके वशमें किया करते हैं। हे राजन्! इससे समूहमें मुख्य प्रधान शूरोंका विशेष सम्मान करना उचित है; क्योंकि समस्त लोकयात्रा ही पूर्ण रीतिसे उन शूर पुरुषोंके अधिकारमें हुआ करती है। हे शत्रुकर्षण भारत! मुख्य शूर पुरुष ही दूत और मन्त्रको रक्षा किया करते हैं इससे वे ही मन्त्रणा सुनने पावें; परन्तु सब शूर पुरुष मन्त्रणा नहीं सुनने पावेंगे। जो समूहके बीच मुख्य हैं, वे सबके साथ मिलके गुप्त भावसे समूहका हित किया करते हैं; परन्तु गणके पृथक् भिन्न और विरत होनेपर उसका विपरीत होता है। यहां तक कि निज शक्तिके अनुष्ठानकारी गणोंमें भेद होनेसे सब अर्थ अवसन्न होते और अनर्थ उत्पन्न हुआ करता है। इससे कुलवृद्ध पण्डित लोग मुख्यगणके निकटसे निकृष्ट गणको शीघ्र दूर करें, वे लोग उपेक्षित होनेपर सदा कुलमें झगड़ा करते और गण-भेदके कारण होकर गोत्रनाश किया करते हैं। हे राजन्! इससे भीतरी भयको यत्नपूर्व्वक रक्षा करके असार वाह्य भयको त्यागना उचित है; क्योंकि आभ्यन्तर भय ही सदा मूलच्छेदन किया करता है। हे राजन्! अकस्मात् क्रोध, मोह और स्वाभाविक लोभके कारण आपसमें एक दूसरेसे वार्त्तालाप न करनेसे उसे ही पराभवका लक्षण मालूम करना चाहिये। सब कोई पराक्रम, बुद्धि, रूप वा धनमें समान होवें, वा न होवें, जाति और कुलमें समान होंगे। शत्रु लोग प्रधान भेद करनेसे ही गण भेद कर सकते हैं; इससे पण्डित लोग गण सम्पत्तिको परम आश्रय कहा करते हैं।

१०७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! यह धर्म्म मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखाओंसे युक्त है; इन सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अत्यन्त अनुष्ठेय कहके आपका सम्मत है? सब धर्म्मके बीच कौन धर्म्म अनुष्ठेय और गुरुतर करके आपको अभिमत है? मैं इस लोक और परलोकमें जिस परम धर्म्मका आसरा करूंगा आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, पिता, माता और गुरुजनोंको पूजा करनी मुझे बहुमत है, मनुष्य इस लोकमें उक्त कर्म्मोंमें नियुक्त रहनेसे ही सब लोकोंको जय करते हुए महत् यशस्वी होते हैं। हे तात युधिष्ठिर! पूजनीय पिता, माता और गुरु जिस कर्म्मको करनेकी आज्ञा दें, वह धर्म्म ही हो, वा धर्म्म विरुद्ध ही होवे, शङ्का रहित चित्तसे उसे करना ही उचित है। उन लोगोंके निवारण करने पर दूसरे धर्म्मका आचरण न करे, वे लोग जो कुछ आज्ञा दें वही धर्म्म है, यह निश्चय जाने। पिता, माता और गुरु ये तीनों त्रिलोक स्वरूप हैं; ये ही तीनों आश्रय, तीनों वेद और तीनों अग्नि स्वरूप हैं; पिता गार्हपत्य, माता दक्षिण और गुरु आहवनीय अग्नि है, ये तीनों अग्नि अत्यन्त बहुत् हैं। पिता, माता, और गुरु इन तीनोंके निकट अप्रमत्त रहनेसे तीनों लोक जय करेगा, पितृपूजासे इस लोक, मातृपूजासे परलोक और गुरु पूजासे अवश्य ही ब्रह्मलोक उत्तीर्ण होगा।

हे भारत! तीनों लोकके बीच इन सबका पूर्णरीतिसे सम्मान करना। तुम्हारा मङ्गल

होगे, तुम महत् यश और धर्म्म फल प्राप्त करोगे। पिता, माता और गुरुके समीप भोग कार्य्य विषयमें अपनी आधिकता दिखाना, अति भोजन और दोष वर्णन न करे; सदा उन लोगोंकी सेवा करे, यही उत्तम सुकृत है। हे नृपसत्तम! ऐसा करनेसे तुम कीर्त्ति, पुण्य, यश और पवित्र लोकोंको प्राप्त करोगे। पिता माता और गुरुका जो लोग सम्मान करते हैं वे सब लोगोंमें आदरणीय होते हैं, और जो इनका अनादर करते हैं उनके सब कार्य्य ही निष्फल होते हैं। हे शत्रुतापन! उनके वास्ते यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है, ये तीनों गुरु जिसके जरिये सदा अपमानित होते इस लोक और परलोकमें उसका यश प्रकाशित नहीं होता तथा परलोकमें उसका कल्याण कीर्त्तित नहीं होता। पिता माता वा गुरुके उद्देशसे मैं जो सब अर्थ संग्रह करके परित्याग करूं, तो मेरे पक्षमें वह सौगुण वा सहस्रगुणा हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! इस ही कारण मेरे वास्ते तीनों लोक प्रकाशित हैं। दस श्रोत्रियोंसे एक साधु आचार्य्य मुख्य है; दश उपाध्यायसे पिता मुख्य है; दश पितासे माता मुख्य है, और क्या कहूं, माता गौरवसे समस्त पृथ्वीको अभिभव किया करती है, इससे माताके समान गुरु नहीं है। मेरे विचारमें पिता और मातासे गुरु ही गौरवयुक्त है; माता पिता दोनों ही जन्मके विषयमें कारण हैं? हे भारत! पिता माता दोनोंसे ही इस शरीरकी उत्पत्ति होती है; और आचार्य्यके उपदेशके अनुसार जो जन्म होता है, वह अजर और अमर है। पिता माता अपकार करनेपर भी सदा अवध्य हैं। अपराध युक्त पिता माताका बध न करनेसे दोषी नहीं होना पड़ता। राजा जैसे वध्य पुरुषोंके बध न करनेसे दूषित होता है, उस भांति अपराधी गुरुका बध न करनेसे दूषित नहीं होता। धर्म्मके वास्ते यत्नमान अर्थात् दुष्ट माता पिताके प्रतिपालनके निमित्त जो लोग यत्न करते हैं, महर्षि और देवता लोग उन्हें अनुग्रह भाजन समझते हैं। जो सत्य वचनसे वेदके विषयमें अनुग्रह प्रकाशित करते और जो सत्य वचनके जरिये अमृत प्रदान करते हैं उन्हें ही पिता माता समझना चाहिये; तथा उनके कार्य्यको मालूम करके कभी उनके विषयमें अनिष्ठ आचरण न करे। जो लोग विद्या पढ़के कृत्यकृत्य होकर गुरुके विषयमें कार्य्यके जरिये मनही मन उनका आदर नहीं करते, उन लोगोंको भ्रूणहत्यासे भी अधिक पाप हुआ करता है, इस लोकमें उनसे बढ़के अधिक पापी दूसरे कोई भी नहीं हैं।

गुरुजन शिष्योंको जैसा मानें, शिष्य लोग भी उनको वैसी ही पूजा करें; इससे जो लोग प्राचीन धर्म्मको कामना करते हैं, उनके पक्षमें गुरुजन पूजनीय, यत्नसे संविभाज्य और अर्च्चनीय होते हैं। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे प्रजापति प्रसन्न होते हैं; और जिसके जरिये माताको प्रसन्न किया जा सकता है, उससे पृथ्वी पूजित होती है, तथा जिन कर्म्मोंसे उपाध्यायको प्रसन्न किया जासकता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है, इससे पिता माताकी अपेक्षा गुरु ही पूजनीय है। किसी प्रकारके कार्य्यसे गुरु अवज्ञाभाजन नहीं होसकते; गुरुका जैसा मान्य करना होता है, पिता-माताका वैसा नहीं। पिता, माता और गुरु कभी अवमान भाजन नहीं होसकते; उन लोगोंके कार्य्यमें कोई दोष देखना उचित नहीं है। देवता और महर्षि लोग गुरुओंका जैसा सम्मान करना होता है, उसे जानते हैं। जो लोग कार्य्य वा मनसे पिता माताका अनिष्ट करते हैं, भ्रूणहत्यासे भी उनका पाप अधिक प्रबल है और इस लोकमें उनसे अधिक दूसरा कोई पापी नहीं है। जो औरससे पुत्र पालन-पोषण करनेपर वर्द्धित होकर पिता माताको

प्रतिपालन नहीं करता, उसका वह पाप भ्रूण हत्यासे भी अधिक है, उससे बढ़के पापी दूसरा कोई नहीं है। मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्रीघाती और गुरुघाती इन चारोंके निष्कृतिका विषय मैंने नहीं सुना। इस लोकमें पुरुषको जो कुछ कर्त्तव्य है, वह सब विस्तारके सहित कहा गया, यही कल्याणकारी और इससे अधिक श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है; सब धर्म्म एकत्रित करके उसमें जो सार स्वरूप था, वही कहा गया।

१०८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मनुष्य धर्म्ममार्गमें निवास करनेकी इच्छा करते हुए किस प्रकार वर्त्तमान रहे। हे विद्वन् भरतश्रेष्ठ! मुझ जिज्ञासुको आप वही उपदेश करिये। हे राजन्! सत्य और मिथ्या ये दोनों ही संसारी लोगोंको आवरण करके विद्यमान हैं; उन्हें त्यागना अत्यन्त कठिन है; इससे धर्म्म-निश्चित मनुष्य उन दोनोंके बीच कैसा आचरण करे? सत्य क्या है, मिथ्या क्या है? और सनातन धर्म्म कौनसा है! किस समय सत्य बोले और किस समय मिथ्या कहे?

भीष्म बोले, हे भारत! सत्य कहना ही उत्तम है, सत्यसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है, लोकके बीच जो कठिनाईसे जानने योग्य है, उसे कहता हूं। किसी समय सत्य बोलना उचित नहीं और कभी मिथ्या कहो जाती है। जिसमें मिथ्या सत्य और सत्य भी मिथ्या हुआ करता है, जिसमें सत्य निष्ठायुक्त नहीं है, वैसा बालक अर्थात् अज्ञानी मनुष्य बध्य होता है। सत्य और मिथ्याका विशेष रूपसे निश्चय कर सकनेसे मनुष्य धर्म्म जाननेवाला हुआ करता है। जैसे व्याधा हिंसक स्वभाववाला है, वह भी अन्धेका वध करनेसे स्वर्गको गया था, वैसे ही अनार्य्य, हीनबुद्धि अत्यन्त निठुर पुरुष भी महत् पुण्य लाभ कर सकता है; गङ्गाके किनारे सारिमके स्थापित किये हुवे अचल अण्डोंको भेद कर उलूकने जिस प्रकार महत् पुण्यलाभ किया था; वैसे ही अधर्म्मी मूढ़ पुरुष धर्म्म करनेवाला होकर जो महत् पुण्य प्राप्त कर सकेगा, उसमें आश्चर्य्य ही क्या है? जिस विषयमें धर्म्म अत्यन्त दुर्लभ और दुर्ज्ञेय है, यह प्रश्न वैसा ही हुआ है। धर्म्मका लक्षण वर्णन करना अत्यन्त कठिन है, इससे कौन इसे निश्चय करके कह सकता है? जीवोंकी उन्नतिके वास्ते ऋषियोंने धर्म्मका वर्णन किया है; इससे जो अभ्युदय युक्त है, वही धर्म्म कहके निश्चित है। जो धारण करता है, महर्षि लोग उसे ही धर्म्म कहते हैं; धर्म्मसे प्रजा धृत हुई है, इससे जो धारणायुक्त है, वही धर्म्म है, यह निश्चय है। कोई कोई पुरुष श्रुतिको ही धर्म्म कहते हैं, दूसरे उसे अङ्गीकार नहीं करते! मैं उनकी निन्दा नहीं करता; सबमें ही कुछ विहित नहीं होता। जो अन्यायसे किसीके धनको हरनेकी इच्छा करते हैं; उन्हें धनीका सन्धान देना उचित नहीं है; यही धर्म्मरूपसे निश्चित है। चोर लोग धनी को बात पूछें, तो यदि न कहनेसे उनके समीपसे छुटकारा मिले तो किसी प्रकार भी उनसे न कहे; बिना कहे यदि उनके हाथसे छुटकारा न हो, तो शपथ पूर्व्वक नहीं जानता हूं, ऐसा भी कहे; ऐसे स्थलमें मिथ्या कहनेसे भी दोष नहीं होता इससे ऐसे स्थानोंमें सत्यसे मिथ्या कहना ही उत्तम है। शपथ करने पर भी यदि पापाचारी मनुष्योंके हाथसे छुटकारा मिले तो, वह भी उत्तम है। किसी प्रकारको सामर्थ रहते पापाचारी मनुष्योंको धन दान न करे, पापाचारियोंको जो धन दिया जाता है, वह दाताको ही पीड़ित करता है। उत्तमर्ण (ऋण देनेवाला) यदि ऋणी पुरुषके शरीरको दासत्वमें नियुक्त

करके दिया हुआ धन वसूल करनेकी अभिलाषा करे, उस समय सत्य कहनेके वास्ते लाये गये साक्षी लोग जो कुछ कहें, और उस विषयमें जो कहना योग्य है, उसे यदि न कहें, तो वे सब ही मिथ्यावादी हैं। प्राणनाश और विवाहकी समय मिथ्या वचन कहनेसे भी दोष नहीं होता। दूसरेके धर्म्मके वास्ते और अर्थ रक्षाके निमित्त झूठ कहनेसे दोष नहीं होता; दूसरेकी सिद्धि कामना करते हुए नीच पुरुष ही धर्म्म-भिक्षुक होते हैं। दोनों मिलके किसी कार्य्यको करते हुए लाभालाभको समान हिस्सेमें बांट लूंगा ऐसा निश्चय होनेपर अन्तमें यदि अर्थ नष्ट होवे, तो भी हिस्सेके अनुसार देना उचित है। कोई पुरुष यदि धर्म्मबन्धनसे च्युत हो, अथवा अधर्म्मके वशमें होकर यदि जबर्दस्ती करे, तो उसके ऊपर दण्डविधान करना उचित है; और दासत्व प्राप्त करके यदि कोई कपटता करे, तो कपटतासे ही उसे दण्ड देना चाहिये। जिस पुरुषने आसुर-धर्म्मका सहारा लिया है, वह सदा ही सब धर्म्मोंसे च्युत है; शठ मनुष्य निज धर्म्म त्यागके असुर धर्म्मके जरिये जीविका निर्व्वाह करनेकी इच्छा करते हैं। लोकमें जिसने भयको ही सर्व्वस्व रूपसे निश्चय कर रखा है, वही पापी है जो पापी ऐसा जानता है, कि धन ही उत्तम है, धन कल्याण दायक नहीं है; उसे जिस उपायसे होसके वध करना उचित है। जो लोग धर्म्म-कर्म्मके वास्ते क्लेश नहीं सहते और दीन दरिद्रोंके सहित धनको विभाग करके भोग नहीं करते, वेही पापके स्थान हैं; वेही देवता और मनुष्योंसे भ्रष्ट प्रेतके समान हैं। जो लोग यज्ञ और तपस्यासे हीन हैं, उनके साथ सहवास मत करो, क्योंकि उन लोगोंको वित्तनाशके वास्ते जो दुःख होता है, वह प्राण वियोगके समान है पापाचारियोंके वास्ते धर्म्म रूपसे कोई विषय निश्चित नहीं है; इससे इस धर्म्ममें तुम्हारी अभिरुचि होवे, यत्नपूर्व्वक उन्हें यह उपदेश देवे; ऐसा पुरुष ही कोई नहीं है। वैसे पुरुषका जो वध करता है, वह पापग्रस्त नहीं होता; वह निज कर्म्मसे ही मरे हुए पुरुषका वध किया करता है; जो मारा जाता है, वह निज कर्म्मके जरिये ही मरता है। इन बुद्धिहीन पापाचारियोंके बीच इन सबको मारूंगा, जो पुरुष ऐसा नियम करता है, वह कौआ और गिद्धकी तरह केवल कपटजीवी है; वह देह त्यागनेसे इन्हीं सब योनियोंमें जन्म लेता है। जो मनुष्य जिस विषयमें जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना धर्म्म है; कपटीको कपट व्यवहारोंसे बाधित करना चाहिये और साधु आचरणवाले मनुष्यके समीप सदाचरण करना उचित है।

१०९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जिस समय प्राणी जैसी अवस्थामें रहते हैं, उस ही उस अवस्थामें क्रमसे क्लेशित होनेपर जिस उपायके सहारे दुस्तर विषयोंके पार होसकते हैं, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, जो सब स्थिर चित्तवाले द्विजाति पहिले कहे हुए आश्रमोंके यथोक्त धर्म्माचरण करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो दम्भका आचरण नहीं करते, जिनकी चित्तवृत्ति स्थिर है और जो इन्द्रियोंको निग्रह किया करते हैं; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम करते हैं। निन्दा करनेपर जो प्रत्युत्तर नहीं करते, हिंसित होनेपर भी जो हिंसा नहीं करते; दान करते परन्तु किसीसे मांगते नहीं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो प्रतिदिन अतिथियोंको आश्रय देते, कभी किसीकी निन्दा नहीं करते और सदा स्वाध्याय रत अर्थात्

समाधीस्त वेद पाठ करते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब धर्म्म जाननेवाले मनुष्य माता पिताकी वृत्तिका आसरा करते और दिनमें निद्रित नहीं होते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते जो मन वचन कर्म्मसे कुछ पापाचरण और जीवोंके वास्ते दण्ड विधान नहीं करते, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो राजा लोग रजोगुणसे युक्त होकर लोभके कारण धन नहीं हरते, और सब विषयोंको सब तरहसे रक्षा करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब अग्निहोत्र परायण साधु लोग ऋतुकालमें निजरत होकर दूसरी वृत्ति अवलम्बन नहीं करते, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो शूर पुरुष युद्धमें मृत्युका भय त्यागके जयकी इच्छा करते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम कर सकते हैं। इस संसारमें प्राणत्यागका समय उपस्थित होनेपर भी जो सत्य वचन कहते हैं, वे जीवोंके निदर्शन स्वरूप मनुष्य दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिनके कार्य्योंमें कोई कपटता नहीं है, वचन सत्य और प्रिय है तथा सब अर्थ सत्कार्य्योंमें परिणत होता है; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो ब्राह्मण अनध्यायके दिवस वेद पाठ नहीं करते, वे तपस्यामें निष्ठावान तपस्वी लोग दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो सब कुमार ब्रह्मचारी विद्या वेद और व्रतमें निष्ठावान होकर तपस्या करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिन महात्माओंमें रजोगुण और तमोगुण शान्त होगया है, तथा वे लोग केवल सतोगुणको अवलम्बन किये हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जिसके समीप कोई भयभीत नहीं होते और जो किसीके निकट त्रास युक्त नहीं होते तथा सब प्राणी ही जिसे आत्म समान हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम कर सकते हैं। जो सब पुरुषश्रेष्ठ साधु लोग पराई श्रीको देखके दुःखित नहीं होते और जो ग्राम्य विषयसे निवृत्त रहते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो सब श्रद्धावान शान्त स्वभाववाले मनुष्य देवताओंको प्रणाम करते और सब धर्म्म सुनते हैं, वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं जो प्रजाकामनासे शुद्धचित्तसे प्रति तिथिमें श्राद्ध करते हैं, वे सब कठिन विषयोंको अतिक्रम करते हैं। जो क्रोधको रोकते और क्रुद्ध पुरुषोंके पूरी रीतिसे शान्त किया करते हैं, तथा प्राणियोंके ऊपर कोपित नहीं होते; वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। जो मनुष्य इस लोकमें सदा मद्य मांसका भोजन परित्याग करते जन्म भर मद्य पान नहीं करते; वेही कठिन विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं, जो प्राणयात्रा निर्व्वाहके ही वास्ते भोजन करते पुत्र उत्पत्तिके वास्ते भार्य्याका सङ्ग करते, सत्य कहनेके निमित्त वचन बोलते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। सब प्राणियोंके ईश्वर, जगत्को उत्पत्ति और लयके कारण नारायण देवकी जो लोग भक्ति करते हैं, वेही दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं। हे राजन्! यह जो पद्मके समान लालनेत्रवाले पीताम्बरधारी महाबाहु अच्युत अर्जुनके सुहृद, भ्राता, मित्र और सम्बन्धी हैं; जो अचिन्त्यस्वभाव पुरुषश्रेष्ठ प्रभु गोविन्द इच्छा करनेसे ही सब लोकोंको चमड़ेकी तरह समेटा करते हैं, जो धनञ्जय तथा तुम्हारे प्रिय और हितकर कार्य्योंमें सदा तत्पर रहते हैं, वह यही पुरुष प्रवर अनभिभवनीय वैकुण्ठ ही पुरुषोत्तम हैं। जो सब भक्त लोग इस लोकमें इस नारायण हरिका आसरा करते हैं, वे दुस्तर विषयोंको अतिक्रम किया करते हैं; इस विषयमें कोई विचार नहीं है। जो लोग इस दुस्तर विषयके

अतिक्रमका विवरण पाठ करते, सुनते, वा ब्राह्मणोंके निकट गाया करते हैं, वे भी कठिन विषयोंसे पार होते हैं। हे पापरहित! मनुष्य लोग इस लोक और परलोकमें जिस प्रकार दुस्तर विषयोंसे उत्तीर्ण होते हैं, मैंने यही उस कार्य्यका विवरण तुम्हारे समीप वर्णन किया।

११० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! जो प्रिय नहीं हैं, वे प्रिय रूपसे और जो प्रियदर्शन हैं, वे अप्रिय रूपसे दीख पड़ते हैं, इससे ऐसे पुरुषोंको हम किस प्रकार जानेंगे?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें गिद्ध गोमायु सम्वाद युक्त जिस पुराने इतिहासका प्राचीन लोग उदाहरण दिया करते हैं, उसे सुनो। पहिले समयमें श्रीमती पुरीका नाम पुरोके बीच परहिंसामें रत, क्रूर स्वभाववाला पुरुषोंमें अधम पौरिक नाम एक राजा था। वह आयु क्षय होनेपर अनिश्चित गतिको प्राप्त होकर पूर्व्व-कर्म्मके दोषसे जम्बुक हुआ था। वह प्रथम ऐश्वर्य्यको स्मरण करके दुःखको प्राप्त हुआ। दूसरके लानेपर भी वह मांस भक्षण नहीं करता था। वह सब जीवोंके विषयमें हिंसा रहित सत्यवादी और दृढ़व्रती होकर यथा समयमें स्वयं गिरे हुए फलके जरिये आहार-वृत्तिसे जीविका निर्व्वाह करता था। श्मशानमें बास करना ही उसे सम्मत था, जन्मभूमिके अनुरोधके कारण दूसरी जगह निवास करनेकी उसकी इच्छा नहीं होती थी। समान जातिवाले सियारोंने उसकी पवित्रताका सहन नहीं किया, वे सब विनय युक्त वचनसे उसकी बुद्धि विचलित करने लगे। वे सब बोले, तुम भयङ्कर श्मशानमें वास करते हुए शुद्धाचारसे रहनेकी अभिलाष करते हो, तुम जब मांसभक्षी हो, तब तुम्हारी ऐसी विपरीत बुद्धि क्यों हुई? इससे तुम हमारे समान रहो, हम लोग तुम्हें भक्ष्य वस्तु देंगे; शुद्ध आचार परित्याग करके भोजन करो; जो हम लोगोंका भोजन है, वही तुम्हारा भक्ष्य होवे। जम्बुकने सजातीय सियारोंका वचन सुनके स्थिर होकर बिस्तार पूर्व्वक युक्तियुक्त निठुरतारहित मधुर बचनसे उत्तर दिया, कि मेरे जन्मका कोई प्रमाण नहीं है; स्वभावके अनुसार चाहे जिस किसी कुलमें उत्पन्न हुआ हूं, जिससे यश बढ़े, मैं वैसे कर्म्मकी इच्छा करता हूं, यद्यपि मैं श्मशानमें वास करता हूं; तौभी मेरा नियम सुनो; आत्मा ही कर्म्म फल भोग करता है, आश्रम कोई धर्म्मके कारण नहीं है। आश्रममें रहके जो पुरुष ब्रह्महत्या करते अथवा दूसरे आश्रममें रहके गऊदान करते हैं; उसमें क्या उन लोगोंके पाप वा दान व्यर्थ होते हैं? तुम लोग केवल स्वार्थी और लोभके वशमें होकर केवल भक्षण करनेमें ही रत होरहे हो; परिणाममें जो तीनों दोष वर्त्तमान हैं, मोहित होकर उसे नहीं देखते हो। असन्तोष कारिणी गर्हणीया वृत्ति धर्म्महानिके कारण दूषित होती है, इस लोक और परलोकमें अनिष्ट करनेवाली वृत्तिमें मेरी अभिलाषा नहीं है। कोई विख्यात बली शार्दूल गोमायुको पवित्र और पण्डित समझके स्वयं उसका अपने समान सम्मान करत हुए मन्त्रीके कार्य्यके वास्ते चुना।

शार्दूल बोला, हे प्रियदर्शन! तुम्हारा स्वभाव मालूम हुआ, तुम मेरे साथ राजकार्य्य करनेके वास्ते चलो, अभिलषित भोगकी इच्छा करके प्रचुर भोग परित्याग करो। मैं तीक्ष्ण रूपसे विख्यात हूं; इससे तुम्हें कोमलता युक्त हितकर वचन कहता हूं, कि तुम्हारा कल्याण होगा।

अनन्तर जम्बुक महानुभाव मृगेन्द्रके वचनका सम्मान करके कुछ नत होकर विनययुक्त वचनसे कहने लगा। सियार बोला, हे मृग-

राज! तुमने मेरे वास्ते जो वचन कहा, वह तुम्हारे योग्य ही है; तुम जो धर्म्मार्थ कुशल और पवित्र सहाय खोजते हो, वह उचित ही है, हे वीर! अमात्यके बिना अथवा शरीरके परिपन्थी दुष्ट अमात्योंके जरिये महत्वकी रक्षा करनी अत्यन्त कठिन है। हे महाभाग! नीतिज्ञ, अनुरक्त, सन्धि कुशल, परस्पर असंसृष्ट, विजिगीषु, लोभरहित, कपट हीन, बुद्धियुक्त, हितमें रत, ऊंचे चित्तवाले सहायकोंका आचार्य्य और पिताकी तरह सम्मान करना होता है। हे मृगराज! मुझे सन्तोषके कारण दूसरे विषयोंमें इच्छा नहीं होती, मैं सुख भोग और उसके आश्रित ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा नहीं करता; मेरा चरित्र तुम्हारे पुराने सेवकोंके साथ न मिलेगा। वे शीलरहित सेवक मेरे वास्ते तुमको विभिन्न करेंगे; दूसरे किसी तेजस्वीका आसरा भी प्रशंसनीय नहीं है। पवित्र चित्तवाले महाभाग पुरुष अग्निसे भी प्रचण्ड है, मैं दीर्घदर्शी महाउत्साहसे युक्त धर्म्मात्मा, महाबलशाली, कृती, अव्यर्थकारी और अनेक भोगोंसे अलंकृत था, मैं थोड़ेमें सन्तुष्ट नहीं होता था और कभी सेवावृत्तिका अनुष्ठान भी नहीं किया है, इससे सेवावृत्तिसे अनभिज्ञ हूं; केवल स्वच्छन्दताके सहित बनके बीच घूमा करता हूं। जो गृहस्थाश्रममें वास करते हैं, उन लोगोंको ही राजाके निकट निन्दाजनित दोष हुआ करता है, और बनबासियोंका व्रत आचरण आसक्ति रहित तथा निर्भय होता है। राजासे बुलाये जानपर मनुष्यके मनमें जो भय होता है, सन्तुष्टचित्त और फलमूल भोजन करनेवाले बनबासियोंके मनमें वह भय नहीं रहता। अनायास प्राप्त हुए जल और भययुक्त स्वादिष्ट अन्न इन दोनोंके बीच विचार करके देखता हूं, जिसमें निवृत्ति है, उसहीमें सुख है, राजा लोग सेवकोंके अपराधके कारण उस प्रकार दण्डविधान नहीं कर सकते, जैसे आघातसे दूषित होकर वे लोग मृत्युको प्राप्त होते हैं। हे मृगेन्द्र! यदि मुझे यह राजकार्य्य करना होवे, तुम ऐसा विचारते हो; तो मुझे जिस प्रकार रहना होगा, उसका एक नियम करनेकी इच्छा करता हूं। तुम्हारे प्राचीन मन्त्री मेरे माननीय होंगे, परन्तु मेरा हितकर वचन तुम्हें सुनना योग्य है। मेरी जो वृत्ति कल्पित होगी, वह तुम्हारे समीप स्थिर रहेगी, मैं कभी तुम्हारे दूसरे मन्त्रियोंके साथ विचार नहीं करूंगा; तुम्हारे प्राचीन मन्त्री नीतिज्ञ होनेपर भी मेरे विषयमें व्यर्थ बार्त्ता करेंगे। मैं अकेले एकान्तमें केवल तुम्हारे साथ मिलके हितकर वचन कहूंगा; स्वजनोंके कार्य्यमें तुम मुझसे हिताहितका विषय न पूछना। तुम मेरे साथ सलाह करके फिर दूसरे मन्त्रियोंकी हिंसा न करना, और मेरे आत्मीयगणोंके ऊपर क्रुध होकर तुम दण्डविधान न करना। "ऐसा ही होवे"—मृगेन्द्रने ऐसा वचन कहके जम्बुकका सम्मान किया; जम्बुक भी सम्मानित होकर व्याघ्रके मन्त्री पदपर प्रतिष्ठित हुआ। बाघके पूर्व्व स्थित सेवक लोग सियारको निज कार्य्यमें सत्कृत और पूजित देखकर सब कोई दलबद्ध होकर बारम्बार उसके ऊपर द्वेष करने लगे। दुष्टबुद्धि मन्त्रियोंने मित्र ज्ञानसे गोमायुकी शान्त और प्रसन्न करके अपनी तरह उसे भी दोषी करनेकी इच्छा की। ऐसा न करनेसे पहिले जिन्होंने पराये धनको हरण किये थे, इस समय वे वहां रहने न पाते; और गोमायुसे निमन्त्रित होके कोई वस्तु ग्रहण करनेमें समर्थ न होते थे। वे सब अपनी उन्नतिकी इच्छा करते हुए अनेक प्रकारके वचन और वित्तसे गोमायुकी बुद्धि लोभयुक्त करने लगे; परन्तु वह महाबुद्धिमान जम्बुक किसी प्रकार धीरजसे विचलित नहीं हुआ। अनन्तर सबने षड़यन्त्र करके सियारके नाशके वास्ते व्याघ्रका अभिलषित मांस जो उसके घरमें रखा था;

उन लोगोंने स्वयं उस मांसको वहांसे लाकर सियारके घरमें रखा। वह मांस जिस कारण जिसके जरिये लाया गया था, और जिसने इस विषयको सलाह की थी; वह सब हाल सियारको मालूम था, उसने केवल अपने बन्धु विच्छेदके निमित्त क्षमा की थी। वह जब मन्त्री कार्य्यपर नियुक्त हुआ, उस समय यह नियम किया था, कि इस लोकमें सब जीवोंके हितके निमित्त किसीके ऊपर आघात करना उचित नहीं है।

भीष्म बोले, भूखा व्याघ्र भोजन करनेके वास्ते उठने पर भोजनके योग्य उस मांसको न देखा; तब उसने आज्ञा दी, कि किसने मांस चुराया है, उस चोरका पता लगाओ। कपट आचारी सेवकोंने मृगेन्द्रके समीप उस मांसका विषय वर्णन किया, कि तुम्हारे प्राज्ञमानी पण्डित मन्त्रीने उस मांसको हरण किया है। अनन्तर शार्दूलराज सियारकी चपलता सुनने पर कोपित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसका वध करनेकी इच्छा करी। पूर्व्वस्थित मन्त्रियोंने उसका वह छिद्र देखके, वह सियार हम सब लोगोंकी वृत्ति भङ्ग करनेमें प्रवृत्त हुआ है। उन लोगोंने ऐसा निश्चय करके फिर उसके सब कर्म्मोंको वर्णन करने लगे, उसका जब ऐसा कर्म्म है, तब वह क्या नहीं कर सकता? आपने पहिले उसे जिस प्रकार सुना था, वह वैसा नहीं है; वह वचन मात्रका ही धर्म्मिष्ठ है; परन्तु उसका स्वभाव अत्यन्त दारुण है। इस पापीने कपट धर्म्म अवलम्बन करके वृथा आचरण परिग्रह किया है, कार्य्य सिद्धके कारण भोजनके वास्ते व्रत विषयमें श्रम किया है। यदि इस विषयमें आपको अविश्वास होवे, तो इस समय आपको दिखा देता हूं—वह मांस सियारके घरमें प्रवेशित हुआ है मांसकी चोरी और उसके वृत्तान्तको सुनकर व्याघ्रने उस समय "गोमायुका वध करो," ऐसी आज्ञा की। अनन्तर शार्दूलकी माता उसका वचन सुनके हितकर वाक्यसे उसे शान्त करनेके वास्ते आई। वह बोली, हे पुत्र! कपट कार्य्य संयुक्त वाक्य ग्रहण करने तुम्हें उचित नहीं है। ईर्षाके कारण उग्रतायुक्त अपवित्र पुरुषोंको संसर्ग जनित दोषके जरिये निर्दोषी पुरुष भी दोषी होता है, कोई पुरुष वैरकारक समुन्नत प्रकृष्ट कर्म्म नहीं सह सकता, निर्दोषी पुरुषके अभियुक्त होनेपर वह दूषित हुआ करता है; निज कर्म्म साधन करनेवाले बनवासी मुनियोंके विषयमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन ये तीनों पक्ष उत्पन्न होते हैं। लोभियोंके शुद्ध स्वभाव वाले लोग द्वेषी होते, कादरोंके बलवान, मूर्खोंके पण्डित और दरिद्रोंके महाधनवान मनुष्य द्वेषी हुआ करते हैं, अधार्म्मियोंके धर्म्मात्मा और कुरूपोंके स्वरूपवान मनुष्य द्वेषभाजन होते हैं। बहुतेरे पण्डित मूर्ख, लोभी और मायाजीवी लोग वृहस्पतिके समान बुद्धि-मान् निर्दोषी मनुष्योंके दोष स्थापित किया करते हैं। यद्यपि तुम्हारे सूने गृहसे मांस चुराया गया है, परन्तु जो पुरुष देने पर भी लेने की इच्छा नहीं करता; उस विषयमें वैसा समझना उचित नहीं है। असभ्य लोग सभ्य और सभ्य लोग असभ्यके समान दीख पड़ते हैं। लोगोंके भाव अनेक तरहके देखे जाते हैं; इससे उनके विषयमें परीक्षा करना युक्तियुक्त है। आकाशका तल कड़ाहीके पेट समान दीखता और जुगुनू अग्निकी चिनगारी सदृश दीख पड़ता है; परन्तु आकाशका तल नहीं है और जुगुनू भी अग्नि नहीं है, इससे अप्रत्यक्ष दृष्ट विषयोंकोभी परीक्षा करनी उचित है। परीक्षा करके विषय जाहिर करने पर पीछे दुःखित नहीं होना पड़ता।

हे पुत्र! प्रभु होके दूसरेको नष्ट करना, कुछ कठिन नहीं है; परन्तु इस लोकमें प्रभा-वयुक्त पुरुषोंमें क्षमागुण ही बड़ाईके योग्य तथा यशदायक है। हे पुत्र! तुमने उसे समस्त

राज्यके बीच स्थापित किया है ? उससे ही वह विख्यात हुआ है ; मन्त्रणा पात्र अत्यन्त कष्टसे प्राप्त होता है ; यह तुम्हारा सुहृद है, इससे इसकी रक्षा करो । पराए दोषसे दूषित पवित्र पुरुषको जो दूसरी भांति समझता है, वह स्वयं अमात्योंको दूषित करते हुए शीघ्र ही नष्ट होता है । जम्बुकके उन शत्रु समूहके बीचसे कोई धर्म्मात्मा आया, उसने जिस प्रकार यह छल हुआ था, वह सब प्रकाशित करके कह दिया । अनन्तर जम्बुकका चरित्र मालूम होनेपर व्याघ्रने उसका सत्कार करके उसे मुक्त किया और बारम्बार प्रीतिके सहित उसे आलिङ्गन किया । नीतिशास्त्रको जाननेवाला वह सियार मृगेन्द्रको आज्ञा लेके उस ही अमर्षसे दुःखित होकर प्रयोग पवेशन व्रतको इच्छा की । शार्दू-लने प्रीतिके कारण इकटक नत्रसे सम्मान करके उस धर्म्मात्मा सियारको आदरके सहित अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे निवारण किया । सियार बाघको स्नेहवशके कारण संभ्रान्त चितवनसे प्रणत होके गद्गद वचनसे कहने लगा कि तुमने पहिले मुझे पूजित करके पीछे अप-मानित किया और मेरे शत्रुओंके आश्रय हुए ; इससे मैं तुम्हारे समीप निवास नहीं कर सक्ता । जो सेवक स्थानभ्रष्ट मानसे हीन हैं, वे स्वयं आगत वा दूसरसे अर्पित होवें ; जो क्षीण, लोभी, क्रोधी, डराङ्कक, प्रतारित और हृत सर्व्वस्व होवें और जो मानी तथा महा अर्थ लाभके अभि-लाषी होकर आदान हीन हुआ करते है ; जो दुःखित वा व्यसनोंकी प्रतीक्षा करते हैं, वे सब ही प्रीतिरहित और निर्द्धन होकर नष्ट होते हैं । मैं स्थानभ्रष्ट और अपमानयुक्त हुआ हूं, इससे किस प्रकार तुम्हारा विश्वास पात्र होऊंगा ; और कैसे तुम्हारे समीप स्थित होऊंगा ? मुझे समर्थ समझके तुमने मन्त्री पद प्रदान करके परीक्षा की और अपने किये हुए नियमको उल्लङ्घन करके मुझे अवमानित किया है । सभाके बीच शीलवान कहके जिसे विख्यात किया था ; प्रतिज्ञा रक्षा करनेवालेके पक्षमें उसका औगुण कहना उचित नहीं है । मैं जब इस प्रकारसे मालूम हुआ हूं, तब तुम मेरा विश्वास अब न करोगे, तुम्हारे विश्वास न कर-नेसे मेरा भी चित्त व्याकुल होगा । तुम शङ्कित और मैं भयभीत हूं ; दूसरे छिद्र खोजनेवाले अस्निग्ध और असन्तुष्ट रहेंगे ; इससे ऐसे स्थलमें वास करनेसे बहुतसा छल होसकता है । जिस स्थानमें पहिले सम्मान पीछे अपमान होता है, उस सम्मानित होके फिर अपमानित होनेवालेको धीर लोग प्रशंसा नहीं करते । पृथक् हुई वस्तु बहुत कष्टसे जुड़ती है और जुड़ी हुई वस्तु अत्यन्त कष्टसे अलग हुआ करती है; जो प्रीति पृथक् होके फिर जुड़ती है, वह स्नेहसे मिश्रित नहीं रहती । कोई पुरुषको अपना पराया दोनोंके अतिरिक्त केवल स्वामीके हितकर कार्य्योंमें रत नहीं देखा जाता सब ही कार्य्यके अनुसार अभिप्राय करते हैं ; इससे स्निग्धबन्धु अत्यन्त दुर्लभ है । राजाओंका चित्त अत्यन्त चञ्चल होता है ; उत्तम पुरुषको सम-झना बहुत कठिन है ; समर्थ वा शङ्कारहित पुरुष सैकड़ेमें एक पाया जाता है । मनुष्योंको उन्नति अवनति स्वयं हुआ करती ; शुभाशुभ घटना ही महत्व और तुच्छत्व मालूम करानेमें समर्थ है ।

भीष्म बोले, जम्बुकने इसी प्रकार धर्म्म, काम और अर्थसे पूरित युक्तियुक्त शान्त वचन कह बाघको प्रसन्न करके बनको गया । बुद्धि-मान सियार उस शार्दूलको बिनतीको न मान कर व्रत अवलम्बन करके देह त्यागनेके अनन्तर स्वर्गमें गया ।

१११ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे सब धर्म्मोंके जाननेवाले पितामह ! राजाको क्या कर्त्तव्य है, और कैसा

कार्य्य करनेसे राजा सुखी होता है इसे आप यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, अच्छा,—मैं तुम्हारे समीप कहता हूं; इस लोकमें राजाको जो कुछ कर्त्तव्य हैं और जिसके करनेसे वह सुखी होते हैं, उस कार्य्यके विषयमें एकमात्र निश्चय है, उसे सुनो। हे युधिष्ठिर! हमने जिस प्रकार एक ऊंटका महत् वृत्तान्त सुना है, वैसा करना उचित नहीं; इससे उसे सुनो। प्राजापत्य युगमें एक जातिस्मर ऊंट था, उसने जङ्गलके बीच व्रत करके महत् तपस्या की थी। उसकी तपस्या पूरी होने पर सर्व्व-शक्तिमान पितामह प्रसन्न हुए; अनन्तर उन्होंने उसे वर मांगनेको कहा।

ऊंट बोला, हे भगवन्! आपकी कृपासे मेरी गर्द्दन लम्बी होवे, हे विभु! जिससे मैं उस लम्बी गर्द्दनके जरिये एक सौ योजनसे भी आगेके कण्टक पत्रादिकोंका हरण कर सकूं। वरदाता महात्मा पितामहने कहा "ऐसा ही होवे"। ऊंट भी उत्तम वर पाके निज वनमें गया। अत्यन्त नीचबुद्धि ऊंटने उस समय वरके प्रभावसे आलस्य किया। वह दुष्टात्मा कालसे मोहित होकर चरनेके वास्ते नहीं जाता था; किसी समय उस एक सौ योजन लम्बी ग्रीवाको पसार कर निश्शङ्कचित्तसे रहा था; उस ही समयमें प्रबल हवा बहने लगी, तब ऊंटने अपने शिर और गर्द्दनको कन्दराके बीच डाल दिया।

अनन्तर जगत्को परिपूरित करती हुई महत् वर्षा आरम्भ हुई। उस ही समय कोई सियार जलसे भीगके शीतसे आर्त्त हुआ; इससे कष्टमें पड़के भार्य्याके सहित शीघ्र ही उस गुफाके बीच प्रवेश किया। हे भरतश्रेष्ठ! वह मांसजीवी जम्बुक परिश्रम और क्षुधासे युक्त होकर ऊंटकी गर्द्दन देखके उसे भक्षण करने लगा। ऊंटने जब अपनेको भक्ष्यमान समझा तब वह अत्यन्त दुःखित होकर ग्रीवा समेटनेके वास्ते यत्नवान हुआ। वह गर्द्दनको ऊपर नीचे समेटने लगा। परन्तु सियारने भार्य्याके सहित उसे भक्षण किया। सियार ऊंटको भक्षण करके वर्षा और वायुके शान्त होने पर गुफासे बाहर हुआ। नीचबुद्धि ऊंट उस समय इसी भांति मृत्युको प्राप्त हुआ था। देखिये, आलसके कारण महत् दोष उपस्थित हुआ, इससे तुम उपाय अवलम्बन करके ऐसे आलस छोड़के सावधान होकर बुद्धिमूलक विषयोंमें वर्त्तमान रहो। हे भारत! मनुने कहा है, बुद्धिमूलक कर्म्म ही उत्तम है; बाहु-बल जनित कर्म्म मध्यम, और पांवसे चलना तथा बोझा ढोना आदि निकृष्ट हैं। जो लोग दक्ष और क्रमसे इन्द्रियोंको निग्रहीत किये हैं, उन्हीं राजाओंका राज्य वर्त्तमान रहता है; और बुद्धिबलसे ही आर्त्त पुरुषोंकी विजय होती है; यह मनुने कहा है।

हे पापरहित युधिष्ठिर! जिन्होंने गुप्त मन्त्रणा सुनी है, जो सहाय युक्त और परीक्षा करके कार्य्य करते हैं; इस लोकमें उनके ही पास सब अर्थ उपस्थित रहते हैं; सहाय युक्त राजा समस्त पृथ्वी शासन करनेमें समर्थ हैं। हे महेन्द्र सदृश स्वभावसे युक्त महाराज! विधि जाननेवाले साधुओंके जरिये पहिले समयमें यह कथा कही गई थी; मैंने भी तुम्हारे समीप शास्त्रदृष्टिके अनुसार इसे वर्णन किया; इससे जैसा कहा है, उस ही भांति बुद्धिसे विचार करके आचरण करो।

११२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! राजा दुर्लभ राज्य पाके सहाय रहित होके अत्यन्त बलवान शत्रुके निकट किस प्रकार निवास करे?

भीष्म बोले, हे भारत! पुराने लोग इस विषयमें सरित्पति सागर और नदियोंके सम्वाद

मुनि इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, जो प्रसङ्ग उत्पन्न हुआ था, उस विषयमें सुरा-रिनिलय सरित्पति समुद्र नदियोंसे प्रश्न किया।

समुद्र बोला, हे उत्तमोत्तम नदियो! तुम सब जिस समय मेरे निकट आती हो; उस समय जड़ और शाखाके सहित बड़े बड़े वृक्षोंको नष्ट होते देखता हूं; परन्तु उनके बीच बेतके वृक्षको टूटते हुए नहीं देखता। बेतका वृक्ष छोटा शरीर और अल्प शक्तिवाला तुम्हारे किनारे पर उत्पन्न होता है; इससे तुम लोग उसे अवज्ञाके कारण नहीं लाती हो; वा उसने तुम लोगोंका कुछ उपकार किया है? बेत जो तुम लोगोंके तटको छोड़के नहीं आता, उस विषयमें मैं तुम सब लोगोंके मतको सुननेकी इच्छा करता हूं। इस विषयमें नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गा सरित्पति समुद्रसे अर्थ और युक्तियुक्त हृदय-ग्राहक उत्तर देने लगीं।

गङ्गा बोलीं, ये सब वृक्ष यथा स्थानमें रहनेसे नष्ट होते हैं, ये सब हम लोगोंके विरुद्ध आचरण करके अन्तमें निज स्थानसे भ्रष्ट हुआ करते हैं; बेतवृक्ष ऐसा न करनेसे निज स्थानमें ही निवास करता है। वेगको आता देखके बेत नत होता है, दूसरे नत नहीं होते; नदीका वेग घटनेपर बेत निज स्थानमें स्थित रहता है। बेत कालज्ञ, समयज्ञ और सदा वशीभूत, अनुलोम तथा सूखा है; इस ही निमित्त इस स्थानमें नहीं आता। जो सब ओषधी, वृक्ष, और लता वायु तथा जल वेगके कारण नीचे और ऊंचे होती हैं, वे अपने पराभवको नहीं प्राप्त होतीं।

भीष्म बोले, जो पुरुष पहिले वध और नाश करनेमें समर्थ प्रबल वैरीके वेगको नहीं सहता, वह शीघ्र ही नष्ट होता है। जो अपना और शत्रुका सार असार तथा बलवीर्य्यको मालूम करके घूमते हैं, उन बुद्धिमान पुरुषोंको पराभव नहीं होती। इसी भांति जो शत्रुओंको प्रबल पराक्रमी जानके बेतसीवृत्ति अवलम्बन करते हैं, उनको पराभव नहीं होती; यही प्रकृष्ट ज्ञानका लक्षण है।

११३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे शत्रुनाशन भारत! विद्वान पुरुष मूर्ख वा प्रगल्भके जरिये, कोमल तथा कठोर भावसे निन्दित होकर सभाके बीच कैसा व्यवहार करे?

भीष्म बोले, हे पृथ्वीनाथ! यह विषय जिस प्रकार वर्णित होता है, अर्थात् बुद्धिमान पुरुष अल्पबुद्धि मनुष्योंके अत्याचारको जिस प्रकार सदा सहते हैं, उसे सुनो। जो निन्दक पुरुषोंके ऊपर क्रोध नहीं करते, वे सुकृत फल लाभ किया करते हैं, और जो क्रोधी पुरुषके विषयमें क्षमा करते हैं, वे अपने किये हुए दुष्कृत कर्म्मोंसे छूट जाते हैं। टिट्टिभ पक्षीके शब्दकी भांति कानोंमें कड़वे मालूम होनेवाले क्रोधसे आतुर पुरुषोंके वचनमें उपेक्षा करे। लोक समाजमें जो पुरुष द्वेषभाजन होता है, उसका सब ही निष्फल है; वह उसही पाप कर्म्मके जरिये सदा बड़ाई करता है,—"मैंने जनसमाजके बीच अत्यन्त विख्यात किसी पुरुषको ऐसा वचन कहा था, वह सभामें ऐसा सुनके मुर्देके समान स्थित था।" जो निर्लज्ज पुरुष बड़ाई न करने योग्य कर्म्मोंके जरिये बड़ाई करते हैं, वैसे अधम पुरुषोंके विषयमें यत्नपूर्व्वक उपेक्षा करनी योग्य है। अल्पबुद्धि मनुष्य जो कुछ कहे, बुद्धिमान पुरुष उसे सहन करे, वनके बीच कौवेकी तरह निरर्थक चिल्लाते हुए बुद्धिहीन साधारण पुरुष प्रशंसा वा निन्दा करके क्या कर सकता है? पाप कर्म्मोंका करना यदि वचनसे कहा जावे, अर्थात् इस पुरुषने यह कर्म्म किया है, ऐसा करने पर वचनमात्रसे दूसरेका दोषसिद्ध आड़ करता है; क्रोधी पुरुषका प्रयोजन सिद्ध

नहीं होता, इससे वचनके जरिये दूषित पुरुष कभी दोषी नहीं होसकता। दुष्ट पुरुष यदि कड़वे वाक्यसे कोई विपरीत वचन कहें, अर्थात् जनसमाजमें यदि कोई पुरुष कड़वे वचनसे गाली देवे, तो जैसे मोर अपना गुह्य दिखाके नाचके नाचते अपनी बड़ाई समझता है, अर्थात् मैं उत्तम नृत्य करता हूं, ऐसे ही अभिमानसे मतवाला होता है, वैसे ही खल तथा नष्ट लोग मैंने सभाके बीच अमुक महत् पुरुषको कड़वे वचन कहा है, ऐसी ही बड़ाई किया करते हैं, उसके वास्ते लज्जित नहीं होते। जगत्में जिसे कुछ भी न करने योग्य अथवा अकार्य्य नहीं है, उन दूषित चित्तवाले मनुष्योंके साथ पवित्र स्वभाव युक्त पुरुषोंको वार्त्तालाप करना उचित नहीं है। जो पुरुष सम्मुखमें प्रशंसा और परोक्षमें निन्दा किया करता है, कुत्तेकी तरह वैसे मनुष्यका ज्ञान और धर्म्म नष्ट होता है। परोक्षमें निन्दा करनेवाला मनुष्य यदि सैकड़ों पुरुषोंको दान करे, तथा होम करे, तो उस ही समय वह सब निष्फल होजाता है; इससे बुद्धिमान पुरुष सदा वैसे पापी साधुताहीन पुरुषोंको कुत्तेके मांसकी तरह त्याग करें। जो दुष्टात्मा महाजनोंके निकट दूसरेकी निन्दा करते हैं, वे सर्पकी तरह ऊंचा फन दिखाके अपने दोषोंको प्रकाशित किया करते हैं। जो बुद्धिहीन पुरुष निज कर्म्मको करनेवाले खलके प्रतिकार करनेकी इच्छा करते हैं, वह इस प्रकार दुःखमें पड़ते हैं, जैसे गधा अग्निपुञ्जमें प्रवेश करता है। जो पुरुष दूसरेकी निन्दा करनेमें सदा रत रहता है, वह मनुष्यके आकारमें कुत्तास्वरूप है। चिल्लानेवाले उन्मत्त हाथी और अत्यन्त भयङ्कर कुत्तेकी तरह उस नीच पुरुषको परित्याग करना चाहिये। जो पुरुष अधीर क्षेपित मार्गमें वर्त्तमान और इन्द्रिय दमन तथा विनयसे विरत होता है, उस अविरती सदा अनैश्वर्य्यकामी पापबुद्धि पापी मनुष्यको धिक्कार है। नीच लोगोंके कुछ वचन बोलनेपर यदि साधु पुरुष उसका उत्तर देवें, तो उन्हें उत्तर देनेसे निवारण करना उचित है; क्योंकि उसके उत्तर देनेसे आर्त्त होना पड़ता है। स्थिर बुद्धि-वाले पुरुष ऊंचे पदवाले पुरुषोंके मीतोंके सहित वार्त्तालाप करनेकी भी निन्दा किया करते हैं। मूढ़ पुरुष क्रुद्ध होनेपर चपेटाघात करता धूलि वा तृण फेंकता अथवा दांत निकालके विभीषिका प्रदर्शित किया करता है; नृशंस तथा मूर्खके कोपित होनेपर ये ही सब कार्य्य प्रसिद्ध हैं। जो मनुष्य सभाके बीच अत्यन्त दुष्टचित्तवाले दुर्ज्जनोंकी की हुई निन्दा सहन करते और इस दृष्टान्तका सदा पाठ करते हैं; उन्हें कोई अप्रिय वचन नहीं प्राप्त होता।

११४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान् पितामह! आपको मेरा यह महत् संशय दूर करना होगा। आप हमारे कुलकी रक्षा करनेवाले हैं। हे तात! आपने नीचकर्म्म करनेवाले दुष्टात्मा पुरुषोंके विषयमें ऐसे वचन कहे। इस ही वास्ते जाहिर करता हूं, कि जो राजतन्त्रके हितकारी और जिससे वंशको सुख प्राप्त होता तथा जो वर्त्तमान और भविष्यकालमें कुशलकी वृद्धि करनेवाला हुआ करता है; जो पुत्र पौत्र आदि क्रमसे चले आते हों, जो राज्यकी बढ़ती करनेवाला हो खानेपीने और शरीरके विषयमें जो हितकर होवे, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये। जो राजा अभिषिक्त होकर राज्यके बीच मित्रोंमें घिरके सुहृदोंसे युक्त होवे वह किस प्रकार प्रजाको प्रसन्न करे? जिसे असत् विषयोंमें अनुराग, प्रीति और प्रबल आसक्ति, तथा इन्द्रियोंको वशमें न करनेवाले असज्जनोंमें अभिलाष होती है; उसके संसर्गमें उत्पन्न हुए सेवक लोग

गुणरहित होजाते हैं और वह राजा सेवकोंके बलसे प्राप्त हुए धनके जरिये गौरवयुक्त नहीं होता। मैं इस ही सन्देहसे युक्त होरहा हूं, आप बुद्धिमें बृहस्पतिके समान हैं, इससे इस दुःखसे जानने योग्य सब राज्य-धर्म्मको मेरे समीप कहनेमें आप ही उपयुक्त हैं। हे पुरुष-श्रेष्ठ! आप हमारे वंशके हित करनेमें रत हैं, आप ही सब विषयोंको कहते हैं, और महा-बुद्धिमान विदुर भी हम लोगोंसे सत्कथा कहा करते हैं। आपके समीप वंश और राज्यके हितकर वचन सुनके मैं अमृत पानकी तरह तृप्त होकर सुखसे शयन किया करता हूं। सन्निकृष्ट सेवक कैसे गुणोंसे युक्त होवें और किस प्रकारके सेवकोंके जरिये संसारयात्रा विहित होगी। सेवकोंसे रहित राजा अकेले कभी राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते, सत्वंशमें उत्पन्न हुए सब लोग इस राज्यकी इच्छा किया करते हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! अकेले राज्यकी शासन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है। हे तात! सहायहीन राजा धन प्राप्त करने वा प्राप्त हुए धनको सदा रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होते। जिसके सब सेवक ज्ञान विज्ञानके जान-नेवाले, हितैषी सत्कुलमें उत्पन्न हुए और कोम-लता-युक्त हैं, वही राज्य फलभोग करता है। जिसके मन्त्री उत्तम कुलवाले और घूस आदिसे अभेद, सहवास निष्ठ राजाके चति दिखानेवाले साधु, सम्बन्ध युक्त ज्ञानके जाननेवाले, अनागत विधाता, कालज्ञानके जाननेवाले होते हैं; और जो बीते हुए विषयोंके वास्ते शोक नहीं करते, वेही राज्यफल भोग करते हैं। जिसकी प्रजा शान्त नहीं होती, सदा प्रसन्न क्षुद्रता हीन और सत्मार्गको अवलम्बन करती है, वह राजा ही राज्यभोगी होता है। कोषको बढ़ानेवाले आप्त और सन्तुष्ट पुरुषोंसे जिसके खजानेकी सदा बढ़ती होती है, वही राजा उत्तम है। पवित्र सञ्चय उसके अनन्तर घूस आदिसे अभेद लोभरहित और विश्वासी मन्त्रियोंसे जिसकी धान्य आदि सामग्रीके जरिये सब लोग प्रतिपालित होते हैं, वह राजा अनेक गुणोंसे युक्त होता है। जिसके नगरमें व्यवहार कार्य्य अर्थात् वादी प्रतिवादियोंके विवादोंका निर्णय हुआ करता है और उन लोगोंको अपराधके मुताबिक दण्ड दिया जाता है मस्तकमें लिखे हुए निदर्शनके अनुसार वह राजा ही धर्म्म फलभागी होता है। राजधर्म्मको जाननेवाला जो राजा विचारके मनुष्योंको संग्रह करता है और सन्धि, विग्रह, यान, आसन द्वैध और समाश्रय इन षड्वर्गोंको प्रतिग्रह करता है, वही धर्म्म फल भोग किया करता है।

११५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं; यह सज्ज-नोंसे आचरित लोक समाजमें सदा परम प्रमाण स्वरूप है। तपोवनमें जामदग्न्य परशु-रामके समीप ऋषियोंने जैसा कहा था, उसे इस वक्ष्यमाण विषयके सहित मैंने सुना था। मनुष्य-सञ्चारसे रहित किसी जङ्गलके बीच फल मूल अहार करनेवाले नियममें निष्ठावान जितेन्द्रिय एक ऋषि-वास करते थे। वह दीक्षा दमसे युक्त, शान्त, स्वाध्याय रत, पवित्र, उप-वासके कारण शुद्धचित्त और सदा सतोगुण अवलम्बन करके रहते थे। उस बुद्धिमानके बैठे रहनेपर सब प्राणी उनका सद्भाव देखके उनके समीप जाते थे। सिंह, बाघ मतवाले हाथी, द्वीप नाम बाघ, गैंडा भालू और इसके अतिरिक्त जो सब भयानक रूपवाले जन्तु थे, वे रुधिर पीनेवाले सब जीव उनसे कुशल प्रश्न करते और सब कोई शिष्यकी तरह नम्रभावसे उस ऋषिके प्रियकार्य्योंके करनेमें प्रवृत्त होते

थे। ऊपर कहे हुए जानवर ऋषिके साथ सुख-प्रश्न करके यथा योग्य स्थानों पर गमन करते थे, उनके बीच एकही पलुआ कुत्ता उस महामुनिको छोड़के नहीं जाता था। हे महा बुद्धिमान! वह भक्त सदा अनुरक्त, उपवाससे कृषित दुर्ब्बल फल-मूल जलाहारी, शान्त शिष्टाकृतिके समान कुत्ता उस बैठे हुए महर्षिके चरण पर मनुष्यकी तरह गिरा और अत्यन्त स्नेहबद्ध होने लगा। अनन्तर मांसभक्षी महाबली स्वार्थ लाभके वास्ते अत्यन्त सन्तुष्ट क्रूर स्वभाववाला शार्दूल वहां पर उपस्थित हुआ। वह प्यासा बाघ जीभ निकालके और पूंछ खड़ी करके क्षुधासे पीड़ित होकर उस कुत्तेके मांसको भक्षण करनेकी इच्छा कर सुख चाटके उसको ओर आने लगा। हे राजन्! जीनेकी इच्छासे उस कुत्तेने मुनिसे जैसा वचन कहा था, उसे सुनो। महाराज! कुत्ता बोला, हे भगवन्! यह कुत्तोंका शत्रु तेंदुआ मुझे भक्षण करनेकी इच्छा करता है। हे महामुनि! आपकी कृपासे जिस प्रकार इससे मुझे भय न होवे, हे महाबाहो! आप वैसा ही करिये; आप सर्व्वज्ञ हैं, इसमें सन्देह नहीं है। ऐश्वर्य्य युक्त सब जीवोंकी बोली और भावके जाननेवाले वह मुनि उसके भयका कारण मालूम करके कहने लगे।

मुनि बोले, हे बच्चा! तुम बाघसे मृत्युके वास्ते कुछ मत डरो; तुम निज रूपको त्यागके बाघ बनो। अनन्तर वह कुत्ता सुवर्णके समान आकृतिसे युक्त विचित्र अङ्गवाला शार्दूल हुआ उसके सब दांत बड़े बड़े होगये; तब वह निर्भय होकर वनके बीच स्थित हुआ। अनन्तर बाघ उसे अपने समान पशु देखके उसके साथ कुछ विरुद्ध आचरण न करके क्षणभरमें वहांसे चला गया। अनन्तर महाभयङ्कर विकराल शरीरसे युक्त, रुधिर लालसासे सुख चाटे हुए भूखा शेर उस दीपीके समीप आने लगा। वह दीपी वनवासी दंष्ट्री भूखे शेरको देखके जीवन रक्षाकी इच्छासे ऋषिके शरणमें गया, ऋषि सहवासके कारण उसपर प्रीति करते थे; इस ही कारण उस दीपीको उसके शत्रुओंसे भी बलवान शेर बना दिया। महाराज! अनन्तर शेरने उसे निज जाति देखके नहीं मारा। कुत्ता उस समय व्याघ्रत्वको प्राप्त होके बलवान हुआ और मांस भोजन करने लगा, तब उसे फल मूल भोजन करनेमें रुचि न रही। महाराज! मृगराज जैसे सदा वनवासी जीवोंको भक्षण करनेकी इच्छा करता है, वह शेर भी उस समय वैसा ही हुआ।

११६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह शेर कुटीके समीप निवास करते हुए मृगोंको मारके उनके मांससे तृप्त होकर शयन कर रहा था, उसही समय उदय हुए बादलके समान एक मतवाला हाथी उस स्थान पर उपस्थित हुआ। उस हाथीका गण्ड-स्थल प्रभिन्न होके मद झर रहा था दोनों कुम्भ बहुत बड़े थे और उसके शरीरमें पद्मचिन्ह विद्यमान था। उस दोनों विशाल दांतोंसे युक्त, अत्यन्त ऊंचा बड़ा शरीर और बादलके समान गम्भीर शब्द करनेवाला बलगर्व्वित मतवाले हाथीको आते देखके वह बाघ हाथीके भयसे डरके उस ऋषिके शरणमें गया। अनन्तर ऋषि सत्तमने उस बाघको हाथी बनाया। असल हाथी उस बाघको महामेघके समान हाथी होते देखके भयभीत हुआ। अनन्तर वह बाघ शल्लकी तथा कमल वनमें पद्मरेणु विभूषित और मदयुक्त होकर घूमने लगा। ऋषिकी कुटीके समीप रहके हाथीको इधर उधर घूमते हुए बहुत समय बीत गया। अनन्तर पहाड़की कन्दरामें रहनेवाले लालवर्णवाली केशरसे युक्त हाथियोंके कुलको नाश करनेवाला एक सिंह

उस स्थान पर आया। हाथी उस सिंहको आते देख उसके भयसे डरके ऋषिकी शरणमें गया। अनन्तर मुनिने उसे सिंह बनाया। तब उसने समान जातिके सम्बन्धके कारण वनके सिंहकी पर्व्वाह न की, उसे सिंह होते देखकर वनका सिंह भयभीत होकर चला गया। नकली सिंह उस महावनके बीच मुनिके आश्रमके समीप वास करनेलगा। उसके भयसे दूसरे पशु भयभीत होके जीवनकी इच्छासे तपोवनके निकट भी नहीं आते थे। किसी समय सब प्राणियोंका नाशक, रुधिर पीनेवाला अनेक प्राणियोंसे भयङ्कर आठ पांव, ऊर्द्ध नेत्रवाला वनवासी बलवान शरभ उस सिंहको संहार करनेके वास्ते मुनिके आश्रममें उपस्थित हुआ। हे शत्रुनाशन! मुनिने उस समय सिंहको अत्यन्त बलवान शरभ बनाया। जङ्गली शरभ मुनिके प्रचण्ड बलसे युक्त शरभको अपने अगाड़ी देख, शीघ्रताके सहित वनसे भाग गया। वह कुत्ता उस समय मुनिके जरिये शरभत्व प्राप्त करके उनके निकट सुखपूर्व्वक समय बिताने लगा। हे राजन्! अनन्तर सब पशु उस शरभके भयसे डरके और जीवन रक्षाके लिये यत्नवान होकर दशों दिशाकी ओर दौड़ने लगे। शरभ भी प्रतिदिन प्राणियोंके वधमें रत हुआ, इससे मांसके स्वादसे मोहित होकर फल मूल भोजन करनेकी इच्छा नहीं करता था। कुछ दिनोंके अनन्तर अकृतघ्न स्वयोनिज शरभ लोहू पीनेकी इच्छासे अत्यन्त मुग्ध होकर मुनिको मारनेकी अभिलाष की। तब वह महाबुद्धिमान मुनि तप बल और ज्ञाननेत्रसे उसकी दुष्ट अभिलाषा जान गये और विदित होने पर उस कुत्तेसे कहने लगे।

मुनि बोले, तू पहिले कुत्ता था, मेरे तपोबलसे तेंदुआ हुआ, तेंदुएसे घोर घोर बाघ बना; बाघसे मद चूनेवाला मतवाला हाथी हुआ। हाथीसे सिंह हुआ; अन्तमें सिंहसे फिर बल युक्त शरभत्व प्राप्त किया। मैंने तुझ पर प्रीति करके क्रमसे तुझे अनेक तरहसे बढ़ाया किया, परन्तु तेरा उन कुलोंके साथ सम्बन्ध नहीं हुआ; तू अपने कुलके सम्बन्धको त्याग न सका। रे पापी! तू जब मुझे पापरहित जानके भी मारनेकी इच्छा करता है, तब तू आत्मयोनिको प्राप्त होकर कुत्ता ही होवेगा। अनन्तर मुनि-द्वेषी दुष्टचित्त प्रकृत मूर्ख शरभ ऋषिके शापसे फिर पहिले रूपको प्राप्त हुआ था।

११७ अध्याय समाप्त।

वह कुत्ता प्रकृतिस्थ होकर परम दीनदशासे ग्रस्त हुआ और ऋषिने उस पापात्माको हुङ्कारके जरिये उस तपोवनसे बाहर किया। इसी तरह बुद्धिमान राजा सत्य, पवित्रता सरलता, प्रकृति सत्य, श्रुतचरित्र कुल, इन्द्रियनिग्रह, दया, बलवीर्य्य प्रश्रय और क्षमा मालूम करके जो सेवक जिस कार्य्यके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्यपर नियुक्त करे। बिना परीक्षा किये मन्त्री नियुक्त करना राजाको उचित नहीं है। जो राजा अकुलीन मनुष्योंसे घिरता है, वह कभी सुखी नहीं होसकता। सत्कुलोंमें उत्पन्न हुए मनुष्य राजासे निरपराधमें ही विद्यमान होनेपर भी कभी पाप कार्य्यमें प्रवृत्त नहीं होते; और कुलहीन साधारण पुरुष साधुसंसर्गसे दुर्लभ ऐश्वर्य्य लाभ करके यदि निन्दित होवे, तो उस ही समय शत्रु होजाता है। कुलीन शिक्षित, बुद्धिमान, ज्ञानविज्ञानके जाननेवाले सब शास्त्रोंके अर्थ और तत्वके जाननेवाले सहनशील स्वदेशीय, कृतज्ञ, बलवान, क्षमाशील, दानशील, जितेन्द्रिय, लोभरहित, जो कुछ मिले उसहीमें सन्तुष्ट रहनेवाले, स्वामीके मित्रोंके ऐश्वर्य्य लिप्सु, मन्त्रणाकार्य्यके जाननेवाले, जिस देश वा जिस समयमें जैसा कार्य्य करना होता है, उस विषयके जान-

नेवाले प्राणी मात्रके चित्तको प्रसन्न करनेमें अनुरक्त, सदाचारयुक्त, सदायुक्त चित्त, हिंसासे आलसरहित, आचार युक्त, अपने विषयमें सन्धि-विग्रहके जाननेवाले, राजाके धर्म-अर्थ और कामके जाननेवाले पुर और जनपदवासी लोगोंके प्यारे, जो पर सेनाको भेद कर सकते हैं; उन लोगोंके सब व्यूहोंके तत्त्वज्ञ, सब सेनाको हर्षित करनेमें निपुण, इङ्गिताकार तत्त्वज्ञ, यात्रा यान विशारद, हाथियोंकी शिक्षामें निपुण, प्रगल्भ दानी, धर्मात्मा, बलवान, यथाउचित कार्य्य करनेवाले, पवित्र और पवित्र लोगोंसे घिरे हुए प्रसन्नमुख, सुखदर्शन, नायक, नीतिकुशल, गुण और चेष्टासे युक्त, सावधान, सूक्ष्म अर्थोंके जाननेवाले, मधुर और कोमल भाषासे युक्त धीर, शूर, महा ऐश्वर्य्यसे युक्त, और देशकालके अनुसार कार्य्य करनेवाले पुरुषको जो मन्त्री करता है, और उसकी अवज्ञा नहीं करता, चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान उस राजाका राज्य बढ़ता है। इन सब गुणोंसे युक्त शास्त्र जाननेवाले, प्रजापालनमें तत्पर, धर्ममें निष्ठावान राजाको सभी चाहते हैं। धीर, क्षमावान पवित्र, समयके अनुसार तीक्ष्ण पुरुषके प्रयत्नके जाननेवाले, सेना युक्त श्रुतवान, श्रोता, तर्कवितर्कके जाननेवाले, मेधावी, धारणायुक्त यथारीतिसे कार्य्योंको करनेवाले, धर्मात्मा सदा प्रिय वचन कहनेवाले, अपकारमें क्षमावान्, दानमें विघ्न न करनेवाले, श्रद्धालु सुखदर्शक, आर्त्तोंके अवलम्ब, सदा सेवक लोग जिसके हितमें रत रहते, अहङ्काररहित, सुख दुःख सहनेवाले, तुच्छ कार्य्योंसे रहित, सेवकोंसे कोई कार्य्य सिद्ध होनेपर उनके उपकार करनेवाले, भक्तोंके प्यारे, लोगोंको संग्रह करनेवाले, सावधानतायुक्त, सदा सेवकोंकी उपेक्षा करनेवाले क्रोधरहित, ऊंचे चित्तवाले, उचित दण्ड देनेवाले, निरपराधीको दण्ड न देनेवाले, धर्मकार्य्यके प्रचारक, दूतनेत्र, प्रजाकी रक्षामें तत्पर और सदा धर्म-अर्थमें कुशल; ऐसे गुणोंसे युक्त राजा सबके ही अभिलषित होते हैं। हे नरनाथ! राज्य धारणके सहायस्वरूप उत्तम पुरुष-गुणोंसे परिपूरित योद्धाओंको भी खोजना होता है, जो राजा समृद्धिकी इच्छा करे, उसे योद्धाओंकी अवमानना करनी उचित नहीं है। जिस राजाके युद्धमें निपुण, कृतज्ञ, शास्त्र जाननेवाले, धर्मशास्त्रमें रत, पदातियोंसे घिरे हुए निर्भय गजसवार, रथी, घुड़सवार अस्त्रविद्यामें निपुण योद्धा लोग वशमें रहते, हैं यह भूमण्डल उसके हाथके नीचे विलास करता है। जो राजा सब वस्तुओंके संग्रह करनेमें सदा आग्रह युक्त, उद्योगी और मित्रोंसे परिपूरित रहता है, वही राजसत्तम है। हे भारत! संगृहीत मनुष्य और सहस्र घुड़सवार वीरोंके जरिये इस समस्त पृथ्वीको जय किया जा सकता है।

११८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, जो राजा इसी भांति कुत्तेके समान सेवकोंको निज निज स्थानों तथा कार्य्य विशेषमें नियुक्त करता है, वही राज्य फल भाग किया करता है। कुत्तेका सम्मान करके उसे निज स्थानसे ऊंचे स्थान पर नियुक्त करना उचित नहीं; कुत्ता निज स्थानसे उच्च पद पाके प्रमत्त होता है। स्वजाति गणयुक्त सेवकोंको निज कार्य्योंमें लगाना उचित नहीं है। जो राजा सेवकोंको उचित कार्य्य सौंपता है, वह सेवक गुणसे युक्त राजा श्रेष्ठ फलोंको भोग किया करता है। शरभको जगह शरभ, सिंहको जगह बलवान सिंह, बाघको जगह बाघ और तेंदुएके ही स्थानमें नियुक्त करना उचित है। जो सेवक जिस कर्म्मके योग्य हो, उसे उस ही कार्य्य पर नियुक्त करना उचित है; कर्म्म फलकी इच्छा करनेवाले सेवकोंको विपरीत रीतिसे नियुक्त करना उचित नहीं है।

जो बुद्धिहीन राजा प्रमाणको अतिक्रम करके उलटी रीतिसे सेवकोंको स्थापित करता है, वह प्रजाको प्रसन्न नहीं कर सकता। मूर्ख, क्षुद्र, बुद्धिहीन, इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले और अकुलीन मनुष्योंको नियुक्त करना गुणवान राजाका कर्त्तव्य नहीं है। साधु सद्‌वंशमें उत्पन्न हुए, ज्ञानवान निन्दारहित, अक्षुद्र, पवित्र और दक्ष पुरुष पारिपार्श्विक हुआ करते हैं। जो नम्र, कार्य्योंमें तत्पर, शुद्ध, शान्त, स्वाभाविक गुणोंसे रमणीय और पद पर रहके निन्दित नहीं होते, वेही राजाके बहिश्चर प्राणस्वरूप हैं। सिंहके समीप सिंह ही सदा अनुगत होगा, जो सिंह नहीं है, वह सिंहके साथ मिलनेसे सिंहके समान फल लाभ करता है। जो सिंह होकर कुत्तोंसे घिरा रहता है, और सिंह कर्म्म फलमें रत होता है, वह कुत्तोंसे उपासित होकर सिंहके फलको भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। हे नरनाथ! शूर, बुद्धिमान, बहुश्रुत और कुलीनोंके जरिये सब पृथ्वीको जय किया जासकता है। हे भृत्यवत्सल प्रबल! विद्याहीन, कोमलता रहित बुद्धिहीन अमहाधन सेवकोंको संग्रह करना राजाको उचित नहीं है। स्वामीका कार्य्यसिद्ध करनेमें तत्पर पुरुष बाणको तरह कार्य्यके भीतर प्रवेश करते हैं जो सब सेवक राजाके हितकारी हों, उनके विषयमे प्रिय वचन प्रयोग करना उचित है। राजाओंको प्रयत्नके सहित सदा कोषकी रक्षाकरनी उचित है, कोष ही राजाओंका मूल और वढ़ती करनेवाला हुआ करता है। तुम्हारा धान्यगृह बहुतसे अन्नकी राशिसे सदा परिपूरित और उत्तम सेवकोंसे सदा रक्षित रहे; तुम धन धान्यसे युक्त रहो। तुम्हारे सेवक सदा उद्योगी और युद्धके जाननेवाले होवें घोड़ोंके हांकनेके विषयकी निपुणता इस समय तुम्हें अभिलषित होवे है। हे कौरव नन्दन! तुम स्वजन और बान्धवोंके विषयोंको विचारते हुए मित्र तथा सम्बन्धियोंसे युक्त होके पुरकार्य्यके हितका अन्वेषण करो। हे तात! यही कुत्तोंकी उपमासे युक्त प्रजाकी विषयमें तुम्हें जैसी नैष्ठिक बुद्धि स्थापित करनी होगी, उसे मैंने वर्णन किया; फिर अब क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

११९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आपने राजधर्म्मार्थोंके जाननेवाले पहिले राजाओंके आचरित बहुतसे राजवृत्तका वर्णन किया है, वह सब पूर्व्वदृष्ट साधुसम्मत राजधर्म्म जिसे आपने विस्तार पूर्व्वक कहा है,—हे भरतश्रेष्ठ! उसे संक्षिप्त करके जो धारण किया जा सके, उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, महाराज! सब जीवोंकी रक्षा करनी ही क्षत्रियधर्म्म है, यही सबसे श्रेष्ठ है, जिस प्रकार उनकी रक्षा करनी होती है, उसे सुनो। सांपोंको खानेवाला मोर जैसे विचित्र-रूपको धारण करता है, वैसे ही धर्म्मज्ञ राजा अनेक तरहके रूप धारण करे। क्रूरता, कुटिलता, अभयदान, सत्य और सरलता इन सबके मध्यवर्त्ती होकर जो सतोगुणका अवलम्बन करता है, और वही राजा सुखी होता है, जिस विषयमें जो हितकर होता है, वही उस समयका रूप है अर्थात् दण्डके समय क्रूरता और अनुग्रहके समय शान्त्वना दिखावे, क्यों कि अनेक रूपधारी राजाके सूक्ष्म विषय भी नष्ट नहीं होते। जैसे शरदकालमें मोर मूक हुआ करता है, वैसे ही राजा मौनावलम्बन करके सदा मन्त्रणा गोपन करे; श्रीमान मधुर वचन बोलनेवाला और शास्त्र विशारद होवे। जलके झरनेके समान मन्त्रभेद आदि आपदोंके द्वारपर सदा सावधान रहे; पर्व्वतके समीप वर्षाके जलसे उत्पन्न हुई नदीके जल समान

लिये ब्राह्मणोंके निकट पूर्ण रीतिसे आसरा ग्रहण करे; अर्थ कामसे युक्त राजा धर्मध्व-जोंके समान शिखा धारण करे अर्थात् योग्यता चिन्ह क्रूरता आदि प्रदर्शित करे। राजा सदा दण्ड उद्यत करके प्रजा-पालनमें रत रहे; जैसे लोग ऊखको काटके पेरकर रस ग्रहण करते हैं, वैसा न करके जैसे बड़ेवृक्ष ताड़ और खजूर आदिकी रक्षा करके उनके रसको ग्रहण किया जाता है, राजा वैसे ही प्रजा समूहके आय व्ययको देखकर उनकी रक्षा करके उनसे धन ग्रहण करे।

राजा अपने पक्षके लोगोंके साथ शुद्ध व्यवहार करे और विरोधियोंके भूमिमें उत्पन्न हुए शस्य आदिकोंको घोड़े आदिकोंको चलाके नष्ट करावे, सहायोंसे युक्त होकर युद्धके लिये यात्रा करे और अपनी विकलता देखके स्थिर रहे। बनमें फूल ग्रहण करनेकी तरह धन हरते हुए शत्रुओंके दोषोंको विस्तारित करे और मृगया आदिके छलसे दूसरेके राज्यमें जाके पराये पक्षको विवासित किया करे। दूसरेके किलेके स्वामीके साथ सन्धि करके देवता दर्शन आदि छलसे दूसरेके किलेमें अकस्मात् प्रवेश करके पर्व्वतके समान बड़े और उन्नत विरुद्ध राजाओंका विनाश करे; और आवश्यात छायाका आशा करके गुप्त रीतिसे रणकार्य्यका निवाहे। रात्रिमें मोरकी तरह प्रावृट् कालमें निर्ज्जन स्थानमें निवास करे; मयूरके गुणका अवलम्बन करके अदृश्य होकर अन्तःपुरमें भ्रमण करे, कभी तलत्राण परित्याग न करे, आप ही अपनी रक्षा करे; दूतोंके मालूम हुए स्थानोंमें धावा, कन्नको और रसोईमें आदि शत्रुओंसे भदित होनेपर अपनी ओर आते हुए विषादि रूप पाशको रोके। विष आदिके मालूम होनेमें कठिनता होने पर उस कपट-स्थानमें स्वयं जाके उसे नष्ट करे; विघ्न देनेवाले कुटिल क्रूर पुरुषोंका बध करे। स्थूल पक्ष अर्थात् सब सेनाके पक्ष-स्थानीय शिविर सम्बन्धीय वार-वनिता अर्थात् नट-नर्त्तक आदिको नष्ट वा मोरकी तरह दूर कर देवे, दृढ़ मूल सेवक और शूरपुरुषोंको स्थापित करे। सदा मयूरकी तरह निज इच्छानुसार बड़े कार्य्योंका आचरण किया करे। शरभ-समूह जैसे घने बनमें प्रविष्ट होके बनको पत्तोंसे रहित करते हैं, वैसे ही राजा सेनाके सहित मिलकर शत्रुराज्यको आक्रमण करनेमें प्रवृत्त होवे,। इसी भांति बुद्धिमान राजा मोरकी तरह निज राज्य पालन करे। बुद्धिसे आत्म-संयम अर्थात् इस प्रकार कार्य्य करना उचित है, ऐसा ही नियम करे; और दूसरेकी बुद्धिके अनुसार उस विषयका निश्चय करना योग्य है; शास्त्रमें कही हुई बुद्धि-शक्तिके जरिये आत्मगुणकी प्राप्ति होती है यही शास्त्रोंका प्रयोजन है। शान्त वचनसे दूसरेको विश्वास उत्पन्न करे और अपनी शक्ति दिखाता रहे, सब तरहसे बीते और अनागत विषयोंके विचारके जरिये ऊहापोह कौशलरूपी बुद्धि शक्तिसे कर्त्तव्य विषयोंके निश्चयका विचार करे। बुद्धिमान पुरुष सान्त्व-योग अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्यके प्रयोजक होवे और निगूढ़ बुद्धि और पुरुषके विषयमें उपदेशकी अपेक्षा न करे। जलमें डालनेसे जैसे गर्म लोहा उस ही समय शीतल होजाता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष बुद्धिशक्तिके जरिये बृहस्पतिके समान होके भी यदि निकृष्ट बात कहे अर्थात् अपनी निर्बुद्धित्व-प्रमादसे युक्त होवे, तब वे सदा युक्ति अवलम्बन करके निज भावके स्वास्थ्यकी इच्छा किया करे। राजा अपने वा दूसरेके आगमनके जरिये सब उपदिष्ट कार्य्योंकी जिज्ञासा करे। अर्थ विधानके जाननेवाले राजा कोमल स्वभाव और बुद्धिमान तथा शूरपुरुष अथवा दूसरे जो बलशाली होवें, उन्हें निज कार्य्योंमें नियुक्त करे। अनन्तर आयतात्म्यो जैसे सब स्वरोंको

अनुवर्त्तिनी होती है, वैसे ही वह उन लोगोंको निज निज योग्यतानुसार कार्य्योंमें नियुक्त रखकर सबका ही अनुवर्त्तन करे, धर्म्मके अनुसार विषयमें प्रिय आचरण करे। जिस राजाको प्रजासमूह 'ये हमारे हैं' ऐसा समझती है, वह पर्व्वतकी तरह अचल हुआ करता है। सूर्य्य जैसे बड़ी किरण मण्डलको प्रकाशित करता है, राजा वैसे ही कार्य्योंको सिद्ध करते हुए प्रिय और अप्रियको विषयके समान समझ सब प्रकारसे केवल धर्म्मकी रक्षा करे। जो लोग कुलके स्वभाव, देश विशेष करके धर्म्मज्ञ, मीठे वचन बोलनेवाले, मध्य अवस्था, निर्दोष, हित विषयमें रत, सावधान, लोभरहित, शिक्षित, जितेन्द्रिय, धर्म्ममें निष्ठावान, धर्म्मज्ञ और अर्थ रक्षा करनेमें समर्थ हैं, उन्हीं पुरुषोंको राजा सब कार्य्योंमें नियोजित करे। राजा इसी प्रकार दूतोंके जरिये सब वृत्तान्त मालूम करे और सन्तुष्ट होकर इसी भांति आगम तथा जातिके विषयोंके जाननेमें नियुक्त होके भलीभांति सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे। जिसके क्रोध और हर्ष निष्फल नहीं होते और जो स्वयं सब कार्य्योंको देखा करते हैं, तथा आत्मप्रत्यय ही जिसका खजाना है, उस राजाके पक्षमें पृथ्वी ही वसुदात्री हुआ करती है। जिसकी कृपा स्पष्टरीतिसे मालूम होती है, और जो यथार्थ जानके निग्रह करते हैं, और जो राजा आत्म-रक्षा करते हुए राज्यकी रक्षा किया करते हैं, वेही राजधर्म्मके जाननेवाले हैं। उदय होते हुए सूर्य्य जैसे किरण मण्डलके जरिये मालूम होता है, वैसे ही राजा सदा निज राज्यको देखता रहे, और राज्य तथा पर राज्य विष-यक समाचारोंको मालूम करे और आप निज बुद्धिके प्रभावसे सब कार्य्योंका अनुष्ठान करे। राजा धन प्राप्त करनेके समय धन संग्रह करे और अर्थवत्ताके विषयको किसीके समीप प्रका-शित न करे; बुद्धिमान राजा प्रति दिन गऊ दुहनेकी तरह पृथिवीसे अन्न दुहा करे। जैसे भौंरा यथा क्रम फूलोंसे मधु ग्रहण करता है; वैसे ही राजा धीरे धीरे द्रव्य ग्रहण करके सञ्चय करे। शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान राजा सञ्चय करनेसे जो धन बाकी रहे, उसे ही धर्म्मार्थ और कामार्थमें व्यय करे। सञ्चित अर्थको कभी व्यय न करे, धन थोड़ा होनेपर भी उसे अग्राह्य न करे और शत्रुओंको भी अवज्ञा करनी उचित नहीं है। बुद्धिसे अपनेको समझावे और निर्बुद्धि पुरुषोंका विश्वास न करे। सन्तोष, दक्षता, सत्य, बुद्धि, देह, धीरज, वीरता, देश और समयमें अप्रमाद, थोड़े वा बहुत धनके विशेष रूपसे वृद्धि विषयमें ये आठ विषय उद्दीपक हुआ करते हैं। अग्नि थोड़ी होनेपर भी घृतसे युक्त होनेपर बढ़ती है, एक बीजसे सहस्र अंकुरे उत्पन्न हुआ करते हैं, इससे बहुतसे आय व्ययके विषयको पूरी रीतिसे सुन-कर थोड़े धनको कभी अवज्ञा न करे। प्राचीन शत्रुके बालक होनेपर भी उसे बालक समझना उचित नहीं है, क्यों कि वह विपक्षियोंको अत्यन्त प्रमत्त देखनेसे ही नष्ट करता है। समय पर अन्य पुरुष उसके मूलको हरण न करें; इससे समयके जाननेवाले पुरुष ही राजाओंके बीच वरिष्ठ हैं। शत्रुकी कीर्त्ति हरण करे और उसके धर्म्ममें बाधा देवे और धन विषयक उसके कार्य्योंमें अत्यन्त ही विघ्न किया करे। वैर कर-नेवाला शत्रु निर्बल हो, वा बलवान ही होवे, ऊंचे चित्तवाले मनुष्य शत्रुसे किसी प्रकार हीन न होवें। क्षय, वृद्धि, पालन और सञ्चयका विचार करके बुद्धिमान राजा ऐश्वर्य्य काम और विजयकी इच्छावाले राजाके एकत्र मिलते देखके उसके साथ सन्धि करे; इससे बुद्धिमान पुरुषका आश्रय करना राजाको अवश्य उचित है। तीक्ष्ण बुद्धिवाला पुरुष बलवान पुरुषको नष्ट कर सकता है, बढ़ा हुआ बल बुद्धिके जरि-येसे ही प्रतिपालित हुआ करता है। बढ़े हुए

वैरीको बुद्धिबलसे नष्ट किया जाता है, इससे बुद्धिके अनुसार जो कार्य्य किया जाता है वह श्रेष्ठ है; दोष रहित और पुरुष सब काम्य विषयोंकी अभिलाष करके थोड़े बलसे ही उसे प्राप्त करते हैं; और जो अपनेको यासमान मनुष्योंसे युक्त होनेकी इच्छा करते हैं, वे अल्पमात्र कल्याण पात्रको पूर्ण नहीं कर सकते, इससे राजा प्रजाके विषयमें प्रीतियुक्त होकर सबके निकटसे लक्ष्मीके मूल धनको ग्रहण करे प्रजाको बहुत समय तक पीड़ित करके बिजली गिरनेको तरह उसके ऊपर पतित न होवे। उद्योगसे ही विद्या, तपस्या और बहुतसा धन होसकता है, वह उद्योग बुद्धिके वशमें होकर देहधारी पुरुषोंमें निवास करता है, इससे सदा उद्योग करनेमें यत्नवान होना उचित है। जिसमें बुद्धिमान मनस्वी लोग, सुरराज विष्णु और सरस्वती सदा वास करती हैं, और सब प्राणी सदा जिसमें स्थित रहते हैं। विद्वान् पुरुष उस शरीरको कभी अवज्ञा न करे। लोभी पुरुषको सदा दानसे वशमें करे, लोभी पराया धन पाके कभी तृप्त नहीं होता। सुख भोगनेमें सभी लोभी हुआ करते हैं; जो पुरुष धनहीन होता है, वह धर्म और कामको त्याग करता है। लोभी मनुष्य दूसरेके धन, भाग, पुत्र, स्त्री और समृद्धि सबकी ही इच्छा करता है। इस संसारमें लोभी पुरुषके विषयमें सब दोष ही सम्भव होसकते हैं; इससे राजा कभी लोभी पुरुषके विषयमें स्नेह प्रकाशित न करे; नीच पुरुषको देखते ही दूर करे; बुद्धिमान पुरुष शत्रुओंके सब कार्य्यों तथा समस्त विषयोंको नष्ट करें। हे पाण्डुपुत्र! ब्राह्मण मण्डलोंमें विज्ञान युक्त मन्त्रोंकी रक्षा करनी होगी, जो राजा विश्वासी और कुलीन है, वह सबको वश करनेमें समर्थ होता है। हे नरनाथ! यही सब मैंने विधिपूर्व्वक राजधर्मको संक्षेपरीतिसे वर्णन किया तुम इसे बुद्धिशक्तिके जरिये धारण करो। जो पुरुष गुरुका अनुसरण करते हुए यह सब धर्म हृदयमें धारण करते हैं, वेही पृथ्वीको पालन करनेमें समर्थ होते हैं। जिसे राजाके अनीतिके कारण हठ प्रणीत दैवसे प्राप्त हुआ सुख विधिपूर्व्वक दीखता है, उसकी गति तथा उसे श्रेष्ठ राज्य सुख प्राप्त नहीं होता। सन्धि-विग्रह आदि विषयोंमें सावधान राजा धन युक्त बुद्धि तथा शील सम्पन्न युद्धमें दुष्ट-पराक्रमी शत्रुओंको देखकर शीघ्रताके सहित उनका वध करे। अनेक क्रियासे मार्गके सहारे उपायको देखे, अनुपायमें बुद्धि न लगावे; निर्दोष पुरुषोंमें भी जो पुरुष दोष देखता है, वह योग्य स्त्री बहुतसे धन-यशको भोग नहीं कर सकता, सुहृदोंको जानके प्रीतिकी प्रवृत्ति होने पर जब दो मित्र एक कार्य्यमें लगते हैं, उन दोनोंके बीच जो पुरुष बड़े भारको उठाता हैं, विद्वान् पुरुष उसही श्रेष्ठ मित्रकी प्रशंसा करते है। हे राजन्! मेरे कहे हुए इन सब राज-धर्म्मोंका आचरण करो, मनुष्योंका पालन करनेमें बुद्धि लगाओ; इससे अनायास ही पुण्यफल पाओगे, क्योंकि धर्म्म ही सब लोकोंकी जड़ है।

१२० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामहके जरिये यह सनातन राजधर्म वर्णित हुआ; अत्यन्त बृहत् दण्ड ही सबका नियन्ता है, क्यों कि दण्डसे ही सब विषय प्रतिष्ठित हो रहे हैं। देव, ऋषि, महानुभाव पितर, यक्ष, राक्षस और पिशाच लोग विशेष करके साध्य तथा तिर्य्यग् योनि आदि सब प्राणियोंके विषयमें सर्व्वव्यापी महातेजस्वी दण्ड श्रेष्ठ है, यह आपने कहा है। देवता असुर और मनुष्योंके सहित चराचर सब लोक ही दण्डमें आसक्त होरहे हैं। हे भरत प्रवर! इससे मैं इसे यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं, दण्ड किसे कहते हैं और वह कैसा है? उसका

हुए दण्ड ही भ्रमण किया करता है। असि, विशसन, धर्म, तीक्ष्ण, धर्मा, दुराधर, श्रीगर्भ, विजय, शास्ता, व्यवहार, सनातन शास्त्र, ब्राह्मण, मन्त्र, शास्ता, प्राग्वदतर, धर्मपाल, अक्षर, देव, सत्यग, नित्यग, अग्रज, असङ्ग, रुद्रतनय, मनु, ज्येष्ठ और शिवङ्कर है। हे युधिष्ठिर! दण्डके ये सब नाम वर्णित हुए। दण्ड ही भगवान विष्णु और दण्ड ही प्रभु नारायण है, सदा महत्, रूप धारण किया करता है, इस ही निमित्त महत् पुरुष शब्दसे पुकारा जाता है। ब्रह्मकन्या लक्ष्मी, वृत्ति, सरस्वती, जगद्धात्री दण्डनीति अर्थात् दण्डके सहित नीति ये सभी दण्ड स्वरूप हैं; इससे दण्डका विग्रह अनेक प्रकारका है! हे भारत! अर्थ, अनर्थ, सुख, दुःख, धर्माधर्म, बलाबल, दौर्भाग्य, भागधेय पुण्यापुण्य, गुणागुण, काम अकाम, ऋतु मास, दिन, रात्रि, क्षण, अप्रमाद, हर्ष, क्रोध, शम, दैव, पुरुषार्थ मोक्ष, भय, अभय, हिंसा, अहिंसा, तपस्या, यज्ञ, संयम, विष, अविष, अन्त, आदि, मध्य, कृत्य, सबका प्रपञ्चन, मद, प्रमाद, दर्प, दम्भ धैर्य, नीति, अनीति, शक्ति, अशक्ति, मान, स्तम्भ, व्यय, अव्यय, विनय विसर्ग, काल, अकाल, मिथ्या, ज्ञान, सत्य, श्रद्धा अश्रद्धा, क्लीवता, व्यवसाय, लाभ, हानि, जय, पराजय, तीक्ष्णता, मृदुता, मृत्यु, आगम, अनागम, विरोध अविरोध, कार्य्य, अकार्य्य, बलाबल, निन्दा, अनिन्दा, धर्म, अधर्म, अपत्रपा, अनपत्रपा, ह्री, सम्पद, विपद, पद, तेज सब कर्म, पाण्डित्य, वाक्यशक्ति और तत्त्व बुद्धिता; हे कौरव्य! इसी प्रकारकी इस लोकमें धर्मकी बहुरूपता हुआ करती है। लोकके बीच यदि दण्ड न रहे, तो लोग आपसमें एक दूसरेको प्रमथित करें। हे युधिष्ठिर! दण्डभयसे ही लोग आपसमें प्रहार नहीं करते। हे राजन्! दण्डसे वध्यमान प्रजा सदा राजाको वर्द्धित करती है इससे दण्ड ही परम आश्रय है। हे नरेश्वर! सत्यसे युक्त धर्म शीघ्र ही उन सब लोगोंको अवस्थापित करता है; सत्यका पक्षपाती धर्म ब्राह्मणमूर्त्ति स्वरूप है। धर्मयुक्त सब ब्राह्मण वेदयुक्त हुआ करते हैं। वेदोंसे ही यज्ञ उत्पन्न हुआ है, यज्ञ देवताओंको प्रीतियुक्त किया करता है; देवता लोग प्रसन्न होकर सदा इन्द्रकी स्तुति करते हैं, इन्द्र भी उन सब प्रजा समूहके ऊपर कृपा करके अन्नदान किया करते हैं, सब प्राणियोंका प्राण सदा अन्नसे ही प्रतिष्ठित है, इससे प्रजासमूह भी अन्नमें प्रतिष्ठित हैं और दण्ड इन प्रजासमूहके विषयमें जाग्रत रहता है, इस ही भांति प्रयोजनके अनुसार दण्ड क्षत्रियत्वको प्राप्त हुआ और दण्ड सदा सावधान अक्षय होके प्रजाको रक्षा करते हुए जाग्रत रहता है। ईश्वर, पुरुष, प्राण सत्व, चित्त, प्रजापति, भूतात्मा और जीव इन आठ नामोंसे दण्ड उक्त हुआ करता है। जो राजा बलसे युक्त, और धर्म व्यवहार, धर्म ईश्वर तथा जीव रूपसे पञ्चविध है; ईश्वरने उसे दण्ड और ऐश्वर्यदान किया है। हे युधिष्ठिर! सत्वंशमें उत्पन्न हुए धनशाली अमात्य, बुद्धि, ओजस्विता, तेज और देह इन्द्रिय, वृद्धि-सामर्थ्य वा अनन्तर श्लोकमें वक्ष्यमाण हाथी आदि आहार्य्य सब बल और राजाके कोष-वृद्धिका कारण है। हाथी, घोड़े, रथ, पदाति, नौका, अवैतनिक बोझा ढोनेवाले, देश विशेषमें उत्पन्न हुए वस्तु और भेड़के रोम आदिकोंसे बने हुए आसन आदि राजाओंके अष्टाङ्ग बलरूपसे वर्णित हुए हैं; अथवा रथी, गजपति, गजारोही, घुड़सवार, पैदल सेना, मन्त्री, चिकित्सक, भिक्षुक, प्राड्विवाक, ज्योतिषी, दैवचिन्तक, कोष मित्र, धान्य सब सामग्री और सप्त-प्रकृति राज्यको अष्टाङ्गयुक्त शरीर रूपसे समझे जाते हैं; परन्तु दण्ड ही राज्यकी आदि और दण्ड ही राज्यका कारण है। ईश्वरके ओरसे भयके सहित क्षत्रियोंके

निर्मित दण्ड प्रदत्त हुआ है, यह सब प्रिय अप्रिय सब स्वरूप दण्डके ही आधीन है। प्रजापतिके जरिये लोक रक्षाके वास्ते और स्वधर्म स्थापनके लिये, जिस प्रकार धर्म प्रदर्शित हुआ है, उस धर्मस्वरूप दण्डसे बढ़के राजाओंके वास्ते दूसरा कुछ भी पूजनीय नहीं है। स्वामीके विश्वाससे उत्पन्न और वादी, प्रतिवादीके जरिये प्रवर्त्तित व्यवहार, इस अन्यतरका अभ्युपगम जिसका लक्षण हित युक्त दीखता है, वह दण्डका भर्त्तृ-प्रत्यय लक्षण कहाता है। हे राजन्! परस्त्री गमन आदि दोषको निवृत्तिके वास्ते प्रायश्चित आदि जैसा दण्ड बेदाता वा वेद-प्रत्यय नामसे कहा जाता है; और कुलाचार युक्त व्यवहारमें मौल तथा अपर-दण्ड शास्त्रोक्त नामसे कहा जाता है। उन तीन प्रकारके दण्डके बीच पहिला दण्ड क्षत्रियके आधीन है; क्षत्रियोंमें दण्ड स्थान रहना अवश्य उचित है। हे नरेन्द्र-निष्ठ प्रत्यय लक्षणयुक्त दण्ड क्षत्रियोंको अवश्य जानना चाहिये। और परपक्ष खेपण तथा निज पक्ष साधनरूप व्यवहार दण्ड प्रत्यय दृष्ट और मनु आदि महर्षियोंसे रक्षित होनेपर भी वह वेदार्थ गोचर हुआ है। दूसरे दो व्यवहार धर्ममूलक हैं। वेदसे उत्पन्न हुए धर्मोंके, गुणदर्शी, कृतात्मा मुनियोंके जरिये धर्मके अनुसार धर्म प्रत्यय कहके वर्णित हुआ है। हे युधिष्ठिर! ब्रह्मोपदिष्ट व्यवहार प्रजासमूहकी रक्षा करता है, सत्य स्वरूप भूतिवर्द्धन व्यवहार ही तीनों लोकोंको धारण किये हैं। जो दण्ड नामसे कहाता है, उसे ही सनातन व्यवहार रूपसे देखा जाता है; व्यवहारसे जो दीखता है, वही वेद है; ऐसा निश्चय है, कि जो वेद है, और जो धर्म है, उसे ही सत्मार्ग जाने। पहिले समयमें पितामह ब्रह्मा प्रजापति हुए थे, वह देवता, असुर, राक्षस, मनुष्य और सर्पोंके सहित सब लोकोंकी सृष्टि करनेवाले हैं, इस ही कारण उनका भूतकर्त्ता नाम हुआ है। उस प्रजापतिसे ही यह भर्त्तृ-प्रत्यय लक्षण व्यवहार प्रवर्त्तित होता है;" उन्होंने इस व्यवहारका निदर्शन किया है, कि जो राजा निज धर्मोंके अनुसार प्रजा पालन करते हैं; उनके समीप माता, पिता, भाई भार्य्या और पुरोहित इन सबके बीच कोई भी अदण्ड्य नहीं है।

१२१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पुराने लोग इस दण्डकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। अङ्ग देशमें वसुहोम नामक एक विख्यात् राजा थे, वह महातपस्वी निज धर्मोंको जाननेवाले राजा भार्य्याके सहित पितरों और देवर्षियोंसे पूजित होकर मुञ्जपृष्ठमें गये थे। सुवर्णमय सुमेरुके निकट उस हिमालयकी शिखर पर जहां मुञ्ज वटके नीचे रामने जटा हरण की थी। हे राजेन्द्र! तभीसे व्रत करनेवाले, ऋषि लोग उस रुद्रसेवित प्रदेशको मुञ्जपृष्ठ कहा करते हैं। वह उस समय श्रुतिमय अनेक गुणोंसे युक्त होकर ब्राह्मणोंको अनुहार तथा देवर्षि समान हुए थे। किसी समय इन्द्रके सम्मानित सखा निर्भय चित्तवाले राजा मान्धाता उनके निकट उपस्थित हुए। मान्धाता वसुहोमको प्रकृष्ट तपसे युक्त देखकर विनीत भावसे उनके सम्मुख स्थित हुए। वसुहोमने भी राजा मान्धाताको पाद्य, अर्घ दिया और सप्ताङ्ग राज्यका कुशल अमङ्गल पूछने लगे। पहिले समयमें साधुओंके आचरणके यथावत् अनुयायी उस मान्धातासे वसुहोमने पूछा। हे राजन्! मैं आपका क्या कार्य्य करूं? हे कुरुनन्दन! राजसत्तम मान्धाता परम प्रसन्न होकर बैठे हुए महाबुद्धिमान वसुहोमसे कहने लगे।

मान्धाता बोले, हे नरसत्तम महाराज! आपने वृहस्पतिका सब मत अध्ययन किया है

और शुक्राचार्य्यके सब शास्त्रोंको भी आप जानते हैं; इससे दण्ड जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, मैं उसे जाननेकी अभिलाषा करता हूं। इस दण्डके पहिले क्या जाग्रत रहता है और क्या श्रेष्ठ करके वर्णित होता है? सम्प्रति दण्ड किस प्रकार क्षत्रियोंमें युक्त होकर स्थित होरहा है? हे महाबुद्धिमान्! आप मुझसे यही कहिये, मैं आचार्य्यका वेतन प्रदान करूंगा।

वसुहोम बोले, हे राजन्! प्रजासमूहके विनय रक्षाके निमित्त धर्म्म स्वरूप सनातन लोक संग्रहमें समर्थ दण्ड जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, उसे सुनो। सब लोगोंके पितामह भगवान ब्रह्माने यज्ञ करनेकी इच्छा करके अपने समान ऋत्विक किसीको न देखा। मैंने ऐसा सुना है, कि उस देव प्रजापतिने मस्तकके जरिये कई वर्ष पर्य्यन्त गर्भ धारण किया था; सहस्र वर्ष पूरा होनेपर उसके क्षुत होनेके समय वह गर्भ गिरा। हे शत्रुनाशन! उस ही गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक क्षुप नाम प्रजापति हुआ। हे महाराज! महानुभाव ब्रह्माके यज्ञमें वही ऋत्विक हुए थे। हे राजन्! प्रजापतिके उस यज्ञके आरम्भ होने पर हृष्टरूपका मुख्य कारण वह दण्ड अन्तर्द्धान हुआ। दण्डके अन्तर्द्धान होने पर प्रजा वर्णसङ्कर होने लगी, कार्य्य, अकार्य्य, भोज्य, अभोज्यका कुछ भी विचार न रहा। तब पेय और अपेय विषयोंमें विचार क्यों रहेगा; उस समय गम्य वा अगम्य कुछ भी न रहा, अपना धन और पराया धन समान हुआ; जैसे सारमेय मांसको हरण करते हैं, वैसे ही सब कोई आपसमें एक दूसरेके धनको हरनेमें प्रवृत्त हुए; बलवान लोग निर्ब्बलोंको मारने लगे; सब ही मर्य्यादा रहित होगये।

अनन्तर पितामह ब्रह्मा सनातन देव वरदाता महादेव विष्णुको पूर्ण रीतिसे पूजा करके बोले, हे केशव! इस विषयमें आपको कृपा करनी उचित है, जिससे प्रजा वर्णसङ्कर न होवे, आप वैसो ही उपाय करिये। अनन्तर देवसत्तम वह शूलधारी भगवान बहुत समय-तक विचार करके आपने ही आपनेको दण्ड रूपसे उत्पन्न किया; उससे धर्म्माचरणके कारण नीतिरूपी सरस्वती देवीने तीनों लोकमें विख्यात दण्डनीतिको उत्पन्न किया। शूलधारी भगवानने फिर कुछ देर ध्यान करके उसही दण्डकालके वास्ते एक एक पुरुषको अधीश्वर कर दिया। और सहस्र नेत्रवाले देवराजको देवताओंका ईश्वर किया; वैवस्वत यमको पितरोंकी प्रभुता दी; धन और राक्षसोंको अपने वशमें रखनेके वास्ते कुवेरके ऊपर भार अर्पण किया, सुमेरुको शैलपति और समुद्रको सरित्पति किया। जल और असुरोंके राज्यपर वरुणको प्रभुत्व करनेका भार दिया। मृत्युको प्राण और हुताशनको तेजका स्वामी बनाया। महानुभाव विशालाक्ष महादेव ईशानको रुद्र-गणका रक्षक और प्रभु कर दिया। वसिष्ठको ब्राह्मणों और अग्निको वसुओंका स्वामी बनाया सूर्य्यको तेज और चन्द्रमाको नक्षत्रोंकी प्रभुता दी। अंशुमानको लता समूहका ईश्वर किया और द्वादश बाहु कुमार स्कन्दको भूतोंके ऊपर राजत्व करनेकी आज्ञा दी। हे नरनाथ! संहार करनेवाले कालको सबका ईश्वर किया; शस्त्र, मृत्यु, रोग और भोजन मृत्युके ये चार विभाग सुख और दुःख सर्व्वदेवमय राजोंका राजा काल ही सबका ईश्वर है। शूलपाणि सब रुद्रगणोंके स्वामी हैं, ऐसे ही जन श्रुति है। महादेवने प्रजासमूहके स्वामी सब धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ उस ब्रह्माके पुत्र क्षुपको पहिले इस दण्डका रक्षक किया था। अनन्तर उस यज्ञके विधिपूर्व्वक पूर्ण होनेपर महादेवने उस दण्डका सत्कार करके धर्म्म रक्षक विष्णुके ऊपर उसका भार अर्पित किया, विष्णुने उसे अङ्गिराको प्रदान किया, मुनिसत्तम अङ्गिराने इन्द्र और मरीचिको,

मरीचिने भृगुको और भृगुने ऋषियोंको वह धर्म्मयुक्त दण्ड दान किया । ऋषियोंने लोकपालोंको और लोकपालोंने उसे क्षुपको दिया, अनन्तर क्षुपने आदित्य पुत्र मनुको उसे अर्पण किया श्राद्धदेवने सूक्ष्म धर्म्म-अर्थके कारणसे पुत्रोंको समर्पण किया। न्याय अन्यायको विचारके धर्म्मके अनुसार दण्ड विधान करना चाहिये; इच्छानुसार दण्ड देना उचित नहीं है। दुष्ट पुरुषोंके निग्रह करनेको दण्ड कहते हैं, सुवर्ण आदि दण्ड लोगोंका बिभीषिका दिखाने मात्रके लिये होता है; शरीरकी अङ्ग हीनता और वधका दण्ड अल्प कारणसे नहीं होता। शारीरिक दण्ड ऊंचे स्थान परसे गिरना रूपी देह त्याग तथा निजदेशसे निकाल देना ये विशेष दोषके दण्ड हैं। सूर्य्य पुत्र मनुने प्रजासमूहकी रक्षाके वास्ते उस दण्डको यथा रीतिसे दान किया था; यह दण्ड ही प्रजाओंका पालन करते हुए जाग्रत रहता है। भगवान इन्द्र सदा जाग्रत होरहे हैं, इन्द्रसे विभावसु अग्नि जाग्रत हैं, अग्निसे वरुण जाग्रत हैं; प्रजापतिसे विनयात्मक धर्म्म निरन्तर जाग्रत रहता है; धर्म्मसे ब्रह्मपुत्र व्यवसाय, व्यवसायसे तेज प्रजा पालन करते हुए जाग्रत है; तेजसे औषधी, ओषधियोंसे पर्व्वत, पर्व्वतोंसे रस और रस गुण जाग्रत रहते हैं; उससे निर्ऋतिदेवी जागरित होती है, निर्ऋतिसे ज्योतिर्गणसे जाग्रत हुआ करते हैं; ज्योतिर्गण वेद प्रतिष्ठित होता है, उससे प्रभु हयशिरा जाग्रत होते हैं, उनसे अव्यय प्रभु पितामह ब्रह्मा जाग्रत हुआ करते हैं; पितामह भगवान शिवस्वरूप महादेव जागरित होते हैं, शिवसे विश्वदेव और विश्वदेवोंसे ऋषि लोग; ऋषियोंसे भगवान चन्द्रमा, चन्द्रमासे सनातन देवता लोग और देवताओंसे जगत्के बीच ब्राह्मण लोग जाग्रत रहते हैं; दूसे धारण करी, ब्राह्मणोंसे क्षत्रिय लोग धर्म्मके अनुसार सब लोगोंकी रक्षा करते हैं; क्षत्रियोंसे स्थावर जङ्गम आदि सब प्रजा इस लोकमें जाग्रत ही रही है; और दण्ड उन प्रजा समूहके ऊपर जागरित होके निवास करता है। पितामहकी समान प्रभावसे युक्त दण्ड सबको ही संग्रह करता है; हे भारत! पहिले, मध्य और अन्तमें जाग्रत रहता है। सब लोकोंके ईश्वर महादेव प्रजापति देवोंके देव सर्व्वमय कपर्दी शङ्कर रुद्र भव स्थाणु उमापति प्रभु शिव सदा जागरित रहते हैं, आदि, मध्य और अन्तमें इसी भांति दण्ड विख्यात है। धर्म्म जाननेवाला राजा यथारीतिसे इस दण्डकी धारण करते हुए वर्त्तमान रहे।

भीष्म बोले, हे भारत! जो मनुष्य इस वसुहोमके मतको सुनते और सुनकर पूर्णरीतिसे अनुष्ठान करते हैं, वे समस्त काम्य विषयोंको प्राप्त करते हैं। हे राजन्! यही तो दण्डका सब विषय मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया; दण्ड ही धर्म्मसे आक्रान्त सब लोकोंका नियन्ता है।

१२२ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे तात! धर्म्म, अर्थ और कामके निश्चयको सुननेकी इच्छा करता हूं, लोकयात्रा पूर्णरीतिसे किसमें प्रतिष्ठित हुआ करती है? धर्म्म, अर्थ और कामका मूल क्या है और इस त्रिवर्गकी उत्पत्तिका कारण ही क्या है? ये सब परस्पर मिलित और पृथक् पृथक् होकर किस निमित्त स्थिति करते हैं?

भीष्म बोले, मनुष्य लोग जब जगत्के बीच धर्म्मपूर्व्वक अर्थ निश्चय करनेके वास्ते सुचित्त होते अर्थात् मैं गर्भाधानमें कही हुई विधिके अनुसार ऋतुकालमें निज स्त्रीका सङ्ग करके पुत्र लाभ करूंगा; मनुष्यके मनमें जब ऐसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उस समय धर्म्म अर्थ और काम यह त्रिवर्ग काल प्रभव होके एकत्र मिलता है, धर्म्म ही अर्थका मूल है और काम अर्थका

फल है ; यह कदा उत्पन्न हुआ करता है ; और कामका मूल इन्द्रिय प्रीति है, धर्म, अर्थ, काम ये तीनों ही सङ्कल्प मूलक तथा सङ्कल्प रूप आदि विषयात्मक हैं। रूप आदि सब विषय याग-प्रयोजक त्रिवर्गके मूल हैं और निवृत्तिको ही मोक्ष कहते हैं। धर्मके निमित्त शरीरकी रक्षा अर्थात् आरोग्यताके वास्ते धर्मको सेवा करनी उचित है और धर्मके लिये ही धन उपार्जन न करना योग्य है और कामका फल रति है, इससे धर्म, अर्थ, काम, ये तीनों रजोगुण प्रधान हैं। आत्मज्ञान फलरूप सन्निकृष्ट धर्म, अर्थ, काम भी उस आत्मज्ञानके प्रयोजकके कारण उस समय सन्निकृष्ट होते हैं, इस समय उनकी सेवा करनी चाहिये ; मनसे भी इनका परित्याग न करे। चित्तशुद्धिके वास्ते धर्म, निष्काम कर्मोंके वास्ते अर्थ और देह धारण मात्रके कारण कामको सेवा करनी उचित है, तपसे रहित मनुष्य कामके अनन्तर धर्म आदिकोंको मनसे भी परित्याग न करे; इससे स्वरूपसे परित्याग और सुदूर पराहत होवे। धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी निष्ठा सबसे श्रेष्ठ मोक्ष ही विद्यमान है। यदि मनुष्य उस मोक्षके पानेका अभिलाषी हो, तो पहिले उसे निष्काम होना होगा, बिना निष्काम हुए मोक्ष लाभ नहीं होता। धर्मके वास्ते अर्थ और अर्थके लिये धर्म इस विषयमें अज्ञानताके कारण निकृष्ट बुद्धि अर्थात् निर्बुद्धि मूढ़ मनुष्य ऊपर कहे हुए धर्म और अर्थके फलको नहीं पाते ; इससे धर्म और अर्थका फल मोक्ष ही अव्यभिचारी है, यह निश्चय जाने। धर्मको फलाभिसन्धि ही मलस्वरूप है ; अर्थका दान और भोग न करना ही मलस्वरूप है ; केवल प्रीतिके वास्ते काम सेवन कामका मलस्वरूप है ; इससे वह त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, फलाभिसन्धान दान भोग और प्रीतिसे रहित होनेपर फिर बहुत फल अर्थात् चित्तशुद्धिसे अरिये ब्रह्मानन्द फल प्रदान किया करता है। इस विषयमें कामन्दक और आङ्गरिष्ट इन दोनोंके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका पण्डितलोग आख्यान प्रमाण दिया करते हैं। राजा आङ्गरिष्टने सुखसे बैठे हुए कामन्द ऋषिको प्रणाम करके मर्यादा भङ्ग विषयका प्रश्न किया। हे ऋषि! जो राजा काम और मोहके वशमें होकर पापाचरण करता है, उस पश्चाताप युक्त राजाका पाप किस प्रकार नष्ट होता है ? जो मनुष्य अज्ञानके कारण अधर्मको धर्म समझके आचरण करता है, लोकमें विख्यात उस अधर्मको राजा किस उपायसे निवारित करे ?

कामन्द बोले, जो पुरुष धर्म और अर्थको त्यागके केवल कामका अनुवर्त्ती होता है, वह धर्म, अर्थ परिहार निबन्धनसे इस लोकमें बुद्धिसे हीन हुआ करता है। बुद्धिनाश करनेवाला मोह धर्म, अर्थका नाशक हो जाता है, उससे नास्तिकता और दुराचारकी उत्पत्ति होती है। राजा यदि एकबारगी दुष्ट दुराचारोंको निवारण न कर सके, तो प्रजा घरमें स्थित सर्पके समान उन दुराचारोंसे व्याकुल हुआ करती है। प्रजासमूह, ब्राह्मण और साधु लोग वैसे राजाके अनुवर्त्ती नहीं होते। अनन्तर वह संशय युक्त होकर वध्य होता अथवा अपमानित वा अवनत होकर अत्यन्त दुःखसे जीवित रहता है, अपमान युक्त होके जीवित रहना, वह केवल मृत्युके समान है। पण्डितोंके आचार्य्योंने इस विषयमें सब प्रकार पापकी निन्दा किये हैं ; इससे त्रयी विद्या सेवन और ब्राह्मणोंका सत्कार करना अवश्य उचित है। धर्म विषयमें बड़े चित्तवाला होवे और महत् वंशमें विवाह करे। क्षमाशील मनस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करे, ज्ञानशील होके जप करे और सदा सुखसे स्थित रहे। दुष्कर्मी मनुष्योंको दूर करके धर्मात्मा पुरुषोंके समीप गमन करे, मीठे वचन अथवा कर्मसे सबको प्रसन्न रखे,

दूसरेके गुणोंको वर्णन करते हुए मैं आपकी ही सबके समीप यह कथा कहूंगा। निष्पाप मनुष्य ऐसा आचरण कर आपसे शीघ्र ही सबके आदरका पात्र होता है और सब पापोंको नाश करता है, इसमें संशय नहीं है। गुरु लोग जो परम धर्मका विषय कहा करते हैं, तुम उस धर्मका वैसा ही आचरण करो; गुरुओंकी कृपासे तुम परम कल्याणको प्राप्त होगे।

१२३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पुरुषश्रेष्ठ! भूमण्डलमें ये सब मनुष्य लोग सदा शीलको ही धर्मका कारण कहके उसकी प्रशंसा किया करते हैं; इस विषयमें एकबारगी मुझे महान् संशय होरहा है। हे धार्मिक प्रवर! यदि उसे जाननेकी मुझमें सामर्थ्य हो, तो वह जिस प्रकार प्राप्त होता है, वह सब सुननेकी इच्छा करता हूं। हे वक्तावर भारत! किस प्रकार वह शीलता प्राप्त हो सकती है और उसका कैसा लक्षण है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे मानद महाराज! पहिले दुर्योधनने भाइयोंके सहित इन्द्रप्रस्थमें तुम्हारा वह अतुल ऐश्वर्य देखकर सन्तापित और सभामें उपहसित होकर पिताके समीप वह सब वर्णन किया था। तब धृतराष्ट्रने दुर्योधनका वचन सुनके कर्णके साथ बैठे हुए उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! तुम किस कारण सन्तापित होते हो, मैं उसे यथार्थ रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं, सुनने पर यदि मुझे उपयुक्त बोध होगा, तो तुम्हें उपदेश करूंगा। हे पर पुरञ्जय! तुमने परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है; भ्राता, मित्र और सम्बन्धी लोग सदा तुम्हारी आज्ञामें रत हैं; बड़े मन्दिर, वस्त्र, गात्रावरण और पक्वान्न भोजन भोग करते हो, उत्तम घोड़े तुम्हें ही वहते हैं; तो भी तुम किस कारणसे पाण्डुवर्ण और कृश होरहे हो?

दुर्योधन बोले, हे भारत! युधिष्ठिरके गृहमें दश हजार महानुभाव स्नातक ब्राह्मण लोग नित्य स्वर्णपात्रमें भोजन करते हैं, पाण्डवोंकी दिव्य फल फूलोंसे शोभित वह दिव्य सभा और तीतर पक्षीके समान चित्रित रूपके घोड़े, अनेक तरहके वस्त्र और राज राजके समान बड़ी और शुभकारी सम्पत्ति देखनेसे सब-यसे ही चिन्ता कर रहा हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे तात नरवर! युधिष्ठिरकी जैसी सम्पत्ति है, तुम यदि वैसे वा उससे अधिक ऐश्वर्यकी इच्छा करते हो, तो तुम शीलवान बनो, हे पुत्र! सद्व्यवहारके जरियेसे तीनों लोक जय किया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है, इस लोकमें शीलवान मनुष्योंसे कोई कार्य भी असाध्य नहीं है। मान्धाताने एक रात्रि, जनमेजयने तीन रात्रि और नाभाग राजाने सात रात्रिमें पृथ्वी लाभ की थी; वे सब राजा शीलवान और दयायुक्त थे; इससे वसुन्धरा गुण क्रीता होकर स्वयं उनके निकट उपस्थित हुई थी।

दुर्योधन बोले, हे भारत! जिस शीलके सहारे उन लोगोंने शीघ्र ही पृथ्वीको प्राप्त किया था; किस प्रकारसे वह शील प्राप्त होता है, उसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

धृतराष्ट्र बोले, हे भरतवंश प्रसूत पुत्र! महर्षि नारदने शीलका आश्रय करके पहिले जो प्राचीन इतिहास कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उसका प्रमाण दिया करते हैं। प्रह्लादने दैत्य होके भी शील अवलम्बन करके इन्द्रके राज्यको हरण और तीनों लोकोंको अपने वशमें किया था। हे कुरुवंश धुरन्धर! अनन्तर महाबुद्धिमान् इन्द्र हाथ जोड़के बृहस्पतिके समीप उपस्थित हुए और बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं। तब भग-

वान वृहस्पति उस देवेन्द्रके प्रथम अध्यात्म सम्बन्धीय अर्थात् मोक्षके उपयोगी ज्ञानका विषय कहने लगे। वृहस्पतिने मोक्षके उपयोगी ज्ञानकी कथा कहके "यही श्रेय है" ऐसा ही कहा। देवराजने फिर पूछा, कि निःश्रेयससे भी कुछ कल्याणदायक है वा नहीं उसे विशेष रूपसे वर्णन करिये।

वृहस्पति बोले, हे तात सुरराज! इस विषयमें जो कुछ विशेष है, वह महानुभाव भार्गवसे छिपा नहीं है; इससे तुम उनके समीप जाके इस विषयको पूछो; तुम्हारा मङ्गल होगा। महातपस्वी परम तेजस्वी देवराज अपने कल्याण लाभके लिये प्रीतिपूर्व्वक भार्गवके समीप गये और उस महानुभाव दैत्यगुरुसे अनुज्ञात होकर इन्द्रने उनसे पूछा, कि श्रेय क्या है? सर्व्वज्ञ शुक्राचार्य्य बोले, महानुभाव प्रह्लादको इस विषयका विशेष ज्ञान है; इन्द्र ऐसा सुनकर हर्षित हुए। अनन्तर मेधावी पाकशासन ब्राह्मणका वेष धरके प्रह्लादके निकट जाकर बोले, मैं श्रेय जाननेकी अभिलाष करता हूं।

प्रह्लाद बोले, हे द्विजवर! मैं तीनों लोकके राज्यको शासन करनेमें सदा तत्पर रहता हूं, इससे मुझे एक क्षणभर भी फुर्सत नहीं है, इसीसे तुम्हें उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हूं।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! जब आपको अवसर मिलेगा, तभी मैं उत्तम आचरणीय विषयके उपदेशको ग्रहण करनेकी अभिलाष करता हूं। अनन्तर राजा प्रह्लाद प्रसन्न हुए और "ऐसा ही होगा"—ब्राह्मणसे यह वचन कहके उस शुभमुहूर्तमें उसे ज्ञानतत्त्व प्रदान किया। ब्राह्मण भी यथा न्यायसे जिस प्रकार गुरुके साथ व्यवहार करना होता है और उनके अन्तःकरणमें जैसी अभिलाष थी, उस तरह उसे प्रदर्शित करने लगा, और बारम्बार पूछा, हे अरिदमन! आपने किस प्रकार तीनों लोकके राज्यको प्राप्त किया है? हे धर्म्मज्ञ, वह कारण मेरे समीप कहिये। हे महाराज! प्रह्लादने उस समय उस ब्राह्मणके प्रश्नका यह उत्तर दिया।

प्रह्लाद बोले, हे विप्र! मैं अपनेको राजा समझके कदापि ब्राह्मणोंकी निन्दा नहीं करता, इन लोगोंके शुक्राचार्य्यके बनाये हुए नीतिशास्त्रकी व्याख्या करनेके समय मैं उसे सुनकर धारण किया करता हूं, वे लोग विश्वासी होकर उसे कहते हुए मुझे नियमित करते हैं। मैं शुक्राचार्य्यके कहे हुए नीतिमार्गमें सदा वर्त्तमान रहता हूं, ब्राह्मणोंकी सेवा करता हूं, कभी उन लोगोंकी निन्दा नहीं करता। जैसे मधु मक्खियां सदा क्षौद्र पटल (छत्ते) मे मधु इकट्ठा करती हैं, वैसे ही वे शासन करनेवाले ब्राह्मण लोग मुझे धर्म्मात्मा, जितेन्द्रिय और सदा जित क्रोध जानके शास्त्र वचनसे सेचन किया करते हैं। मैं वाङ्मय शास्त्रोंके मुख्य विद्यारसको ग्रहण करते हुए नक्षत्रमण्डलोंके बीच स्थित चन्द्रमाकी तरह निज जातिके बीच निवास करता हूं। गुरुके कहे हुए शास्त्रको सुनकर उसके अनुसार कार्य्यमें प्रवृत्त होना ही पृथ्वीके बीच अमृतरूपी और यही उत्तम नेत्रस्वरूप है। प्रह्लादने उस ब्राह्मणसे यही श्रेय है, -ऐसा ही कहा, और उस समय दैत्यराज्य उस ब्राह्मणसे पूजित होकर बोले, हे द्विजसत्तम! तुमने मेरे साथ गुरुकी तरह व्यवहार किया है, उससे मैं प्रसन्न हुआ हूं; इससे तुम जो वर मांगोगे, तुम्हें वही दान करूंगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है; तुम्हारा मङ्गल होगा। ब्राह्मणने उस समय दैत्येन्द्रसे कहा, मैंने वर मांगा; प्रह्लाद प्रसन्न होकर वर प्रदान करो; ऐसा ही बोले।

ब्राह्मण बोला, हे राजन्! आप यदि प्रसन्न होकर मेरी प्रिय कामना करते हैं, तो मैं आपका शील प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं;

यही मेरी प्रार्थना है। अनन्तर दैत्यराज प्रसन्न हुए परन्तु उन्हें अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ; ब्राह्मणके वर मांगनेपर "ये अल्प तेजस्वी नहीं हैं,"—ऐसा ही निश्चय किया। अन्तमें प्रह्लाद विस्मित होकर "ऐसा ही होवे" यह वचन कहा और उस ब्राह्मणको वरदान करके दुःखित हुए। हे महाराज! वरदानके अनन्तर ब्राह्मणके जानेपर प्रह्लादको बहुत चिन्ता उत्पन्न हुई; वह उस समय कुछ भी निश्चय न कर सके। हे तात! जब वह चिन्ता कर रहे थे, तब तेजोमय विग्रहयुक्त छायाभूत महातेजस्वी शीलने उनके शरीरको परित्याग किया। प्रह्लादने उस समय उस महाकायसे कहा, आप कौन हैं? वह बोला, हे राजन्! मैं शील हूं, तुमने मुझे परित्याग किया, इससे जाता हूं, जो शिष्य होकर सदा तुम्हारे निकट स्थित थे, मैं उस ही अनिन्दित द्विजवरके शरीरमें वास करूंगा। तेजोमय शील ऐसा कहके अन्तर्द्धान हुआ और इन्द्रके शरीरमें प्रवेश किया। शील-स्वरूप तेजके जानेपर वैसे ही रूपसे युक्त दूसरा एक पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला, तब उन्होंने उससे कहा आप कौन हैं? वह बोला हे प्रह्लाद! मैं धर्म्म हूं, जिस स्थानमें वह द्विज सत्तम है, मैं वहां ही जाऊंगा। हे दैत्यराज! शील जिस स्थानमें जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं।

महाराज! अनन्तर और एक पुरुष मानो तेजसे प्रज्वलित होकर प्रह्लादके शरीरसे बाहर हुआ। उन्होंने पूछा आप कौन हैं? प्रह्लादके ऐसा पूछनेपर वह महातेजस्वी बोला, हे असुरेन्द्र! मैं सत्य हूं। इस समय धर्म्मका अनुगमन करूंगा। सत्यने ऐसा कहके धर्म्मके पीछे गमन किया। फिर दूसरा एक महान पुरुष प्रह्लादके शरीरसे निकला और वह महाबलवान पूछे जानेपर बोला, हे प्रह्लाद! मैं वृत्त हूं, सत्य जहां रहता है मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। वृत्तके जानेपर प्रह्लादके शरीरसे महाशब्द बाहर हुआ और पूंछनेपर बोला, मैं बल हूं। वृत्त जहां जाता है, मैं भी वहां ही गमन किया करता हूं। हे नरनाथ! बल ऐसा कहके जहां वृत्त गया था, वहां ही चला गया। अनन्तर उनके शरीरसे एक प्रभामयी देवी बाहर हुई! दैत्यराज प्रह्लादके पूछनेपर श्रीने उनसे कहा, हे सत्यपराक्रमी वीरवर! मैं स्वयं तुम्हारे शरीरमें निवास करती थी, इस समय तुमसे परित्यक्त होनेसे जाती हूं; मैं बलकी अनुगामिनी हुआ करती हूं। अनन्तर महानुभाव प्रह्लादके अन्तःकरणमें भय उत्पन्न हुआ। वह फिर बोले, हे कमलालये! तुम कहां जाती हो? तुम्हीं सत्यव्रत धारिणी लोककी परमेश्वरी देवी हो। वह द्विजवर कौन थे? इसे मैं यथार्थ रूपसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

लक्ष्मी बोली, हे राजन्! जो ब्रह्मचारी होकर तुम्हारे निकट शिक्षित हुए थे, वह देवराज इन्द्र हैं; तीनों लोकमें तुम्हारा जो कुछ ऐश्वर्य्य था, वह उन्हींके जरिये हरण हुआ है। हे धर्म्मज्ञ! तुमने शीलके सहारे तीनों लोक जय किया था; सुरराजने उसे मालूम करके तुम्हारे उस शीलको हरण किया है। हे महाबुद्धिमान्! धर्म्म, सत्य, वृत्त, बल और मैं शील ही हम सब लोगोंका मूल है; इस विषयमें सन्देह नहीं है।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! ऐसा ही कहके लक्ष्मी और सत्य आदि सबने गमन किया था। इधर दुर्य्योधन फिर पितासे बोले, हे कौरवनन्दन! मैं शीलके वृत्तान्तके विदित होनेकी इच्छा करता हूं। जिसके जरिये शीलता प्राप्त की जा सकती है, आप वह उपाय कहिये।

धृतराष्ट्र बोले, वह उपाय पहिले ही महानुभाव प्रह्लादके द्वारा वर्णित हुई है। हे नरेश्वर! इस समय शील प्राप्तिके विषयका

संक्षेपमें कहता हूं सुनो वचन, मन और कर्म्मसे सब प्राणियोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करना, कृपा प्रकाश करनी और दान, ये ही शीलके बीच श्रेष्ठ होते हैं। अपना कर्म्म वा पौरुष जो दूसरेको हितकर न हो और जिससे दूसरेके समीप लज्जित होना पड़े, किसी प्रकार भी उसका अनुष्ठान करना उचित नहीं है। जिसके जरिये सभामें बड़ाई प्राप्त हो सकती है, सदा वैसा कार्य्य करना चाहिये। हे कुरुसत्तम! यही तो मैंने तुमसे संक्षेपमें शीलका विषय कहा। हे राजन्! शीलहीन मनुष्य जो कदापि श्रीसे युक्त हो, तौभी वह बहुत समयतक उस श्रीको भोग करनेमें समर्थ वा बद्धमूल नहीं होता है।

धृतराष्ट्र बोले, हे पुत्र! हे तात! यदि युधिष्ठिरसे भी अधिक ऐश्वर्य्य लाभ करनेकी इच्छा करते हो, तो इसे यथार्थ रूपसे जानके शीलवान बनो।

भीष्म बोले, राजा धृतराष्ट्रने निज पुत्र दुर्य्योधनसे यह कथा कही थी। हे कुन्तीनन्दन! तुम ऐसा ही आचरण करो, अवश्य ही इसका फल पाओगे।

१२४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! पुरुषके विषयमें शील ही मुख्य है, यह तो आपने वर्णन किया, परन्तु आशा किस प्रकार उत्पन्न हुई है और वह आशा क्या है? उसे आप मेरे समीप कहिये। हे पितामह! इस विषयमें मुझे बहुत ही संशय उत्पन्न हुआ है; हे पर पुरञ्जय! आपके अतिरिक्त दूसरा कोई भी इस संशयको छुड़ानेवाला नहीं है। हे पितामह! युद्ध उपस्थित होने और बिना युद्धके भी दुर्य्योधन अधराज्य प्रदान करेगा, उसके विषयमें मुझे यह बड़ी आशा थी; पुरुष मात्रको ही महती आशा उत्पन्न होती है; उस आशाके नष्ट होनेपर दुःखकारी मृत्यु होती है, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! उस दुष्टात्मा धार्त्तराष्ट्रने मुझे दुर्बुद्धि और हताश किया है; मेरी मन्दात्मता देखिये। मैं वृक्षोंसे युक्त पहाड़को भी आशाको वृहत् समझता हूं; हे राजन्! आशा आकाशसे भी अप्रमेय है। हे कुरुश्रेष्ठ! यह आशा अचिन्तनीय और एकबारगी दुर्लभ है; दुर्लभत्व निबन्धन युक्त दूसरे किसी विषयको भी इससे अधिक दुर्लभ नहीं देखता हूं।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! इस विषयमें मैं तुम्हारे समीप सुमित्र और ऋषभके सम्वाद युक्त इतिहासको वर्णन करता हूं, सुनो।

हैहयवंशीय सुमित्र नाम राजऋषि मृगयाके वास्ते जाके नतपर्व्व बाणसे एक मृगको विद्ध करके बनमें भ्रमण कर रहे थे। अत्यन्त विक्रमसे युक्त वह मृग बाणसे विद्ध होकर गमन करने लगा; राजाने भी शीघ्रताके सहित बलपूर्व्वक उस मृगयूथपतिका अनुसरण किया। हे राजेन्द्र! अनन्तर वह शीघ्रगामी कुरङ्ग मुहूर्त्त भरमें निम्न स्थल और समतल मार्गमें दौड़ने लगा। अन्तमें वह तनुत्राणसे युक्त राजा धनुष और तलवार ग्रहण करके यौवन बलसे भ्रमण करते हुए अकेलेही नद, नदी, पल्वल और वन अतिक्रम करते हुए वनचारी होकर घूमने लगे। शत्रुनाशन राजा उसके मर्म्मको छेदनेवाला तीक्ष्ण बाण ग्रहण करके धनुषपर चढ़ाया। अनन्तर मृगयूथपति मानो हंसी करते हुए बाणके मार्गका परित्याग करके दो कोसको दूरीपर स्थित हुआ। जलता हुआ तेजसे युक्त बाण पृथ्वीपर गिरा; मृगने महावनके बीच प्रवेश किया; राजा भी दौड़े।

१२५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर राजा महावनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रम पर उपस्थित हुए

और सबके उस समय वहां बैठ गये। ऋषियोंने उस धनुर्धारी राजाको थका और भूखा देखके सबने उस स्थानपर इकट्ठे होकर यथारीति उनका सत्कार किया। राजाने उन ऋषियोंसे प्राप्त हुए सत्कारको ग्रहण करके सब तपस्वियोंसे तप वृद्धिका विषय पूछा। तपोधन ऋषि लोग राजाके वचनको सुनके उनके आगमनका प्रयोजन जाननेके वास्ते बोले, हे राजन्! आप धनुष बाण और तलवार धारण करके पैदल हो कौनसे सुखके वास्ते इस तपोवनमें आये हैं? हे मानद! आपने किस स्थानसे आगमन किया है? उसे हम लोग सुननेकी इच्छा करते हैं। आप किस वंशमें उत्पन्न हुए हैं और आपका क्या नाम है, वह हम लोगोंके निकट वर्णन करिये। हे पुरुषप्रवर भरतवंशावतंस! वह राजा सब ब्राह्मणोंका यथारीतिसे निज परिचय देनेके वास्ते बोला, मैं हैहयवंशमें उत्पन्न हुआ हूं; मित्रोंके आनन्दको बढ़ानेवाला सुमित्र नामसे प्रसिद्ध हूं; मैं विपुल बलसे रक्षित और सेवक तथा अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंमें घिरकर बाणोंसे सहस्रों मृगोंको मारते हुए विचरता था; कोई मृग मेरे बाणसे विद्ध होकर शल्यके सहित दौड़ रहा है, मैं उस ही दौड़ते हुए मृगका पीछा करते हुए दैव इच्छासे इस वनमें उपस्थित हुआ हूं। इस समय श्रीरहित निराश और परिश्रमसे थक कर आप लोगोंके समीप आया हूं। मैं परिश्रमसे कातर, निराश और भ्रष्ट लक्षण होकर आप लोगोंके समीप आया, इससे बढ़के मुझे दूसरा दुःख क्या होगा? हे तपस्वी लोगो! मेरी मृग-विषयक आशा नष्ट होनेसे जैसा तीव्र दुःख हुआ है, राज चिह्न त्यागना और नगरको छोड़ना वैसा दुःखदायक नहीं है। अत्यन्त ऊंचा महा पर्व्वत हिमालय, बहुत बड़े महोदधि समुद्र और आकाशको अन्तराल मण्डलके अनुसार आशाके समान नहीं हो सकते। हे तापस वृन्द! इससे मैं आशाका अन्त भी नहीं देखता हूं आप लोग सर्व्वज्ञ और तपस्यासे भरे हैं; सब आप लोगोंको विदित है; आप महा ऐश्वर्य्ययुक्त हैं, इसही कारण आप लोगोंसे संशयका विषय पूछता हूं। आशावान पुरुष और आकाश इन दोनोंके बीच महत्वमें आप लोगोंको कौन श्रेष्ठ मालूम होता है; मैं यही सुननेकी अभिलाष करता हूं; इस लोकमें सुननेमें क्या दुर्लभ है? यह विषय यदि आप लोगोंके समीप गोपनीय न हो, तो शीघ्र ही मुझसे कहिये। हे द्विजसत्तम वृन्द! आप लोगोंके गोपनीय विषयको सुननेकी इच्छा नहीं करता, मैंने जो प्रश्न किया है, कथाके प्रसङ्गसे यदि इसका उत्तर होवे, तो वर्णन कीजिये। आशाके कारण और सामर्थ्यको रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, आप लोग भी तपस्यामें रत हैं, इससे सब कोई मिलकर इस विषयको वर्णन कीजिये।

१२६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर उन सब ऋषियोंके बीच ऋषि सत्तम ऋषभ नाम विप्रर्षि विस्मित होकर यह वचन बोले, हे प्रभु नृपवर! पहिले समयमें मैं सब तीर्थोंमें घूमता हुआ नर नारायणके दिव्य आश्रममें उपस्थित हुआ था, जिस स्थानमें उस रमणीय बदरी और आकाश गङ्गाका वैहाय सहृद विद्यमान है, और अश्व-नित्य वेद पाठ करते हैं। पहिले समय मैं उस ही तालाबमें पितर और देवताओंका विधि-पूर्व्वक तर्पण करके उस ही समय आश्रममें उपस्थित हुआ। जिस स्थानमें वह नारायण ऋषि सदा निवास करते हैं उनके निकटमें ही वास करनेके लिये किसी आश्रममें गमन किया। वहां सदा मृगछालाको धारण करनेवाले तनु नाम ऋषिको आते देखा। हे महाबाहो राजऋषि! उनका शरीर दूसरे मनुष्योंसे अठगुना

ऊंचा था ; परन्तु उनकी जैसी कृशता थी, वैसी कृशता कहीं भी नहीं देखी गई है। हे राजेन्द्र! उनका शरीर कनिष्ठा अंगुलीके समान था, गर्दन, दोनों भुजा, दोनों पैर और सब केश देखनेमें अद्भुत थे ; सिर शरीरके अनुरूप ही था ; दोनों कान और दोनों नेत्र भी उसके समान ही थे। हे राजसत्तम! उनका वचन और चेष्टा सामान्य थी ; मैं उस कृश विप्रको देखके अत्यन्त डरा और दुःखित हुआ, अनन्तर उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़के उनके सम्मुख खड़ा रहा।

हे राजन्! नाम, गोत्र और पिताका नाम कहके उनके दिये हुए आसन पर जाके धीरे धीरे बैठ गया। हे महाराज! अनन्तर उस धर्म्मात्मा महर्षि तनुने ऋषियोंके बीच धर्म्म अर्थ युक्त कथा कहनी आरम्भ की। वह जब धर्म्म-युक्त कथा कहने लगे, तब राजीवलोचन कोई राजा सेना और अन्तःपुरवासिनी स्त्रियोंके सहित वेगवान घोड़ोंके जरिये वहां पर उपस्थित हुआ। बनके बीच पुत्र खोया गया है, उसी कारण करते हुए अत्यन्त दुःखित होकर पहिले समयमें भूरिद्युम्नके पिता महायशस्वी श्रीमान महा वीर द्युम्न राजाने उस ही स्थानमें उस पुत्रको देखूंगा, ऐसी ही आशासे युक्त होकर उस बनमें घूमते हुए मेरे उस परम धार्म्मिक पुत्रका दर्शन होना दुर्लभ है, अकेला पुत्र महावनके बीच खोया गया, उस समय बारम्बार ऐसा ही बचन कहने लगे। "मुझे उसका दर्शन होना दुर्लभ है, परन्तु देखनेके वास्ते मुझे बड़ी ही आशा हुई है ; उस ही आशासे मेरा सब शरीर परिपूरित होनेसे मैं मुमुर्षु हुआ हूं ; इसमें सन्देह नहीं है।" मुनिश्रेष्ठ भगवान तनुने राजाका ऐसा बचन सुनके अवाक्शिरा और चिन्तापरायण होके मुहूर्त्त भर स्थित रहे। राजा उन्हें चिन्ता करते देख, अत्यन्त दुःखित हुआ और दीनताके सहित बार बार मन्द स्वरसे बोला, हे देवऋषि! दुर्लभ क्या है और आशासे बड़ा क्या है? यदि यह मेरे समीप गोपनीय न हो, तो, हे भगवन्! इसे वर्णन कीजिये।

मुनि बोले, पहिले महर्षि भगवान् तुम्हारे उस पुत्रके जरिये बालिश बुद्धि और निज मन्द-भाग्यताके कारण मानसे रहित हुए थे। हे राजन्! महर्षिने एक सोनेका कलश और बल्कल मांगा था, उन्होंने अवज्ञापूर्व्वक उसे सम्पादन नहीं किया, वह राजर्षि निर्व्विण्ण और निराश हुए थे। हे नरसत्तम! वह धर्म्मात्मा इसी प्रकार उग्र होकर उस लोकपूजित ऋषिको प्रणाम करके तुम्हारी भांति श्रान्त और अवसन्न हुए थे। अनन्तर महर्षिने पाद्य और अर्घ लेकर अरण्य विधिके अनुसार राजाको वह सब निवेदन किया।

हे नरश्रेष्ठ! अनन्तर जैसे सप्तऋषि लोग ध्रुवको घेरते हैं, वैसे ही सब मुनि लोग उस राजाको घेरकर बैठ गये और उन लोगोंने उस राजाके आश्रममें आनेका प्रयोजन पूछा।

१२७ अध्याय समाप्त।

राजा बोला, मैं वीरद्युम्न नामसे विख्यात राजा चारों ओर प्रसिद्ध हूं, मेरा पुत्र भूरिद्युम्न अनुदिष्ट हुआ है, उसे खोजनेके वास्ते मैं इस बनमें आया हूं। हे पापरहित विप्रवर! मेरे वही एक मात्र पुत्र है, तिसपर भी वह बालक है, उसे इस बनमें न देखके घूम रहा हूं।

ऋषभ बोले, जब राजाने ऐसा कहा, तब उस समय मुनि अधोवदन होकर चुप होरहे ; राजाको कुछ भी उत्तर न दिया। वह ब्राह्मण पहिले राजाके जरिये सम्मानित नहीं हुए। हे राजेन्द्र! उन्होंने आशाको नष्ट करनेके निमित्त बहुत तपस्या की थी, मैं किसी प्रकारसे राजाके निकट प्रतिग्रह तथा दूसरे किसी

वर्षोका दान नहीं ग्रहण करूंगा ; उस समय ऐसी ही बुद्धि अवलम्बन करके स्थित थे। आशा ही स्थिर होकर पुरुषको तथा बालकको भी उद्योगशाली करती है ; इससे "मैं उस आशाको दूर करूंगा," मन ही मन ऐसा ही स्थिर करके मुनि मौन हुए थे। वीरद्युम्न राजाने फिर उस मुनिसत्तमसे पूछा।

राजा बोला, आशाकी कृशता क्या है ? इस पृथ्वीमण्डलके बीच दुर्लभ क्या है ? आप इसे ही वर्णन करिये ; क्योंकि आपने धर्म्म, अर्थका दर्शन किया है।

ऋषभ बोले, अनन्तर भगवान ब्राह्मणश्रेष्ठ कृशतनु पहिले वृत्तान्तको स्मरण करके उसे मानो राजाको स्मरण करानेके लिये कहने लगे।

ऋषि बोले, हे राजन् ! आशायुक्त पुरुषके समान दूसरा कोई कृश नहीं है, आशाग्रस्त विषयका दुर्लभत्व निबन्धन मैंने राजाओंके निकट प्रार्थना की थी।

राजा बोला, हे ब्रह्मन् ! आपके वचनके अनुसार कृश अकृशका बोध हुआ और आशा गृहीत विषयका दुर्लभत्व वेद वचनके समान विदित हुआ। हे महाबुद्धिमान मुनिश्रेष्ठ ! मेरे मनमें संशय उत्पन्न हुआ है, इससे मैं उस संशयके विषयको पूछता हूं, आप विधिपूर्व्वक कहिये। हे मुनिसत्तम ! यदि गोपनीय न हो, तो अपनेसे दुबलापन क्या है ? हे भगवन् ! इसे ही मेरे निकटमें प्रकट करिये।

कृश बोले, हे तात। याचक होके सन्तुष्ट हुआ करे, ऐसा पुरुष दुर्लभ है, अथवा नहीं है, ऐसा भी कहा जा सकता है, और अर्थकी अवज्ञा न करे, ऐसा पुरुष अत्यन्त दुर्लभ है। शक्ति रहते भी सत्कार करके दूसरेका उपकार न करनेवाला और जो आशा सब प्राणियोंमें आसक्त होरही है, मैंने उस आशाको बहुत कृश किया है। एक मात्र पुत्रका पिता पुत्र अनुदिष्ट वा प्रोषित होनेपर उसका हाल जो नहीं जानता मैंने उस आशाको दूरवारभी कृश किया है, हे नरनाथ ! स्त्रियोंकी प्रसवके समय, वृद्धोंकी पुत्र उत्पत्तिके समयमें और धनियोंके मनमें जो आशा रहती है, मैंने उसे अत्यन्त कृश किया है। प्रदानकांक्षिणी कन्याओंके यौवन-काल उपस्थित होनेपर उनके विषयकी कथा सुनके जो आशा उत्पन्न होती है, मैंने उस आशाको अत्यन्त कृश किया है। हे राजन् ! अनन्तर वीरद्युम्न राजाने यह सब कथा सुनके पत्नीके सहित उस द्विजवरके चरणोंको मस्तकसे स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया।

राजा बोला, हे भगवन् मैं आपके अनुग्रहकी इच्छा करता हूं, मैं निज पुत्रके साथ मिलनेकी अभिलाष करता हूं। हे द्विजसत्तम ! इस समय आपने जो कुछ कहा, वह सब सत्य है इसमें सन्देह नहीं है।

ऋषि बोले, धार्म्मिकप्रवर ! भगवान् तनुने हंसकर तप और विद्याबलके जरिये उस अनुदिष्ट राजपुत्रको लाके उपस्थित किया। उन्होंने राजपुत्रको लाके राजाका तिरस्कार करके आप ही जो धर्म्मस्वरूप थे, उसे दिखाया ; अद्भुत दर्शनने दिव्य-आत्म दिखाकर पापरहित और क्रोधहीन होके निकटके वनमें गमन किया। हे राजन् ! मैंने ऐसाही देखा था, और यही सब वचन सुना था, आशाको शीघ्र दूर करो ; ऐसा होनेसे यह अत्यन्त दुर्ब्बल होगी।

भीष्म बोले, हे राजन् ! उस समय राजा सुमित्रने महात्मा ऋषभका ऐसा वचन सुनके शीघ्र ही दुबली आशाको परित्याग किया। हे कुन्तीपुत्र महाराज ! तुम भी मेरा यह वचन सुनके हिमवान पर्व्वत की तरह स्थिर होओगे। हे महाराज ! तुम प्रष्टा और त्राता हो, इससे मेरा मत सुनके आपदकाल उपस्थित होनेपर सन्ताप भाजन न होना।

१२८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! आप जब धर्म-कथा कहते हैं तब मैं आत्मवृत्तिस्थ होकर जिस प्रकार तृप्त होता हूं, अमृतसे भी वैसी तृप्ति नहीं होती। हे पितामह! इससे आप फिर धर्म कथा कहिये। मैं आपके कहे हुए धर्म्मामृतको पीते हुए किसी प्रकारसे भी तृप्ति लाभ नहीं कर सकता हूं।

भीष्म बोले, इस विषयमें पुराने लोग महानुभाव यम और गौतमके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। पारियात्र पर्व्वतके समीप गौतमका अत्यन्त बड़ा आश्रम था, गौतमने उस आश्रममें जबतक वास किया था, वह भी मुझसे सुनो। गौतमने उस आश्रममें साठ हजार वर्ष तक तपस्या की थी। हे राजन्! उस महामुनिकी उग्र तपस्या देखकर लोकपाल यमने उनके निकट गमन किया और उस समय गौतम ऋषिको अत्यन्त कठोर तपस्या करनेमें रत देखा। ब्रह्मर्षि तपस्वी गौतम तेज प्रभावशाली यमको आया हुआ देखके हाथ जोड़के उठ खड़े हुए। धर्मराजने उस द्विजवरको देखते ही धर्मके अनुसार सत्कार करके उनसे पूछा, "मैं तुम्हारा क्या करूं?"

गौतम बोले, क्या करनेसे पुरुष माता पितासे अऋण होता है और किस प्रकार पवित्र तथा दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करता है?

यम बोले, तपस्या और पवित्र आचार युक्त तथा नियम और सत्य धर्ममें रत पुरुष सदा पिता-माताकी पूजा और बहुतसी दक्षिणासे युक्त अश्वमेध यज्ञ करनेसे अद्भुत दर्शन निबन्धनसे दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया करते हैं।

१२६ अध्याय समाप्त।

———

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा मित्रोंसे परित्यक्त हुए हैं; जिनके बहुतसे शत्रु हुए हैं, और जो कोषहीन तथा बलहीन हुए हैं; उनके वास्ते क्या उपाय है? दुष्ट सेवक जिसके सहायक हुए हैं, जिसकी मन्त्रणा सब तरहसे निष्फल हुई है, राज्यसे जो भ्रष्ट होते हैं और उत्तम उपायको देखनेमें असमर्थ हैं; जो दूसरे राज्यकी ओर जानेके वास्ते उद्यत और पर राज्यको मर्द्दन करनेमें तैयार हुए हैं, जो स्वयं निर्बल होकर भी बलवानके साथ विरोध करनेमें वर्त्तमान रहते हैं; जो राजा पूर्व्वरीतिसे राज्यकी रक्षा नहीं कर सकते; जो देश और कालके अनुसार कार्य्य करनेमें अवज्ञा करते हैं। अत्यन्त पीड़न निबन्धनसे दूसरोंके सेवक आदिकोंका भेद और सामवाद जिसे अप्राप्य होता है; उनको उपाय क्या है? अर्थ साध्य जीवन सुकृत उत्तम होगा, अर्थात् असत् मार्गके जरिये अर्थ ग्रहण करना होगा अथवा अर्थके विना मरना कल्याणकारी है?

भीष्म बोले, हे भरत श्रेष्ठ धर्मज्ञ युधिष्ठिर! तुमने अत्यन्त गुप्त विषय पूछा है, न पूछने पर मैं इस विषयके कहनेका उत्साह न करता। हे भरतप्रवर! धर्म अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ है, शास्त्र सुननेके कारण उस सूक्ष्म धर्मका ज्ञान हुआ करता है; धर्म सुनने और आचार निबन्धनसे कदाचित कोई पुरुष सदाचारके जरिये साधु होते हैं। आपदकालमें धनके निमित्त प्रजापीड़न करते हुए धनलाभ हो, वा न हो, आपदसे पार होके प्रजासमूहके ऊपर कृपा करनी उचित है। यदि धन लाभ न हो, तो अपना और प्रजाका नाश हुआ करता है, उसी विचारके तुम निज प्रश्नके विषयको अपनी बुद्धिके सहारे विवेचनीय जानो। हे भारत! राजाओंकी व्यवहार निबाहनेके वास्ते बहुतसे धर्मयुक्त उपाय हैं, सुनो। मैं धर्मके निमित्त इस प्रकार धर्म प्राप्त होनेकी इच्छा नहीं करता। प्रजाको दुःख देके जो प्राप्त किया जाता है, वह पीछे मृत्युके समान

हुआ करता है, अर्थात् प्रजापीड़नसे दुःखसे कारणसे उत्पन्न हुई अग्नि राजाके प्राण बल और धनसारको बिना जलाये निवृत्त नहीं होती ; पवित्र बुद्धिवाले मनुष्यों वा प्रजासमूहका ऐसा ही निश्चय है। पुरुष प्रति दिन जैसे शास्त्रोंको देखता है, वैसा ही विज्ञान लाभ करके उसमें अनुरक्त हुआ करता है ; अविज्ञानके कारण अनुपाय होता है, उपायज्ञान ही अत्यन्त विभूति उत्पन्न करता है। तुम अशङ्कित और असूयारहित होकर यह वचन सुनो। राजाका कोष नष्ट होनेसे ही बलका नाश हुआ करता है ; निर्जल स्थलमें जल उत्पन्न करनेकी तरह राजा लोग कोष सञ्चय किया करते हैं। प्राचीन पुरुषोंके आचरित इस रूप धर्मको जानकर समयके अनुसार राजा पूर्व्व पीड़ित प्रजाके ऊपर कृपा करे। हे भारत। समर्थ मनुष्योंका धर्म स्वतन्त्र है और आपदकालका धर्म स्वतन्त्र होता है। कोष सञ्चयके पहिले राजा तपस्या आदिके जरिये धर्म सञ्चय करनेमें समर्थ होते है ; धर्मसे भी जीवन गुरुतर है। निर्ब्बल पुरुष धन लाभ करके न्याययुक्त जीविका अवलम्बन नहीं करता, क्योंकि यत्न करनेपर भी अवश्य बलकी सम्भावना होती है, ऐसा नियम नहीं है ; इससे सुना गया है, आपदकालमें अधर्म भी धर्म लक्षणयुक्त हुआ करता है इससे आपदकालमें अधर्म भी कर्त्तव्य रूपसे सुना जाता है, उस समय जो धर्म है, वह अधर्म हुआ करता है ; इससे शास्त्रकी मर्य्यादानुसार आपदकालमें प्रजापीड़न आदि भी धर्मरूपसे गिने जाते है, वरन वैसा न करनेसे अधर्म होता है यह कवियोंको अविदित नहीं है। आपदकाल बीतनेपर क्षत्रियके वास्ते पहिले कहे हुए अधर्मके दोषोंको दूर करनेके वास्ते प्रायश्चित्तकी विधि है। क्षत्रियोंको जिसमें धर्म हानि न हो, और वह जिससे शत्रु के वशमें न होवे, वैसो ही उपाय करनी उचित है ; ऐसा ही पुराने लोग कहा करते हैं। आत्माको अवसन्न करना उचित नहीं है, सब तरहके यत्नके जरिये, अपने वा दूसरेके धर्म उद्धारकी इच्छा न करे, जिस किसी उपायसे होसके, आत्माका उद्धार करना चाहिये ऐसा ही निश्चय जाने।

हे तात। उस आपदकालके अनन्तर धर्म जाननेवाले पुरुषोंके लिये धर्म विषयमें निपुणता ही निश्चित है और क्षत्रियोंके वास्ते बाहुबलके सहारे उद्यम ही निपुणता है, इसी प्रकार जनश्रुति है। हे भारत! इसी रीतिसे वृत्तिरोध होनेपर श्रेष्ठ क्षत्रिय तापसस्व और ब्राह्मणस्वको छोड़के और सबके धनको ले सकते हैं। जैसे ब्राह्मण अवसन्न होनेपर न जांचने योग्य पुरुषके निकट जांचते तथा भोजन न करने योग्य अन्न भी भोजन करते हैं, वैसे ही क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणस्व और तापसस्वके अतिरिक्त दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें दोष नहीं होता, इसमें सन्देह नहीं है। पीड़ित पुरुषको अद्वार क्या है? और निरुद्ध पुरुषको ही कौनसा उत्पथ है? जब लोग पीड़ित होते हैं, तब अद्वारसे भी दौड़ा करते हैं। जो राजा धनागारसे रहित और सेनाके नष्ट होनेसे लोगोंके समीप पराभव युक्त होता है, उसे भिक्षा करके जीवन धारण तथा वैश्य और शूद्रकी वृत्ति अवलम्बन करनी योग्य नहीं है। क्षत्रियोंकी स्वजातीय वृत्ति विजयके जरिये धन उपार्ज्जन की विधि है, जो उसके अनुसार जीवन व्यतीत न कर सकें, वे अयाचक होनेपर भी पहिले आपदकालमें मुख्य कल्पके जरिये जीवन व्यतीत करें ; उसमें असमर्थ होनेपर अनुकल्प अवलम्बन करना अनुचित नहीं है। आपदकाल उपस्थित होनेपर सब धर्म्मोंका विपर्य्यय अर्थात् पराक्रमके जरिये भी जीवन धारण करना योग्य है। जीविका नष्ट होनेपर ब्राह्मणोंका भी ऐसा ही व्यवहार दोख पड़ा है, तब

क्षत्रियोंके विषयमें क्यों सन्देह होगा? क्षत्रिय पुरुष आपदकालमें अधिक धनशाली पुरुषोंसे बलपूर्व्वक धन ग्रहण करके जीवन धारण करें, किसी तरह अवसन्न न होवें, उसमें सन्देह करना उचित नहीं है, यह सदासे ही निश्चित है। पण्डित लोग क्षत्रियोंको ही प्रजापालक और हन्ता समझते हैं; इससे रक्षाकर्त्ता क्षत्रिय धनवान मनुष्योंके निकट धन ग्रहण करें। हे राजन्! वनमें रहके मुनिके अतिरिक्त दूसरे किसी पुरुषकी हिंसाके बिना जीविका नहीं निभती है।

हे कुरुश्रेष्ठ! माथेमें लिखी हुई वृत्ति अर्थात् अदृष्ट मात्रको अवलम्बन करके जीवन धारण करना क्षत्रियोंके विषयमें योग्य नहीं है विशेष करके जिसे प्रजापालनकी इच्छा है, उन्हें भी वैसी वृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है। आपदकालमें राजा और राज्य दोनोंकी ही सदा परस्पर रक्षा करनी चाहिये यही सनातन धर्म्म है। आपदकालमें जैसे राजा धनके जरिये सब तरहसे राज्यकी रक्षा करता है, विपद उपस्थित होनेपर राज्यको उसी प्रकार राजाकी रक्षा करनी योग्य है। कोष, दण्ड, बल, मित्र और दूसरी जो कुछ वस्तु सञ्चित रहे, राजा क्षुधातुर होनेपर भी राज्यके वास्ते उसे दूर न करे। अन्नसे ही बीज सम्पादन करना होता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष ऐसा ही जानते हैं। अल्पधनवाला राजा यदि प्रजासमूहसे रक्षित न रहे, तो वह नष्ट होता है, राजाके नष्ट होनेपर सब प्रजा नष्ट हुआ करती हैं; इस विषयमें पण्डित लोग महामायावी शम्बरके इस शास्त्रको वर्णन किया करते हैं। जिस राजाके राज्यमें वास करनेवाली प्रजा अवसन्न होती है जो दूसरेका प्रेष्य हुआ करता है, अथवा वृत्तिसे रहित होनेपर अल्प परिवारको पालन करता है, और जो विदेशमें जीविका निर्व्वाहके वास्ते समय बिताता है; उसे धिक्कार है। कोषागार और सेना ही एकमात्र राजाका मूल है, उसके बीच खजाना ही सेनाका मूल है; सेना सब धर्म्मका मूल है और धर्म्म ही प्रजासमूहका मूल होता है, इससे सबकी जड़ धनागारकी बढ़ती करनी उचित है। दूसरे पुरुषको पीड़ित न करनेसे कोष सञ्चय नहीं होता, तब सेनाका संग्रह किस प्रकार हो सकेगा? इससे कोष सञ्चके वास्ते लोगोंको पीड़ित करनेसे राजा दोषभागी नहीं होते। यज्ञकार्य्यको निबाहनेके निमित्त अकार्य्य करते भी देखा जाता है; इस ही कारण राजा कदापि दोषभागी नहीं होते, आपदकालमें प्रजा पीड़न अर्थके लिये ही हुआ करता है, वह स्वतन्त्र है; और उस समय प्रजाको पीड़ित न करना अनर्थका कारण होजाता है। अर्थके अभावके वास्ते हाथी आदि पाले जाते हैं, और वे अर्थके उत्पादक भी हुआ करते हैं; इससे मेधावी पुरुष इस कर्म्मनिश्चयको बुद्धिके जरिये विचारे। पशु आदि जैसे यज्ञके कारण होते हैं, यज्ञ चित्त संस्कारका कारण हुआ करता है और पशु आदि यज्ञ तथा चित्त संस्कार ये तीनों जिस तरह मोक्षके कारण हुआ करते हैं, वैसे ही कोषका कारण दण्ड, बलका कारण कोष और शत्रु पराभवके कारण कोष, बल तथा नीति ये तीनों ही राज्य पुष्टिके निमित्त हुआ करते हैं। इस विषयमें धर्म्म-तत्व प्रकाश करनेवाली उपमा कहता हूं, यज्ञ विषयमें जो लोग परिपन्थी हैं, वे यूपच्छेदन करते हैं; प्रतिपक्षी स्वरूप सामन्त वृन्द वृक्ष रूपी उसे काटनेसे जब वह कटके गिरता है, तब दूसरे वनस्पतियोंको गिराता है। हे शत्रुतापन! इसी प्रकार जो मनुष्य महत् कोषके बाधक होवें, उन्हें नष्ट न करनेसे उस विषयमें सिद्धि नहीं देखी जाती है। धनसे यह लोक और परलोक दोनों लोक ही प्राप्त होते हैं। निर्द्धन होनेसे जैसे धन और सत्य वचन नहीं रहता, वैसे ही निर्द्धन पुरुष जीते ही मरेके

समान समय बिताते हैं। यज्ञ कार्य्यके लिये धनको सब तरहकी उपायसे ग्रहण करे। हे भारत! यज्ञके वास्ते जो धन आवश्यक होता है, निषिद्ध उपायसे भी उसे जिस प्रकार ग्रहण करना उचित है, वैसे ही विहित और निषिद्ध कार्य्याकार्य्य विषयोंमें अर्थात् आपदकालमें प्रजा पीड़न करना योग्य है, और वही निरापदके समयमें निषिद्ध है; इससे उस प्रकारके विषयमें यह समान-दोष नहीं है। देश कालके अनुसार कार्य्य भी अकार्य्य होता है और अकार्य्य भी कार्य्य हुआ करता है। हे पृथ्वीपाल महाराज! धन-संग्रह और धन त्याग एक ही पुरुष में किसी तरह सम्भव नहीं होता, मैंने बनके बीच कभी धनवृद्ध मनुष्योंको नहीं देखा। इस पृथ्वीपर जो कुछ धन दीखता है, वह सब हमारा ही होवे, हमारा ही होवे; लोग ऐसी ही अभिलाषा किया करते हैं। हे शत्रुतापन! राज्य तुल्य धर्म्म और कुछ भी नहीं है, राजाओंको आपदकालमें बहुतसा कर ग्रहण करना पापमूलक नहीं है, निरापदके समयमें वही पापजनक हुआ करता है। इससे आपदके निमित्त अर्थ संग्रह करना पापयुक्त नहीं होता तब धन-मूलक राज्य भी हेय नहीं होसकता, कोई कोई दान और कर्म्म से तपस्वी होते हैं, कोई तपस्या करके ही तपस्वी हुआ करते हैं; दूसरे बुद्धि कौशल और दक्षतासे धनसञ्चय लाभ करते हैं। पण्डित लोग धनहीन पुरुषको ही दुर्ब्बल कहते हैं, धनवान पुरुष ही बलवान होता है; धनवान मनुष्यकी कुछ भी अप्राप्य नहीं है। कोष तथा कोषवाला राजा सब विपदसे पार होता है, कोषके जरिये धर्म्मकाम तथा इस लोक और परलोकमें सुख लाभ होता है; इससे धर्म्मपूर्व्वक उस धन लाभकी इच्छा करे, कभी अधर्म्मसे धन सञ्चय करनेकी इच्छा न करे।

१३० अध्याय समाप्त।

आपद्धर्म्म-प्रकरण।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! जो राजा धान्य-कोष आदि संग्रहसे रहित दीर्घसूत्र, बन्धु बध भयके कारण किलेसे बाहर निकलके युद्ध करनेमें असमर्थ, सदा शङ्कित, जिसके विचारको दूसरे लोगोंने सुना है, शत्रुओंने जिसके राज्यको विभाग कर लिया है, जो विषय रहित है, और मित्रोंको सब तरहसे सम्मान पूर्व्वक अपने वश करनेमें समर्थ नहीं हैं, जिसके सेवक लोग शत्रुओंके वशमें हुए शत्रु लोग जिसके सम्मुख वर्त्ती होरहे हैं, स्वयं निर्ब्बल होनेसे प्रबल वैरीके जरिये जिसका चित्त व्याकुल हुआ है; उसे अन्तमें क्या करना उचित है, वह कहिये।

भीष्म बोले, विजयके निमित्त बाहर हुए विजिगीषु राजा यदि धर्म्मपूर्व्वक धन प्राप्त करनेमें निपुण और पवित्र हो, तो शत्रुसे विजित पूर्व्वभुक्त राज्यको सान्त्ववादके सहारे उससे छुड़ाके शीघ्र सन्धि स्थापित करे। जो पुरुष बलवान और पाप बुद्धि होकर अधर्म्मके अनुसार विजयकी इच्छा करता है, कई एक गांव दान करके उसके साथमें भी सन्धि करनेमें सम्मत होवे, अथवा राजधानी परित्याग करके द्रव्य सञ्चय दानसे भी आपदसे पार होवे। यदि राजगुणसे युक्त होकर जीवित रहे, तो द्रव्य आदि फिर प्राप्त कर सकेगा; धन और सेना परित्याग करनेसे यदि सब आपद दूर हो, तो कौन धर्म्म अर्थको जाननेवाला राजा उस विषयमें आत्मदान किया करता है? अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रियोंकी रक्षा करे, वे यदि शत्रुके अधिकारमें हुई हों, तो उस विषयमें दया करनेकी आवश्यकता नहीं है सामर्थ्य रहते किसी प्रकार भी आत्म समर्पण करना योग्य नहीं है।

युधिष्ठिर बोले, सेवक आदि कोपित, किले तथा राज्य आदि शत्रुसे आक्रान्त खजाना खाली, और मन्त्रणा प्रकाशित होनेपर अन्तमें क्या करना उचित है।

भीष्म बोले, शत्रु धर्म्मात्मा होनेपर शीघ्र ही उसके सङ्ग सन्धिकी इच्छा करे, ऐसा होनेसे शीघ्र ही शत्रुको दूर किया जा सकता है अथवा धर्म्म युद्धमें प्राणको त्याग करके परलोकमें गमन करना ही कल्याणकारी है। थोड़ी सेना होनेपर भी यदि वह अनुरक्त, अभिपुत और हर्षयुक्त हो, तो पृथ्वीपति राजा उस ही से महीमण्डल जय कर सकता है। जो युद्धमें प्राणत्यागते हैं, वे इन्द्रलोक पाते हैं । सब लोकोंमें प्रसिद्ध बुद्धिका आश्रय करके युद्ध पथ परित्याग करनेके लिये जिस प्रकार शत्रुकी विश्वास होवे, उसही भाव विनय करे, स्वयं भी समयके अनुसार शत्रुका विश्वास करे; सेवक आदिकोंके प्रतिकूल रहनेपर युद्ध करनेमें असमर्थ होनेपर राजा शान्तिवादके सहारे शत्रुको शान्त करते हुए किलेसे बाहर होकर देश देशान्तरमें कुछ समय बिताके फिर अन्तमें मन्त्रणा अपने बलसे स्वयं राज्य जय करनेका उद्योग करे ।

१३१ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह ! पृथ्वीपर जिन सब वस्तुओंको उपजीव्य करके जीवन, धारण किया जाता है, उन सबके चोरी होनेपर भी राजाओंको सब उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित हैं,—यह सब लोक-सत्कृत धर्म्म नष्ट होनेपर इस आपदके समयमें जो ब्राह्मण दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं, वे कैसे उपायके जरिये जीवन धारण करेंगे ?

भीष्म बोले, हे राजन् ! विपदकाल उपस्थित होनेपर ब्राह्मण विज्ञान अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करें, इस जगत्में जो कुछ भोग्य वस्तु हैं, वे साधुओंके निमित्त उत्पन्न हुई हैं; दुष्टोंके वास्ते कुछ भी नहीं उत्पन्न हुई है। जो अपनेको अर्थागमका उपाय करके दुष्टोंसे धन ग्रहण करके साधुओंको दान करते हैं, वे सब धर्म्मोंको जानते हैं ; स्थान भ्रष्ट राजा किसी पुरुषको कोपित न करके अपनी प्रजा पालन धर्म्मकी अभिलाषा करते हुए दूसरेके अदत्त धनको पालन कर्त्ताका धन समझके ग्रहण करें । जो विज्ञान-बलसे पवित्र रहके निन्दित कार्य्य किया करते हैं ; उस वृत्तिविज्ञानवान धीर पुरुषको कौन निन्दा कर सकता है ? हे युधिष्ठिर ! जो लोग बलपूर्व्वक वृत्ति प्राप्त करते हैं, दूसरी रीतिसे प्राप्त करनेकी रुचि नहीं होती । बलवान पुरुष निज तेजोप्रभावसे ही जिविका निर्व्वाहमें प्रवृत्त होते हैं। आपदग्रस्त राजा निज राज्य और पर राज्यसे धन संग्रह करें । इस आपद्धर्म्मके उपयोगी सामान्य शास्त्रका अभ्यास करे ; मेधावी राजा उक्त शास्त्र और दोनों राज्यमें स्थित धनियोंमेंसे जो कदर्य्य और कार्य्यवशसे दण्डके योग्य हैं, उनके निकटसे धन लेके कोष सञ्चय करे ; इस विशेष शास्त्रको भी अविशेष भावसे वशमें करे । राजा अत्यन्त आपदग्रस्त होनेपर भी ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य्य और ब्राह्मणोंकी कदापि हिंसा न करे, उन लोगोंकी हिंसा करनेसे दोषग्रस्त होना पड़ेगा । यही लोगोंका नेत्र स्वरूप सनातन प्रमाण है, इससे चाहे यह उत्तम हो अथवा बुरा ही होवे आपदयुक्त राजाको ऐसा ही आचरण करना उचित है । ग्रामवासी बहुतेरे पुरुष क्रोधके वशमें होकर राजाकी निन्दा किया करते हैं, परन्तु राजा उन लोगोंके वचन अनुसार किसीको भी पुरस्कार वा तिरस्कार न करे । पुरोहित आदिके प्रतिवादको किसी प्रकारसे कहना वा सुनना न चाहिये ; यदि कोई सभामें उनकी निन्दा करे, तो दोनों कानोंको मूंद ले अथवा दूसरी जगह चला जावे, हे नरनाथ ! दूसरेकी निन्दा वा खलता करना दुष्टोंका स्वभाव-सिद्ध धर्म्म है ; साधुओंके बीच

जितने ही पुरुष केवल दूसरेके गुणोंको वर्णन किया करते हैं। जैसे दमनीय बच्छों तरह ढोनेमें समर्थ दान्त और सुन्दर बैल बोझाधारण करके ढोते हैं, आपद्युक्त राजा वैसा ही व्यवहार करे; जैसे व्यवहारसे उसे बहुतसी सहायता प्राप्त होवे, राजा वैसे ही आचारका प्रचार करे। पण्डित लोग आचारको ही धर्म्मका श्रेष्ठ लक्षण समझते हैं। शंख और लिखितके मतको अवलम्बन करनेवाले ऋषियोंका ऐसा अभिप्राय नहीं है, मत्सरता और लोभके वशसे जो वे लोग आचारको धर्म्म नहीं समझते; वैसा नहीं है; ऋषि शासन ही उनका अनुमोदनीय है; कुकर्म्म करनेवाले पुरुषोंको शासन करना ही ऋषियोंने वर्णन किया है; परन्तु श्रेष्ठ पुरुष यदि असत् मार्गको करे अवलम्बन तो उसे भी शासन करना उचित है। ऐसा वचन यद्यपि ऋषियोंने कहा है, यह ठीक है, तो भी उसके समान प्रमाण कहीं भी नहीं दीखता, इससे राजाओंको वैसा करना योग्य नहीं है; देवता लोग ही कुकर्म्मी अधम पुरुषोंको शासन किया करते हैं। जो राजा छलसे धन सञ्चय करता है, वह धर्म्मसे भ्रष्ट होता है। वेदमें कहे हुए, मनु आदि स्मृतियोंमें वर्णित, देश और कालके अनुसार साधुओंसे आचरित तथा सज्जनोंके हृदयमें स्वयं जो धर्म्म उत्पन्न होता है, राजा उसे ही अवलम्बन करे। जो वेदविहित, तर्कसे निश्चित, शास्त्रशास्त्र सम्मत और दण्डनीति प्रसिद्ध धर्म्मको कह सकते हैं, वेही धर्म्म जाननेवाले हैं; सांपके पैरको अन्वेषण करनेकी तरह धर्म्मका मूल अन्वेषण करना अत्यन्त कठिन कर्म्म है। जैसे व्याधा बाण विद्ध मृगके रुधिरसे भीगे हुए पांवके चिन्हको देखकर उसके गमन करनेके मार्गको मालूम करता है, धर्म्मके मार्गका अनुसन्धान करना वैसा ही है। हे युधिष्ठिर! इसी प्रकार साधुओंसे आचरित मार्गसे विचरण करना उचित है। महर्षियोंका इसी प्रकार चरित्र है तुम भी ऐसा ही करो।

१३२ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! राजा निज राज्य और परराज्यसे धन संग्रह करे, क्योंकि धनसेही धर्म्म और मूल राज्यकी बढ़ती हुआ करती है इससे धन इकट्ठा करके यत्नके सहित उसकी रक्षा करनी उचित है; और रक्षा करके उसकी वृद्धि करनी चाहिये, यही सनातन धर्म्म है। केवल पवित्रता वा नृशंसताके जरिये धन सञ्चय कभी न करना चाहिये; पवित्रता और नृशंसताके मध्यवर्त्ती होकर कोष संग्रह करना उचित है। बलहीन राजासे धन संग्रह नहीं होता, धनहीनका बल कहां? बलहीन होनेसे राज्य स्थिर नहीं रहता, राजहीनको श्री कहांसे होगी? महत् पुरुषको श्रीहानि मृत्युके समान है, इससे राजाको उचित है, कि जिस उपायसे धन, बल और मित्रोंकी बढ़ती हो, उसही विषयमें यत्नवान होवे। मनुष्य लोग धनहीनको अवज्ञा किया करते हैं, वे लोग अल्प धन पाके उससे सन्तुष्ट नहीं होते, और उसके कार्य्योंका करनेके वास्ते उत्साह प्रकाशित नहीं करते। राजा कोष सम्पत्तिके कारणसे ही परम सम्मानको प्राप्त होते हैं। जैसे वस्त्र स्त्रियोंके गोपनीय स्थलको छिपाता है, उसी प्रकार धन सम्पत्ति भी राजाके पापोंको सम्वरण किया करती है। पहिले राजा जिसके साथ विरोध किये रहता है, वह उसकी समृद्धिके समयमें अनुतापित होता है और जैसे बानरोंने जिघांसु पुरुषोंके मारनेके वास्ते उनका अनुसरण किया था, उसी प्रकार उक्त पुरुष कपट आचारके जरिये राजाको नष्ट करनेकी इच्छासे उसका आश्रय करते हैं। हे भारत! जो राजा इस प्रकार है, उसे सुख

कैसे हो सकता है ? इससे सब तरहसे उन्नतिके वास्ते चेष्टा करनी योग्य है; नीचा होना उचित नहीं है। क्योंकि उद्यम ही पुरुषार्थ कहाता है, असमयमें बल्कि भागना अच्छा है, तथापि किसीके समीप नीचा होना उचित नहीं है। बनका सहारा करके मृग समूहके साथ भ्रमण करना भी अच्छा है, परन्तु मर्य्यादा-रहित दस्युओंकी भांति सेवकोंका संसर्ग करना उचित नहीं है। हे भारत! भयङ्कर कार्य्योंमें डाकूके समान सेनाका संग्रह सहजमें ही सिद्ध होता है, अत्यन्त मर्य्यादारहित होनेपर सब लोग ही व्याकुल हुआ करते हैं, और डाकू लोग भी निर्द्दयी लोगोंसे अत्यन्त शङ्कित होते हैं; इससे जो मर्य्यादा लोगोंके चित्तको प्रसन्न करे, उसे ही स्थापित करनी उचित है; धन थोड़ा रहनेपर भी जनसमाजमें मर्य्यादा पूजित हुआ करती है। इस लोक वा परलोकमें पाप-पुण्यका फल भोग करना पड़ता है, साधारण लोग इसमें विश्वास नहीं करते हैं समझके भयसे शङ्कित नास्तिकके मतमें विश्वास करना उचित नहीं है। डाकुओंमें ऐसे पुरुष भी हैं, जो पराये धनको हरते हैं, परन्तु किसीकी हिंसा नहीं करते, इससे डाकू लोग मर्य्यादा-युक्त होनेपर अन्तमें सबकी रक्षा कर सकते हैं। जो पुरुष युद्ध करनेसे विरत हुआ है, उसका बध करना, स्त्री हरना, कृतघ्नता, ब्राह्मणोंका वित्त ग्रहण करना, सर्व्वस्व हरन करना कन्या पोषण, ग्राम आदि आक्रमण करके प्रभुत्वभावसे निवास और सम्भागके सहित परायी स्त्रीका पतिव्रत भङ्ग डाकुओंके विषयमें ये सब कार्य्य विशेषरूपसे निन्दनीय हैं, इस डाकुओंको इन सब कर्म्मोंको त्यागना उचित है। हे भारत! जो लोग दस्युओंके नाशके निमित्त अभिसन्धि करते हैं वे लोग उन्हें विश्वास उत्पन्न करके अशेष रूपसे उनके धन-सम्पत्तिको प्राप्त करके सन्धिबन्धन किया करते हैं; इससे उसका वित्त, स्त्री, पुत्र, विभव जो कुछ हो, वह सब राजाको अपने अधिकारमें करना उचित है। डाकुओंके साथ विरोध उपस्थित होनेपर अपनेको बलवान समझके उनके विषयमें नृशंस व्यवहार करना राजाको उचित नहीं है। जो राजा दस्युओंके स्त्री, पुत्र और धनसम्पत्तिकी रक्षा करते हैं, वे आप पर-हित होके राज्य भोग करनेमें समर्थ होते हैं, और जो दस्युओंको नष्ट करते हैं, उस ही कारणसे दूसरे डाकू लोग उन्हें सदा भय दिखाया करते हैं, इससे उन्हें आपदरहित होके राज्य पालन करना अत्यन्त कठिन होजाता है।

१३३ अध्याय समाप्त।

इस विषयमें इतिहासवेत्ता पण्डित लोग धर्म्म शासन वर्णन किया करते हैं, विशेषज्ञ क्षत्रिय राजा धर्म्म और अर्थको प्रत्यक्ष करते हैं; प्रत्यक्ष धर्म्मका शास्त्रोक्त विचार रूप परोक्ष धर्म्मके जरिये आचरण करना उचित नहीं है, पृथ्वीपर भेड़ियेके पैरका चिन्ह देखकर "यह भेड़ियेका पैर है, वा नहीं," ऐसे विचारके अनुसार प्रत्यक्ष धर्म्मको अधर्म्म कहके सन्देह करना अनुचित है। इस लोकमें किसी पुरुषने धर्म्मके फलको कदाचित नहीं देखा है। धर्म्म फलको बलरूपसे जानना उचित है, क्योंकि सब विषय ही बलवान पुरुषके वशमें रहते हैं। बलवान पुरुष ही धन, बल और सेवकोंको प्राप्त करते हैं। जो निर्द्धन हैं, वेही पतित हैं; जो कुछ अल्प है, वही उच्छिष्ट कहके गिना जाता है। बलवान पुरुषोंके अनेक निन्दित कर्म्म करने पर भी भयके कारण कोई उनका कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। धर्म्म और सत्य दोनों ही बलवान लोगोंको महत् भयसे परित्राण करते हैं। बल ही धर्म्मसे प्रबल बोध होता है, क्योंकि बलसे ही धर्म्म उत्पन्न हुआ करता

है ; पृथ्वी पर जङ्गम जीवोंकी तरह बल धर्म्ममें प्रतिष्ठित हो रहा है । जैसे धुआं वायुके वशमें होकर आकाशमें उड़ जाता है उसही भांति धर्म्म बलका अनुसरण करता है ; जैसे लता वृक्षका आसरा किया करती है, वैसे ही धर्म्म बलको अवलम्बन करके उसके ऊपर प्रभुता प्रकाशित नहीं कर सकता । जैसे सुख भोगवानके वशमें रहता है, वैसे ही धर्म्म बलवानके अधिकारमें है । बलवानोंको कुछ भी असाध्य नहीं है, उनके सब कार्य्य ही पवित्र हैं ।

दुराचारी और बलहीन पुरुषके परित्राणका उपाय नहीं है, बल्कि सब लोगही भेड़िये की तरह उससे व्याकुल हुआ करते हैं । ऐश्वर्य्यरहित अवज्ञात पुरुष अत्यन्त दुःखसे जीवन बिताता है ; घृणित जीवन और मरना दोनों ही समान हैं । पुराने लोग कहते हैं, कि पाप चरित्रोंके कारण जो पुरुष बान्धवोंसे परित्यक्त हुआ है, वह दूसरेके वचन रूपी शलाकासे घायल होके अत्यन्त ही दुःखित होता है । अधर्म्मसे धनका प्राप्त करनेमें जो पाप होता है, उसके छुड़ानेके विषयमें पहिलेके आचार्य्योंने ऐसा कहा है, कि पापी पुरुष वेद विद्याकी आलोचना, ब्राह्मणोंकी उपासना तथा मधुर वचन और कार्य्योंसे उन्हें प्रसन्न करे, उदार चित्तवाला होवे, महत् वंशमें विवाह करे, अपनी नम्रता प्रकाशित करके दूसरेका गुण कहे, स्नानशील होके जप करे, कोमल स्वभाव धारण करे, बहुत न बोले । बहुतेरे दुष्कर कार्य्योंको करके ब्राह्मण और क्षत्रियोंके समीप आश्रय ग्रहण करे ; लोग यदि उसकी निन्दा करें, तो बहुतसे पापोंको करनेवाला पुरुष उसकी चिन्ता न करे । पापकरनेवाला पुरुष ऐसा आचार कर सके तो शीघ्र ही पापसे रहित और सबमें आदर युक्त होता है, इस लोक और परलोकमें महत् सम्मान लाभ करता है, और एकमात्र सुकृतसे सब पापोंको धोकर विचित्र महा सुख भोग करनेमें समर्थ होता है ।

१३४ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, इस स्थलमें पुराने लोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, कि डाकू होके भी मर्य्यादा युक्त होने पर मरनेके अनन्तर वह नरकगामी नहीं होता । एक निषाद-स्त्रीके गर्भमें क्षत्रियके वीर्य्यसे कायव्य नाम क्षत्रिय धर्म्म पालक एक निषाद उत्पन्न हुआ था । वह दस्यु होने पर भी बुद्धिमान्, शूर, शास्त्रज्ञ और अनृशंस होनेसे आश्रमवासी ऋषियोंकी धर्म्मकी रक्षा, ब्राह्मणोंका हित साधन और गुरुजनोंका सम्मान करता था ; इन्हीं सब कारणोंसे उसने सिद्धि लाभ की थी । वह प्रतिदिन सवेरे और सामके समय मृगोंको उत्तेजित करता था, निषादोंके बीच वह मृग विज्ञान विषयमें अत्यन्त पण्डित था ; देश कालके विचारका विषय भी उससे छिपा नहीं था । वह सदा पारिपात्र पर्व्वत पर घूमते हुए सब जीवोंके धर्म्मको जानता था उसके सब बाण अमोघ और अस्त्र दृढ़ थे । वह अकेले ही कई सौ सेना जय करता था, महा वनके बीच बूढ़े, अन्धे और बहिरोंका सम्मान करता, सत्कार करके उन्हें मधु मांस फल तथा मूल भोजन कराता और माननीय लोगोंकी सेवा करता था, वनवासी सन्न्यासी ब्राह्मणोंकी पूजा करता, सदा मृगोंको मारके उन लोगोंको दान करता था । जो लोग लोक-भयसे उस दस्युसे मांस दान नहीं लेते थे, वह बड़े सवेरे उठके उनके घरमें मांस आदि रख जाता था । एक समय दयारहित और मर्य्यादा हीन कई हजार डाकुओंने उसके निकट आके उसे अपना अधिपति करनेकी प्रार्थना की । डाकू लोग बोले, आप देश, काल और मूहूर्त्तको विशेष रूपसे जानते हैं ;

आप बुद्धिमान, महाबलवान और दृढ़व्रती हैं, इससे हम सब लोगोंका यह अभिप्राय है, कि आप हमारे मुख्य ग्रामाध्यक्ष होवें। आप हमको जो आज्ञा देंगे, हम लोग वही करेंगे, इससे माता पिताकी तरह आप हम लोगोंको न्यायके अनुसार प्रतिपालन करिये।

कायव्य बोला, हे डाकूवृन्द! तुम लोग स्त्री, तपस्वी, डरपुक और बालकोंका वध न करना, जो पुरुष युद्ध करनेसे विरत हुआ है, उसका वध करना उचित नहीं है; बलपूर्वक स्त्रियोंको ग्रहण करना योग्य नहीं है; सब जीवोंके बीच कोई पुरुष ही स्त्रीवधकी विधि नहीं कहते। सदा ब्राह्मणोंका मङ्गल साधन और उन लोगोंको धन दान करनेके निमित्त दूसरोंसे युद्ध करना योग्य है, शस्य हरण करना उचित नहीं; विवाह आदि कार्य्योंमें विघ्न न करना सब जीवोंके बीच जिसके निकट देवता, पितर और अतिथि पूजित होते हैं, वेही ब्राह्मण वा मोक्षमार्गके अधिकारी है, सब वस्तुओंके दानसे जिस प्रकार उसकी उन्नति होवे, सब तरहसे वही करना योग्य है; ब्राह्मण लोग क्रुद्ध होके जिसके पराभव विषयकी मन्त्रणा करते हैं, तीनों लोकके बीच कोई भी उसका त्राता नहीं होता। जो पुरुष ब्राह्मणोंकी निन्दा करे, अथवा उनके नाशकी इच्छा करे; अन्धकारमें सूर्य्य उदय होनेकी तरह निश्चय ही उसकी पराजय होती है। तुम लोग इस ही स्थानमें वास करते हुए सब फल प्राप्तिकी अभिलाषा करना, जो बनिये हम लोगोंका दान न करेंगे। उनकी ओर सेना भेजी जावेगी। जो लोग शिष्टोंको शासन करते हैं, और उन लोगोंको वधरूपी दण्ड विहित है। जो लोग राजाके विषयमें उपद्रव करके जिस किसी उपायसे होवे, धनकी वृद्धि करते हैं, वे लोग दुःखप्रद कृमि समूहकी तरह थोड़े ही समयमें बध्य रूपसे गिने जाते हैं। जो सब डाकू लोग इस वनमें धर्म्मशास्त्रके अनुसार जीवन बिताते हैं, वे डाकू होनेपर भी शीघ्र ही सिद्धि लाभ करनेमें समर्थ होंगे।

भीष्म बोले, उन सब डाकुओंने, कायव्यके शासनको प्रतिपालन किया था, उससे सब ही उन्नति लाभ करके पापकर्म्मोंसे विरत हुए थे, कायव्यने साधुओंके विषयमें मङ्गल आचरण और डाकुओंको पापसे निवर्त्तन किया था, इससे उसने महती सिद्धि प्राप्त की थी, हे राजन्! जो लोग इस कायव्यके चरित्र विषयको सदा विचारते हैं, उन्हें वनवासी प्राणियोंसे कुछ भी भय नहीं होता। अधिक क्या कहें, सब दुष्ट प्राणियोंसे ही कुछ भय नहीं होता; वे वनके बीच राजा होकर निश्चित रूपसे निवास कर सकते हैं।

१३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, राजा लोग जिस उपायके जरिये कोष सञ्चय किया करते हैं उस विषयमें प्राचीन वृत्तान्तोंके जाननेवाले पण्डित लोग ब्रह्माकी कही हुई यह गाथा कहा करते हैं। कि यज्ञ करनेवाले ऋषियोंका धन और देवस्व हरण करना उचित नहीं है; क्षत्रिय राजा डाकू और क्रियाहीन लोगोंके धनको हरन कर सकते हैं। हे भारत! क्षत्रियोंको ही इन सब प्रजाओंको पालन करने और राज्य भोगनेका अधिकार है, इससे सब धन ही क्षत्रियोंके अधिकृत है दूसरेके नहीं। वह धन राजाके बल अथवा यज्ञका कारण हुआ करता है। जैसे लोग अभोग औषधियोंको काटके उससे भोगार्थ वस्तुओंको पाक किया करते हैं, वैसे ही दुष्टोंकी हिंसा करके साधुओंको प्रतिपालन करो। जो पुरुष देवता, पितर और मनुष्योंको हविके जरिये अर्चना करता है, धर्म्म जाननेवाले पुरुष उसके अर्थको अनर्थक कहा करते हैं। हे राजन्! धार्म्मिक राजा वही धन

हरण करे और उससे सब लोगोंको प्रसन्न करे; वैसे धनसे कोष सञ्चय न करे। जो अपनेको अर्थागमका उपाय करके दुष्टोंसे धन लेके साधु ओंको दान करते हैं, वेही सब धर्म्मोंके जाननेवाले हैं। जिसको जैसी शक्ति है, वे उसहीके अनुसार परलोक जय करें। उद्भिज और बज्र-कीट आदि जीव जैसे बिना कारणके ही उत्पन्न होके विस्तृत होते हैं; यश भी वैसे ही उत्पन्न होके क्रमसे प्रसारित हुआ करता है। जैसे गज आदिके शरीरसे दंस, मसक और चींटी आदिको पृथक् किया जाता है, अयाज्ञिक पुरुषके विषयमें वैसा ही व्यवहार करना उचित है; यह धर्म्मानुसार विहित होता है। जैसे भूमिपर पड़ा हुआ पांशु पत्थर आदिसे पिसकर अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है, इस लोकमें धर्म्म भी उसी प्रकार सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है।

१३६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! कार्य्य उपस्थित होनेके पहिले जो लोग उसके भावी फलको विचारते हैं, उनका नाम अनागत विधाता है; कार्य्य उपस्थित होनेपर जो लोग बुद्धि बलसे उसे सिद्ध करते हैं, उनका नाम प्रत्युत्पन्नमति है और उपस्थित कार्य्यमें आलसके वशमें होके जो लोग समय बिताकर विडम्बित होते हैं, उनका नाम दीर्घ सूत्र है। इस भूमण्डलपर ऊपर कहे हुए तीन प्रकारके लोगोंके बीच अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्नमति, ये दोनों पुरुष ही सुखलाभ किया करते हैं और दीर्घसूत्र पुरुष शीघ्र ही नष्ट होता है। इस समय दीर्घसूत्रको अवलम्बन करके कार्य्याकार्य्य निश्चय विषयमें एक उत्तम उपाख्यान कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो। हे कुन्तीनन्दन! बहुत सी मछलियोंसे परिपूरित स्वल्प जलसे युक्त किसी एक तालावमें शकुल नामकी तीन मछली सुहृदताके सहित आपसमें सङ्गी होकर बास करती थीं। उन तीनों सङ्गियोंके बीच पहिली अनागत विधाता दूसरी प्रत्युत्पन्नमति और तीसरी दीर्घसूत्र थी। किसी समय मत्स्यजीवी मछुवाहोंने अनेक तरहसे जल निकलनेके मार्गके जरिये उस तालावके जलको निम्न प्रदेशसे निकालनेका यत्न किया था। कार्य्य उपस्थित होनेपर क्रमसे उस तालावका जल थोड़ा होने लगा। उसे देखकर दीर्घदर्शी अनागत विधाता भयके कारण दूसरे दोनों मित्रोंसे बोली कि "सब जलचारोंको यह आपद उपस्थित हुई है इससे जबतक जल निकलनेका मार्ग दूषित नहीं होता है, उतने ही समयमें जितनी जल्दी होसके, हम लोग दूसरी जगह गमन करें। जो अनागत अनर्थको उत्तम नीतिसे निवारण करते हैं, वे कभी संशययुक्त नहीं होते; इससे तुम लोगोंको इस विषयमें अभिरुचि होवे, मैं जाती हूं।" ऐसा वचन सुनके दीर्घसूत्र बोली। हे भाई! तुम उत्तम कहती हो, परन्तु मेरा निश्चित विचार यह है, कि किसी विषयमें शीघ्रता करनी उचित नहीं है। अनन्तर प्रत्युत्पन्नमति दीर्घ दर्शीसे बोला, समय उपस्थित होनेपर मैं न्यायके अनुसार किसी कर्त्तव्य विषयको परित्याग नहीं करती। महा बुद्धिमान दीर्घदर्शी ऐसा वचन सुनकर उस ही स्रोतके जलसे निकलकर किसी गहरे तालावमें चली गई। अनन्तर मछुवाहोंने जब देखा, कि इस तालावका सब जल निकल गया, तब अनेक उपायके जरिये सब मछलियोंको बांध लिया। उस जलाशयके जल निकलने तथा विलोड़ित होनेके समय दीर्घसूत्र अन्य जलचरोंके सहित जालमें बंधा। मछुवाहोंने उस समय शनकी डोरीसे सब मछलियोंको गूंथना आरम्भ किया, प्रत्युत्पन्नमतिने उनके बीच प्रवेश करके मुखसे पहिली डोरी पकड़के स्थित हुआ। जालजीवियोंने सब मछलियोंको

गुंथी हुई समझा। अनन्तर जब बड़े तालाबमें सब मछलियें थोड़ी जाने लगीं, तब पूर्व्वोक्त प्रत्युत्पन्नमति रस्सी छोड़के शीघ्र भाग गई और बुद्धिहीन ज्ञान रहित मन्दात्मा मूढ़ दीर्घसूत्र नष्टेन्द्रिय लोगोंकी तरह नष्ट हुई। इसी प्रकार जो पुरुष मृत्युकाल उपस्थित होनेपर उसे मोहके वशमें होकर नहीं जान सकते, वे दीर्घसूत्र मछलीकी तरह शीघ्र ही नष्ट होते हैं। "मैं अत्यन्त बुद्धिमान हूं,"—ऐसा समझके जो पुरुष पहिलेसे अपने कल्याणका मार्ग ठीक नहीं करता वह प्रत्युत्पन्नमतिकी तरह संशयसे युक्त हुआ करता है। अनागत विधाता और प्रत्युत्पन्न ये दोनों ही सुखलाभ करते हैं, और दीर्घसूत्र पुरुष नष्ट होता है। काष्ठा, कला, मुहूर्त्त दिन, रात्रि, लव, महीना, पक्ष, ऋतु कल्प, सम्वत्सर, पृथिवी और देश आदि काल नामसे वर्णित हुआ करते हैं; परन्तु वह दीख नहीं पड़ते। अभिलषित विषयकी सिद्धिके निमित्त जिसकी जैसी चिन्ता की जाती है; वह उस ही रीतिसे सिद्ध हुआ करता है। धर्म्म अर्थ और मोक्ष विषयक सब शास्त्रोंमें महर्षियोंके जरिये दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्न मति प्रधान रूपसे वर्णित हुए और वे समय पर सब पुरुषोंके ही अभिमत हुआ करते हैं, जो परीक्षा पूर्व्वक कार्य्य सिद्ध करते हैं और जो लोग युक्तिके अनुसार सब कार्य्योंको पूरा करते हैं, वे देशकालके अनुसार सब लोगोंसे सम्मत होके दीर्घदर्शी और प्रत्युत्पन्नमतिसे भी अधिक फल पाते हैं।

१३७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरत श्रेष्ठ! सब विषयोंमें ही अपनी बुद्धिश्रेष्ठ है, यह वर्णित हुई है; अनागत और उत्पन्ना बुद्धि ही उत्तम है और दीर्घसूत्री बुद्धि नाश करने वाली है। हे भरतकुलधुरन्धर! इससे इस समय आपकी परमबुद्धिके विषयको सुननेकी इच्छा करता हूं, जिसे अवलम्बन करनेसे राजा शत्रुओंमें घिरके भी मोहको नहीं प्राप्त होते। हे कुरुश्रेष्ठ! आप धर्म्मार्थ विषयकी व्याख्या करनेमें निपुण, धर्म्म शास्त्रके जाननेवाले और बुद्धिमान हैं, इससे मैं जो कुछ पूछता हूं, उसे मेरे समीप वर्णन करना आपको उचित है। राजा अनेक शत्रुओंसे घिर कर जिस प्रकार निवास करें, वह सब विधिपूर्व्वक सुननेकी इच्छा करता हूं। राजाके अत्यन्त विपद युक्त होने पर पहिले दुःखित हुए शत्रु लोग इकट्ठे होके उसकी पराजयके लिये यत्नवान होते हैं। महाबलसे युक्त राजा लोग जब सहाय रहित, अकेले निर्व्वल राजाका आक्रमण करनेका यत्न करें, तो वह किस प्रकार स्थिति करनेमें समर्थ होगा? हे भरतश्रेष्ठ! किस तरह वह शत्रु और मित्र लाभ करते और शत्रु तथा मित्रोंके बीच उन्हें कैसी चेष्टा करनी उचित है? मित्र लक्षण युक्त सुहृद यदि शत्रु बन जावे, तो उसके विषयमें कैसा व्यवहार करें और कैसा आचरण करके सुखी होते हैं? राजा किसके साथ विग्रह करे, और किसके सङ्ग सन्धि बन्धन करे तथा बलवान होने पर भी शत्रुओंके बीच किस प्रकार निवास करे। हे महाभाग शत्रुतापन! सब कर्त्तव्य विषयोंमें इसे ही आप कर्त्तव्य समझके मुझसे कहिये; सत्यसन्धि शान्तनुनन्दन भीष्मके अतिरिक्त इस विषयका वक्ता दूसरा कोई भी नहीं है, और इसका श्रोता भी अत्यन्त दुर्लभ है।

भीष्म बोले, हे भरतकुल तिलक तात युधिष्ठिर! तुमने जो प्रश्न किया वह युक्तियुक्त और उसके सुननेसे सुख उत्पन्न होता है; इससे आपदकालमें जैसा कार्य्य करना चाहिये वह सब गुप्त विषय कहता हूं, सुनो। कार्य्योंके सामर्थ निबन्धनसे शत्रु भी मित्र बन जाता है,

मित्र भी शत्रुभावसे दूषित होता है; इससे कार्य्यकी गति सदा ही अनित्य है; तब कर्त्त-व्याकर्त्तव्य विषयको विशेषरूपसे निश्चय करना हो, तो देशकालका विचार करके किसीके विषयमें विश्वास करना और किसीके साथ विग्रह करना उचित है। हे भारत ! हितैषी पण्डितोंके साथकी शिक्षा करके भी सन्धि करनी उचित है और प्राणरक्षाकेवास्ते शत्रुके साथ भी सन्धि करनी योग्य है। जो मूर्ख पुरुष शत्रुओंके साथ सन्धि स्थापित नहीं करते, वे कोई अर्थवा फल लाभ नहीं कर सकते और जो पुरुष अर्थयुक्ति अवलम्बन करके समयके अनुसार शत्रुओंके साथ सन्धि और मित्रोंके सङ्ग विरोध करते हैं, महत् फल लाभ करते हैं। प्राचीन विषयोंके जाननेवाले पण्डित लोग इस विषयमें किसी वटवृक्षके निकटमें स्थित बिड़ाल और मूषिकके सम्वादयुक्त प्राचीन इति-हासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी महावनके बीच अनेक तरहके पक्षियोंसे युक्त, लतासमूहसे घिरा हुआ, बहुत बड़े शाखा और बादलकी तरह शीतल छायासे युक्त। सब वनमें व्याप्त व्याल और मृगसमूहसे परिपूरित बहुत बड़ा मनोहर बटका वृक्ष था। पलित नाम एक महाबुद्धिमान मूषिक उसके मूलस्थलके अव-लम्बसे सौ दरवाजेकी बिल बनाकर उसमें वास करता था। और पक्षियोंको भक्षण करनेवाला लोमश नाम बिड़ाल पहिलेसे ही उस वृक्षकी शाखाका सहारा करके परम सुखसे निवास करता था। बनवासी कोई चाण्डाल प्रतिदिन सूर्य्य अस्त होनेपर उस बट वृक्षके समीप आके पशुपक्षियोंके बन्धनके निमित्त कूटयन्त्र विस्तार किया करता था वह वहांपर यथा रीतिसे तांत-मय जालको बिछाके घरमें जाकर सुखसे सोता और रात बीतनेपर सबेरे वहां आके उपस्थित होता था, रातके समय अनेक तरहके मृग उस पाशजालमें बंध जाया करते थे। किसी दिन वह बिड़ाल प्रमादरहित होके भी उस जालमें बंध गया था। सदा आततायी शत्रु उस महा-बुद्धिमान बिड़ालके बंधनेपर पलित नाम चूहा अवसर पाके निर्भयताके सहित घूमने लगा। मूषिक विश्वस्तभावसे उस बनके बीच भक्ष्यवस्तुओंको खोजते हुए घूम रहा था, कुछ समयके अनन्तर उस जालमें बंधा हुआ मांस देखा, फिर उसने जालमें बंधे हुए शत्रुके विष-यमें मनही मन उपहास करते हुए कूटयन्त्रके ऊपर चढ़के मांस भक्षण करने लगा। उसने मांस भक्षणमें आसक्त होके एक महाघोर निज बैरीको समीप आते देखा। पृथ्वीपर बिलमें वास करनेवाले उस जन्तुका शरीर शर-पुष्पके समान, उसके नेत्र लालवर्ण, वह अत्यन्त चञ्चल था और उसका नाम हरितनकुल था। वह चूहेका गन्ध सूंघके शीघ्र उधर आने लगा और उसे भक्षणके वास्ते उर्द्धमुख होकर पृथ्वी पर स्थित रहा।

इधर उस चूहेने उस वृक्षके कोटरमें रह-नेवाले क्षपाचर तीक्ष्णतुण्ड चन्द्रक नाम एक दूसरे बैरी उलूकको वृक्षकी डालियोंपर भ्रमण करते देखा। चूहा नेवला और उलूकके बीच स्थित होकर अत्यन्त भयके वशमें होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगा, कि "यह अत्यन्त दुःखमय आपदके समय चारों ओरसे भय उत्पन्न और मरण सम्भव तथा मरण उप-स्थित होने पर हितैषी पुरुषको कैसा कार्य्य करना चाहिये।" चूहा इसी प्रकार चारों ओरसे घिरकर सब तरफ भयका कारण देखते हुए भयसे दुःखित होके सूक्ष्म बुद्धिसे विचार करने लगा; कि विपद नष्ट होनेके उपायके जरिये शीघ्र निवारण करके जीवनके समयको प्रशस्त करना उचित है, परन्तु चारों ओरसे मेरे समीप यह संशय युक्त समस्त आपद उप-स्थित हुई हैं। मैं यदि पृथ्वी पर गमन करूं तो सहसा नकुल आके मुझे भक्षण करेगा,

यहां पर रहनेसे उलूकके ग्रासमें पतित होना पड़ेगा और विड़ाल जालसे छूटने पर मुझे भक्षण करनेमें विलम्ब न करेगा, परन्तु मेरे समान बुद्धिमान पुरुष कभी मोहित होनेयोग्य नहीं है, इससे युक्ति और बुद्धिशक्तिके प्रभावसे जहांतक होसकेगा, मैं अपने जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करूंगा। नीतिशास्त्रको जाननेवाले, बुद्धिमान ज्ञानी पुरुष कठिन विपदमें पड़के उसमें नहीं फंसते। इस समय विड़ालसे उप-कारके अतिरिक्त दूसरा उपाय नहीं देखता हूं; परन्तु यह विषम शत्रु इस समय विपद-ग्रस्त हुआ है; इसका महत् उपकार करना मुझे उचित मालूम होता है। इस समय मैं तीन शत्रुओंके बीच घिरके किस प्रकार जीवन रक्षाकी आशा कर सकता हूं, इससे विड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, तौभी उसका आश्रय ग्रहण करना ही उचित मालूम होता है मैं नीति शास्त्रको अवलम्बन करके इसे हितका उपदेश प्रदान करूं, इस होके जरिये इन सब शत्रुओंको बुद्धि पूर्व्वक बञ्चना कर सकूंगा। यह मूढ़ विड़ाल मेरा सदाका शत्रु है, इस समय अत्यन्त विपदग्रस्त हुआ है, इससे स्वार्थ साधन करनेके लिये सङ्गतिके क्रमसे यदि इसे सम्मत कर सकूं, तभी जीवनकी रक्षा होगी। यह इस समय विपदग्रस्त हुआ है, इससे मेरे साथ सन्धि करनेसे कर भी सकता है। बलवान पुरुष विषम विपदमें पड़नेसे जीवनकी रक्षाके निमित्त सन्निकृष्ट शत्रुके साथ सन्धि करें, ऐसा प्राचीन आर्य्य लोग कहा करते हैं, पण्डित शत्रु भी अच्छा है; मूर्ख मित्र कदापि उत्तम नहीं है। इस समय शत्रु विड़ालके निकट मेरा जीवन प्रतिष्ठित है; जो हो, मैं इससे आत्म मुक्तिका उपाय करूंगा, यह शत्रु मूर्ख होने पर भी मेरे सहवासके कारण पण्डित हो सकेगा। चूहा शत्रुओंमें घिरकर इसी प्रकार चिन्ता करने लगा।

अनन्तर सन्धि विग्रहके समय और प्रयोजन सिद्धिके उपायको जाननेवाला चूहा धीरज देके विड़ालसे यह बचन बोला, हे विड़ाल! मैं सुहृ-दभावसे तुमसे कहता हूं, कि तुम जीवित हो न? मैं तुम्हारे जीवनकी रक्षा हो, ऐसे ही इच्छा करता हूं, क्यों कि वह हम दोनोंके वास्ते कल्याणकारी है, हे प्रिय दर्शन। तुम भय मत करो, सुखपूर्व्वक जीवित रहोगे। तुम यदि मेरी हिंसा करनेकी इच्छा न करो, तो मैं तुम्हें विप-दसे छुड़ाऊंगा। इस विषयमें कोई उत्तम उपाय है, और मेरे अन्तःकरणमें मालूम होरहा है, जिसके जरिये तुम मेरे सहारे विपदसे छूटोगे, और मैं भी कल्याण लाभ कर सकूंगा आत्मबुद्धि विचारसे मैंने अपने और तुम्हारे कल्याण सिद्धिके वास्ते ऐसा उपाय देखा है, वह मेरे और तुम्हारे दोनोंके ही वास्ते कल्या-णकारी है। हे विड़ाल। यह नकुल और उलूक पापबुद्धि अवलम्बन करके मेरे सम्मुख वर्त्तमान हैं, ये दोनों यदि मुझे आक्रमण न कर सकें, तभी इस समय मेरा मङ्गल है। यह वृक्षका डालके ऊपर बैठा हुआ चञ्चल नेत्र-वाला पापात्मा उलूक चिल्लाते हुए मुझे देख रहा है, इससे मैं इसके भयसे अत्यन्त व्याकुल होरहा हूं। साधुओंकी आपसमें सप्त पद उच्चा-रण पूर्व्वक आलापसे ही मित्रता होती है, तुम मेरे वही मित्र और पण्डित हो, मैं तुम्हारे साथ यथार्थ मित्रका कार्य्य करूंगा, अब तुम्हें कुछ भय नहीं है। हे विड़ाल! तुम मेरे बिनाश्रय जालको काटनेमें समर्थ न होगे, यदि मेरी हिंसा न करो, तो मैं तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा, तुम इस वृक्षके अग्रभाग और मैं इसके मूलको अवलम्बन करके बास कर रहा हूं हम दोनों ही बहुत दिनोंसे इस वृक्षका आश्रय करके बास कर रहे हैं, वह तुमसे छिपा नहीं है। जो पुरुष किसीका विश्वास नहीं करता और जिसका कोई विश्वास नहीं करते वेही सदा

व्यग्रचित्त दोनों पुरुषोंकी पण्डित लोग प्रशंसा नहीं करते, इसलिये हम लोगोंके सदाका सहवास और प्रीति परिवर्द्धित हो; प्रयोजनका समय बीतनेपर पण्डित लोग निन्दा किया करते हैं, इससे इस विषयमें यही यथार्थ युक्ति समझो, तुम यदि मेरे जीवन रक्षाके अभिलाषी होगे, तो मैं भी तुम्हारे जीवनकी रक्षा करनेके वास्ते इच्छा करूंगा। कोई मनुष्य काष्ठके सहारे अत्यन्त गहरी महानदी पार होता है, वैसे ही हम दोनोंके मिलापका परिणाम सुखप्रद होवे मैं तुम्हें जालसे छुड़ाऊंगा, तुम भी मुझे विपदसे बचाओगे। मूषिकवर पलित इसी प्रकार दोनोंके हितकर युक्तियुक्त ग्रहणीय वचन कहके समयकी अपेक्षा करते हुए देखने लगा।

अनन्तर चूहेका शत्रु विचक्षण विड़ाल उसका युक्तियुक्त सुनने योग्य सुन्दर वचन सुनके उत्तर दिया; और वह बुद्धिमान तथा वाक्य निपुण विड़ाल चूहेके वचनको सुनके और अपनी अवस्था देखके सन्धि करनेमें सम्मत हुआ। अन्तमें तीक्ष्ण दांत और वैदूर्य्यनेत्र विड़ालोंमें मुख्य लोमश चूहेको धीरे धीरे देखके बोला। हे प्रियदर्शन! तुम्हारा कल्याण होवे, तुम जो मेरे जीवन रक्षाके वास्ते यत्न करते हो उससे मैं अत्यन्त ही आनन्दित हुआ हूं यदि कल्याणका उपाय जानते हो, तो करो; विलम्ब मत करो। मैं आपदग्रस्त हूं और तुम मुझसे भी अधिक आपदमें पड़े हो, इससे दोनों आपदग्रस्तोंकी सन्धि होवे; विलम्बका प्रयोजन नहीं है। समयपर जिसमें कार्य्य सिद्धि हो, वैसा ही करो; मैं इस कष्टकरी विपदसे छूटनेपर तुम्हारे किये हुए उपकारको व्यर्थ नहीं करूंगा। मैं मान त्यागके तुम्हारा अनुरक्त, भक्त, शिष्य, हितकारी होकर शरणागत हुआ हूं।

मूषिकवर पलितने विड़ालका ऐसा वचन सुनके उसे अपने वशमें जानकर विनयपूरित अर्थयुक्त हितकर वचनसे बोला, कि आपने जो उदार वचन कहे, वह तुम्हारे समान पुरुषके विषयमें विचित्र नहीं है, दोनोंके हितके निमित्त मैंने जिस उपायका विधान किया है, वह मुझसे सुनो। नेवलसे मुझे अत्यन्त भय लगता है, इससे मैं तुम्हारे समीप बैठता हूं, मैं तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ हूं; इससे आप मेरी रक्षा कीजिये, वध न करना; उल्लूआश्रय उल्लू मुझे आक्रमण करनेकी आशा करता है, इससे उससे मुझे बचाओ। हे मित्र! मैं सत्यपूर्व्वक शपथ करता हूं; कि तुम्हारा समस्त पाश काट दूंगा।

लोमशने पलित चूहेका युक्ति और अर्थयुक्त वचन सुनके हर्षके वशमें होकर उसे देखके स्वागत वचनसे सम्मानित किया। अनन्तर वह वीरवर विड़ाल सुहृदभावसे स्थित हो प्रसन्नता और शीघ्रतासे पलितकी सम्मानित करके विशेष चिन्ताके अनन्तर बोला, हे मित्र! जलदी आओ, तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम मेरे प्राण समान सखा हो। हे बुद्धिमान! तुम्हारी ही कृपासे मैं जीवन लाभ करूंगा। इस सङ्कटके समयमें मैं तुम्हारा जो कुछ उपकार कर सकूं, उसकी तुम आज्ञा करो; मैं वैसा ही करूंगा। हे मित्र! हम दोनोंमें सन्धि रहे, इस विपदसे छूटनेपर मैं मित्रों और बन्धु बान्धवोंके सहित तुम्हारा जो कुछ प्रिय और हितकर कार्य्य होगा, वह सब सिद्ध करूंगा। हे प्रियदर्शन! इस विपदसे छूटनेपर मैं तुम्हारी प्रसन्नता तथा सत्कार साधन करूंगा। उपकृत पुरुष बहुतसा प्रत्युपकार करके भी पूर्व्व उपकारकी समानता नहीं कर सकता। उपकृत पुरुष पहिले उपकारका स्मरण करके प्रत्युपकार किया करता है, और प्रथम उपकर्त्ता निष्कारण ही उपकार करता है।

भीष्म बोले, चूहेने स्वार्थसाधनके लिये विड़ालको इस प्रकार सम्मत करके विश्वासपूर्व्वक उस अपराध करनेवालेके गोदमें प्रवेश

किया। बुद्धिमान चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार आश्वासित होकर पिता माताकी तरह विश्वस्त होकर उसकी छातीपर शयन किया। नकुल और उल्लू चूहेको बिड़ालके शरीरमें लीन होते देखकर निराश हुए और उन दोनोंकी परम प्रीति देखके अत्यन्त भयभीत तथा विस्मययुक्त होगये। वे लोग बलवान, बुद्धिमान, सत्स्वभाव और सन्निहित होके भी बलपूर्व्वक चूहेको आक्रमण करनेमें असमर्थ होगये। उल्लू और नकुल बिड़ाल और चूहेको कार्य्यवशसे सन्धि करते देखकर दोनों ही शीघ्र ही निज स्थानपर चले गये।

हे महाराज! अनन्तर देशकालका जाननेवाला पलितला समयकी उपेचा करते हुए थोड़ा थोड़ा बिड़ालके शरीरके पाशको काटने लगा। अनन्तर बिड़ाल बन्धनके दुःखसे अत्यन्त क्लेशित रहके चूहेको पाश काटनेमें बिलम्ब करते देखकर आतुरताके सहित शीघ्रता करने लगा।

बिड़ाल बोला, हे मित्र! तुम बिलम्ब क्यों करते हो? स्वयं कृतकार्य्य होकर क्या तुम मेरी अवज्ञा करते हो। हे शत्रुनाशन! व्याधा आगे आरहा है, इससे तुम जल्दी पाश काटो। शीघ्रता करनेवाले बिड़ालके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान पलित चूहेने अपक्वबुद्धि बिड़ालसे पथ्य और आत्महितकर वचन कहा। हे प्रिय दर्शन! तुम मौनभावसे रहो, शीघ्रता और भय करना, तुम्हें उचित नहीं है, मैं समयज्ञ हूं इससे प्रकृत समय परित्याग नहीं करता। हे मित्र! असमयमें आरम्भ कार्य्य करनेवालेका. प्रयोजन सिद्ध नहीं होता और वह कार्य्य ही समयपर न होनेसे महत् भय उत्पन्न करता है तुम्हारे असमयमें बन्धनसे छूटनेपर तुमसे मुझे भयकी सम्भावना है, इससे समयकी प्रतीक्षा करो, शीघ्रता क्यों करते हो? शस्त्रधारी चाण्डालको जब आते देखोगे, तभी हम लोगोंको ज्योंही भय होगा; त्योंही तुम्हारे पाशको काट दूंगा; उस ही समय तुम बन्धनसे छूटके वृक्षके ऊपर चढोगे, तुम्हारे जीवन रक्षाके अतिरिक्त मुझे दूसरा कोई भी कार्य्य नहीं है। हे लोमश! तुम्हारे त्रसित तथा डरकर भागनेपर मैं बिलमें प्रवेश करूंगा, तुम भी वृक्षकी शाखाको अवलम्बन करोगे। चूहेने जब आत्महित साधनके निमित्त बिड़ालसे ऐसा कहा, तब जीनेकी इच्छा करनेवाला वाक्य तत्वज्ञ महाबुद्धिमान लोमश आत्मकार्य्यको पूर्ण रीतिसे सिद्ध करनेके निमित्त शीघ्रता करके पाशको काटनेमें बिलम्ब करनेवाले चूहेसे बोला, मित्र साधु लोग प्रीतिपूर्व्वक इस प्रकार मित्रका कार्य्य नहीं करते; मैंने जैसे शीघ्रताके सहित तुम्हें विपदसे मुक्त किया, तुम्हें भी वैसे ही शीघ्रताके सहित मेरा हित साधन करना उचित है। हे बुद्धिमान्! इस समय जिससे हम दोनोंका कल्याण होवे, तुम उस विषयमें यत्नवान करो, अथवा यदि तुम पहिले बैरको स्मरण करके समय बितावोगे, तो इस पापके कारण विशेष रूपसे तुम अपनी आयुको नष्ट होती देखोगे। यदि अज्ञानताके कारण पहिले मैंने कुछ पाप कर्म्म किया हो,तो उसे तुम स्मरण मत करो, मैं क्षमा प्रार्थना करता हूं, तुम मेरे ऊपर प्रसन्न हो जावो। बिड़ालके ऐसा कहने पर शास्त्र जाननेवाला बुद्धिमान विज्ञ चूहा उस समय उससे यह हितकर वचन बोला कि, हे बिड़ाल! तुमने निज प्रयोजन सिद्धिके लिये व्याकुल होके जो सब वचन कहा, उसे मैंने सुना है; और मैंने भी अपने प्रयोजन सिद्धिकी अभिलाषासे कातर होके तुमसे जो कहा है, उसे तुम जानते हो। जो मित्र अत्यन्त भयभीत और जो भयसे विचलित है, सांपके मुखसे निज हाथ बचनेकी तरह उसकी यथा रीतिसे रक्षा करनी उचित है। जो पुरुष बलवानके साथ सन्धि करके आत्मरक्षाका उपाय नहीं करता, उसके भुक्त अन्न आदि अपथ्य वस्तुकी तरह

उपकारक नहीं होते । इस जगत्में बिना कारणके कोई पुरुष किसीका मित्र वा सुहृत् नहीं होता ; स्वार्थ साधनकेही निमित्त शत्रु मित्रोंका सङ्घटन हुआ करता है । जैसे पाले हुए हाथियोंसे जङ्गली हाथियोंको बांधते हैं, वैसे ही स्वार्थके सहारे ही स्वार्थ साधन हुआ करता है, सार्थ हो जानेपर कोई करनेवालेको और नहीं देखता ; इससे सब कार्य्योंको ही विशेष रीतिसे करना योग्य है । हे लोमश ! तुम उस समय व्याधाके भयसे भागनेमें तत्पर होगी, इससे मुझे पकड़ न सकोगी । मैंने अनेक तांतोंको काट दिया है, अब केवल एक ही तांत बाकी है ; उसे भी जल्दी काटूंगा, तुम निश्चिन्त रहो । विपदयुक्त चूहा और बिड़ालके इसी प्रकार वार्त्तालाप करते हुए रात्रि बीत कर सबेरा हुआ । रात्रि बीतकर सबेरा होनेपर लोमशके हृदयमें भय उत्पन्न होने लगा । अनन्तर भोरके समय एक विकृत-रूपवाला, कृष्ण पिंगल वर्ण, स्थूल नितम्बवाला, कुशरीरसे रुक्ष-मूर्त्ति, ऊंचे कानोंसे युक्त, बृहत् वक्र कुत्तोंके समूहसे घिरा हुआ, मलिन, बदसूरत और हाथमें शस्त्र लिये हुए परिघ नाम चाण्डाल दीख पड़ा । बिड़ाल उस यमदूतके समान चाण्डालको देखकर त्रस्तचित्त तथा भयभीत होके चूहेसे बोला, मित्र ! इस समय क्या करोगे ? चूहेने बिड़ालका ऐसा वचन सुनते ही पाश काट दिया । बिड़ालने बन्धनसे छूटकर और शत्रुके महाघोर भयसे मुक्त होकर उस वृक्ष पर चढ़के उसकी शाखाका अवलम्बन किया पलित चूहा भी बिलमें घुस गया ।

हे भरतश्रेष्ठ ! इधर चाण्डाल वागुरा ग्रहण करके क्षण भरमें सब तरफ देखके निराश होकर निज स्थान पर चला गया । अनन्तर वृक्षकी शाखा पर बैठे हुए लोमशने वैसी विपदसे छूटके तथा दुर्लभ जीवन लाभ करके बिलके बीच स्थित पलितको पुकारके कहा, हे मित्र ! तुम मेरे साथ क्यों बिना कुछ वार्त्तालाप किये ही सहसा निज स्थान पर गये हो ? तुमने मेरा जैसा उपकार किया है, वह मुझे सदाके वास्ते स्मरणीय है और मैं तुम्हारा उपकार करनेमें समर्थ हूं ; इसे जान कर भी तुम मेरी शङ्का तो नहीं करते हो ? हे मित्र ! तुम मेरे विश्वास पात्र होके प्राणदान करके सुख भोगके समय निकट क्यों नहीं आते हो ? जो पुरुष पहिले मित्रता करके फिर उसका अनुष्ठान नहीं करता, वह नीचबुद्धि कष्टकारी आपदके समय मित्र लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता । हे मित्र ! तुमने सामर्थ्यके अनुसार मेरा सत्कार किया है, मैंने भी आत्म सुखमें आसक्त होकर तुम्हारे साथ मित्रता की है, इससे मेरे साथ सुख भोग करना तुम्हें उचित है । मेरे जो सब बन्धुबान्धव, सम्बन्धी आदि आत्मीय हैं, वे सब इस प्रकार तुम्हारा सम्मान करेंगे, जैसे शिष्य लोग गुरुकी सेवा करते हैं ; तुम मेरे प्राणदाता हो, इससे मैं भी तुम्हारा और तुम्हारे बन्धु, बान्धवोंका सम्मान करूंगा ; कौन कृतज्ञ पुरुष अपने जीवन दाताकी पूजा नहीं करता ? तुम मेरे शरीर, घर तथा सब धनके स्वामी बनो और मुझे सत् उपदेश प्रदान करो । हे बुद्धिमान् ! तुम मेरे अमात्य बनो और पिताकी तरह मुझे बुद्धि दान किया करो । मैंने अपने जीवनकी शपथ करके कहा है कि मुझसे तुम्हें कुछ भी भय नहीं है ; तुम बुद्धि कौशलमें साक्षात् शुक्राचार्य्य हो इससे मन्त्रबलसे मेरा जीवन दान करके तुमने हम लोगोंके ऊपर अधिकार किया है । बिड़ालने इसी प्रकार चूहेसे सान्त्व वचन कहा, तब परमार्थको जाननेवाला चूहा कोमल भावसे आत्महितकर वचन कहने लगा । वह बोला, हे लोमश ! तुमने जो कुछ कहा, मैंने वह सब सुना, इस समय मैं जो कुछ विचार सिद्ध जानके कहता हूं, उसे सुनो । शत्रु मित्र दोनोंको ही

विशेष रूपसे मालूम करना उचित है, इससे ही लोग प्राज्ञ सम्मत अत्यन्त सूक्ष्म विषय कहा करते हैं। शत्रुरूपी मित्रों और मित्ररूपी शत्रुओंके साथ सन्धि होने पर भी काम क्रोधके वशमें रहनेवाले पुरुष उसे प्रकृत रीतिसे मालूम नहीं कर सकते। इस जगत्में कभी स्वाभाविकही कोई किसीका मित्र वा शत्रु नहीं होता, कार्य्य वशसे ही मित्र और शत्रु हुआ करते हैं। जो पुरुष निज प्रयोजन सिद्धिके वास्ते जिसे अवलम्बन करके जीवन धारण करते हैं, यदि उसको पीड़ा देखें, तो प्राण त्याग किया करते हैं, जबतक उस भावका विपर्य्यय नहीं होता, तबतक वह उसके मित्र हुआ करते है। सुहृदता और शत्रुता स्थिर नहीं रहती; प्रयोजनसे ही शत्रु वा मित्र हुआ करते हैं। कालक्रमसे मित्र भी शत्रु होता और शत्रु भी मित्र हुआ करता है, इससे स्वार्थ ही बलवान है। जो पुरुष प्रयोजन न जानके मित्रोंका विश्वास करता है, वह शत्रुओंके विषयमें अविश्वास स्थापित किया करता है, उसका जीवन विचलित होता है। शत्रु वा मित्रके विषयमें प्रयोजन न जानके जो पुरुष प्रसन्न-चित्त होता है, उसको भी बुद्धि विचलित होजाती है। अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे, विश्वासी पुरुषका भी अत्यन्त विश्वास करना उचित नहीं है; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़को काटता है। पिता, माता, पुत्र, मामा, भानजे सम्बन्धी और बान्धव आदि प्रयोजनके अनुसार प्रिय हुआ करते हैं। प्रिय पुत्रके पतित होने पर पिता माता उसे परित्याग करके जन समाजमें अपनी रक्षा करते हैं, इससे स्वार्थ कैसा सारवान है; उसे मालूम करो। हे बुद्धिमान्! जो पुरुष किसी विपदसे छूटने पर फिर शत्रुके सुखका उपाय खोजता है; उसकी प्रायः निष्कृति नहीं होती; तुम वटवृक्षसे इस स्थान पर उतरे थे; परन्तु पहिलेही जो जालबन्धन संयोजित हुआ था; चपलताके कारण उसे न जान सके। मनसे चञ्चल दूसरा कुछ भी नहीं है, इससे दूसरेकी चपलता किस प्रकार अधिक हो सकती है? इसलिये चित्त चञ्चल होनेसे निश्चय ही सब कार्य्य नष्ट होते हैं। इस समय तुम जो मुझसे मधुर बचन कहते हो, वह मुझे प्रसन्न करनेवाला है यह ठीक है, परन्तु मैं भी विस्तार पूर्वक मित्रताके उपायसे युक्त जो कथा कहता हूं, उसे सुनो। इस संसारमें लोग कारणके अनुसार ही सबके प्यारे होते हैं और कारणके अनुसार ही द्वेष हुआ करता है; जीव मात्र ही प्रयोजन चाहनेवाले हैं, इससे बिना कारणके कोई किसीका प्रिय नहीं होता, दो सहोदर भाइयोंका सौभ्रात्र और दम्पतिका परस्पर प्रेम जब बिना कारणके नहीं है, तब इस जगत् में किसीकी प्रीति निष्कारण होसकती है, ऐसा नहीं देखा गया है, तब भाई और भार्य्या किसी कारणसे क्रुद्ध होनेपर भी वे लोग स्वाभाविक प्रसन्न हुआ करते हैं, दूसरे लोग उस तरह प्रीतियुक्त नहीं होते। इस जगत्में कोई दानके जरिये प्रिय होता है, कोई प्रिय बचनसे प्यारा बनता है; दूसरे कार्य्यके निमित्त मन्त्र, होम और जपसे प्रीतिलाभ करते हैं। हम दोनोंकी प्रीति विशेष कारणसे उत्पन्न हुई थी, इस समय उस कारणकी समाप्ति हुई है, इससे दूसरा कोई श्रेष्ठ कारण रहनेपर भी वह प्रीति निवर्त्तित होती है। ऐसा कौनसा कारण है,—जिससे मैं तुम्हारा प्यारा बन सकूं, बिना कारणके जैसा व्यवहार करना होता है, उसे मैं विशेष रूपसे जानता हूं। काल ही कारणको सुधारता है, कारण कभी स्वार्थसे रहित नहीं होता। बुद्धिमान पुरुष स्वार्थ विषयमें निपुण हैं, इससे लोग प्राज्ञ पुरुषोंका ही अनुवर्त्तन किया करते हैं। स्वार्थको जाननेवाले विद्वान पुरुषके विषयमें ऐसा बचन कहना तुम्हें उचित नहीं है। तुम

मेरे विषयमें स्नेह प्रकाश कर सकते हो, यह ठीक है, परन्तु यह उस स्नेहके प्रकाशका समय नहीं है; इससे स्वार्थके कारणसे मैं अस्थिर सन्धि-विग्रह विषयमें विलक्षण रीतिसे स्थिर हूं। यह सब सन्धि विग्रह क्षण क्षणमें बादलकी तरह अनेक प्रकारके रूप धारण करते हैं; तुम आज ही मेरे शत्रु थे, अभी हमारे मित्र हुए; फिर आज ही मेरे शत्रु हुए हो, इससे सब योगोंकी कैसी चपलता है, उसे देखो। पहिले जबतक कारण था, तबतक हम लोगोंकी मित्रता थी, इस समय वह मित्रता चली गई है, वह कालके अनुसार दूसरे किसी कारणसे नहीं हो सकती। तुम स्वाभाविक ही मेरे शत्रु हो परन्तु दूसरे वैरीसे मेरी रक्षा करनेकी सामर्थ्यके कारण मित्र हुए थे, उस मित्रताका कार्य्य निवृत्त हुआ है। अब स्वभावसे शत्रुभाव धारण किया है, इससे मैं प्राचीन पुरुषोंके बनाये हुए शास्त्रोंको जानके किस प्रकार तुम्हारे कृतपाशमें प्रवेश करूं? मैं तुम्हारे बलवीर्य्यके सहारे विपदसे मुक्त हुआ हूं, तुम भी मेरी सामर्थ्यके प्रभावसे विपदसे पार हुए हो; इससे जब आपसका अनुग्रह निवृत्त हुआ है, तब फिर समागम नहीं होसकता। हे प्रियदर्शन! इस समय तुम कृतार्थ हुए हो, मेरा भी प्रयोजन सिद्ध हुआ है, इससे मुझे भक्षण करनेके अतिरिक्त आज तुम्हारा मेरे सङ्ग कुछ भी कार्य्य नहीं है। मैं भक्ष्य हूं, तुम भोक्ता हो, मैं निर्बल और तुम बलवान हो; ऐसे असदृश सम्बन्धके स्थानमें हम दोनोंकी सन्धि नहीं होसकती। इस समय मैं तुम्हारे बुद्धि कौशल विषयमें ऐसा ही मालूम करता हूं कि आपदसे छूटके अब तुम अनायास कर्मके जरिये भक्ष्य लाभकी इच्छा करते हो, तुम भक्ष्यके वास्ते ही बन्धे थे, और क्षुधासे पीड़ित होनेपर मेरे सहारे मुक्त हुए हो। इस समय शास्त्रसिद्ध बुद्धि अवलम्बन करके मुझे भक्षण करना, मैं तुम्हें भूखा समझता हूं और तुम्हारे भोजनका समय भी उपस्थित हुआ है। इससे तुम मुझे ही लक्ष्य करके भक्ष्य खोज रहे हो। मित्र! तुम स्त्री-पुत्रोंके बीचमें रहके भी जब मेरे साथ सन्धि करके सेवा करनेमें यत्नवान होरहे हो; तब मैं उसमें सम्मत होनेमें समर्थ नहीं हूं। तुम्हारी प्रियभार्य्या और प्रणयीपुत्र तुम्हारे सङ्ग मुझे स्थित देखके भक्षण करनेमें क्यों विरत होंगे? समागमका कारण शेष हुआ है, इससे अब मैं फिर तुम्हारे साथ न मिलूंगा; यदि तुम कृतज्ञता स्मरण करो, तो स्वस्थ रहके मेरी कल्याणकी चिन्ता करते रहो, जो असत् शत्रु क्लेश युक्त और भूखा होकर अपना भक्ष्य खोजता है, कौन बुद्धिमान पुरुष उसके अधिकारमें गमन करता है? तुम्हारा कल्याण होवे, मैं जाता हूं। मैं तुमसे दूर रहके भी व्याकुल होता हूं। हे लोमश! इससे मैं तुम्हारे साथ न मिल सकूंगा तुम निवृत्त रहो। और यदि तुम कृतज्ञ होनेकी अभिलाष करते हो, तो इसकुलका स्मरण करो; मेरे विश्वस्त तथा असावधान रहनेपर कभी मेरा अनुसरण न करना, ऐसा होनेसे ही सौहृदारक्षा हुई।

निर्बल पुरुषको बलवानके साथ संश्रव रखना कभी उत्तम नहीं है, भयका कारण शेष होनेपर भी निर्बल पुरुषको बलवानके समीप सदा भय करना उचित है। यदि तुम्हारा दूसरा कुछ प्रयोजन हो तो कहो क्या करूं? मैं तुम्हारी अभिलषित सब वस्तुओंको ही प्रदान कर सकता हूं परन्तु आत्म प्रदान नहीं कर सकता; अपने वास्ते पुत्र, कन्या, धन, रत्न और राज्य पर्य्यन्त परित्याग किया जासकता है, इससे सर्व्वस्व परित्याग करके भी स्वयं अपनी रक्षा करे। अपनी रक्षाके वास्ते जो सब धन रत्न आदि ऐश्वर्य्य शत्रुके हाथमें समर्पण किया जाता है, जीवित रहने पर वह सब फिर निज हस्त-

गत हो सकता है ; आत्म प्रदान करनेसे धन रत्नोंकी तरह वह फिर नहीं लौटता ; इससे आत्म प्रदान किसीको भी इष्ट नहीं है, यह मैंने जन समाजमें सुना है, इससे तुम यह सब आलोचना करके इस अध्यवसायसे निवृत्त हो आओ। भार्य्या और धन आदिसे सदा आत्माकी रक्षा करनी उचित है, जो सब पुरुष आत्म रक्षामें तत्पर होकर विचार पूर्व्वक कार्य्य करते हैं; उन्हें निज दोष जनित आपदकी सम्भावना नहीं होती जो स्वयं निबल होनेपर भी शत्रुको भली भांति बलवान रूपसे मालूम होते हैं, उनकी शास्त्रदर्शिनी स्थिर बुद्धि कभी विचलित नहीं होती। पलित चूहाने जब मार्ज्जारको इस प्रकार विस्पष्ट निन्दा की तब वह लज्जित होकर चूहेसे कहने लगा ।

लोमश बोला, हे मित्र ! मैं तुम्हारे साथ सत्य शपथ करता हूं, कि मित्रके सङ्ग अनिष्ट आचरण करना अत्यन्त निन्दित कर्म्म है, यह मै जानता हूं ; इससे तुम मेरे हितकारी और बुद्धि भी वैसी ही है, यह भी मुझे अविदित नहीं है ; तुमने अर्थ शास्त्रकी आलोचनाके जरिये भिन्न भाव देखके जो कुछ कहा है, उसके अनुसार मुझे दूसरी तरह मालूम करना तुम्हें उचित नहीं है। तुमने मेरा प्राणदान किया है, इस ही कारण मुझसे तुम्हारी सुहृदता हुई है। मैं धर्म्मज्ञ, गुणज्ञ, कृतज्ञ और मित्रवत्सल हूं ; विशेष करके तुमपर अनुरक्त हुआ हूं ; इससे मेरे साथ फिर तुम्हें ऐसा आचरण करना उचित नहीं है, तुम्हारी आज्ञा होनेसे मैं बान्धवोंके सहित प्राण परित्याग कर सकता हूं, धीर लोग मेरे समान मनस्वी पुरुषका विश्वास किया करते हैं। इससे हे धर्म्मतत्त्वके जाननेवाले ! मेरे विषयमें तुम्हें शङ्का करनी उचित नहीं है। चूहेने बिड़ालसे इस प्रकार प्रशंसित होकर उसे मानसिक भावसे पूरित गम्भीर वचनसे कहा, हे मित्र ! तुम साधु हो, तुम्हारे वचनका मर्म्म जानके मैं प्रसन्न हुआ, परन्तु इस समय मैं तुम्हारा फिर विश्वास नहीं कर सकता, तुम प्रशंसा वा धन बलसे फिर मुझे वशीभूत न कर सकोगे ; क्योंकि विज्ञ पुरुष बिना कारण शत्रुके वशमें नहीं होते ; इस विषयमें शुक्राचार्य्यने जो दो गाथा कही है, उसे सुनो। बलवान पुरुष शत्रु साधारण कार्य्यमें सन्धि करके युक्तिके सहित सावधान रहे और कृतकार्य्य होनेपर भी शत्रुका विश्वास न करे, अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे और विश्वासपात्रका भी अत्यन्त विश्वास करना उचित नहीं है। स्वयं सदा दूसरेका विश्वासपात्र होवे, परन्तु दूसरेका विश्वास न करे. इससे सब अवस्थामें ही अपने जीवनकी रक्षा करनी उचित है। जीवित रहनेपर द्रव्य-सामग्री, सन्तान-सन्तति सब हुआ करती है और अविश्वास ही परम श्रेष्ठ है, यही समस्त नीति शास्त्रोंका संक्षिप्त उपदेश है; इससे मनुष्य मात्रका अविश्वास करना अपना अत्यन्त हितकर विषय है। मनुष्य यदि निबल होके भी किसीका विश्वास न करें तो वे शत्रुओंके वशमें न होवें और यदि मनुष्य बलवान होके भी शत्रुका विश्वास करे, तो उसका वध हुआ करता है। हे बिड़ाल ! इससे तुम मेरी जातिके शत्रु हो तब तुमसे आत्मरक्षा करनी मुझे सदा उचित है, तुम भी निज शत्रु पापी जाति चाण्डालसे अपनी रक्षा करो।

बिड़ाल चूहेका ऐसा बचन सुनके चाण्डालके भयसे डरके वृक्षकी शाखा त्यागके शीघ्रताके सहित वहांसे भाग गया और शास्त्रतत्त्व जाननेवाला बुद्धिमान चूहा निज बुद्धि सामर्थ्य प्रदर्शित करके अपने बिलके भीतर प्रविष्ट हुआ। हे महाराज ! इसी तरह बुद्धिमान चूहेने निबल होनेपर भी अकेले बुद्धिबलसे अनेक शत्रुओंके निकटसे मुक्तिलाभ की थी। बुद्धिमान पुरुषको अपेक्षाकृत प्रबल वैरीके

साथ सन्धि करनी योग्य है चूहा और बिड़ाल इसी प्रकार सन्धिवलसे आपसके संकटसे छूटे थे। महाराज ! इसी भांति विस्तारपूर्व्वक मैंने क्षत्रधर्म्मका मार्ग दिखाया है, अब उसे संक्षेपसे कहता हूं, सुनो। जो एक बार बैर उत्पन्न करके फिर आपसमें प्रीति स्थापित करनेकी इच्छा करता है, परस्परमें प्रतारणा करना ही उसका मानसिक उद्देश्य है। उसमेंसे अपेक्षाकृत बुद्धिमान पुरुष निज बुद्धि कौशलसे दूसरेको ठगनेमें समर्थ होता है और निर्बुद्धि पुरुष निज असावधानता दोषसे प्रतारित हुआ करते हैं। इससे भयभीत होने पर भी निडरकी तरह और दूसरेके विषयमें अविश्वास रहने पर भी विश्वासीकी तरह व्यवहार करना उचित है। जो पुरुष इस तरह सावधान रहता है, वह कभी विचलित नहीं होता और विचलित होनेपर भी बिनष्ट नहीं होता।

महाराज ! उचित समय उपस्थित होनेपर शत्रुके साथ सन्धि करे, और समयके अनुसार मित्रके साथ भी विग्रह करनेमें प्रवृत्त होवे, सन्धिविग्रहके जाननेवाले पण्डितोंके जरिये ऐसाही सिद्धान्त कर्त्तव्य कहके वर्णित हुआ है। हे महाराज ! ऐसा ही जानके शास्त्रके अर्थको मालूम करके भयका कारण उपस्थित होनेके पहिलेही स्थिर और सावधान होकर भयभीतकी तरह निवास करे। और भय उपस्थित होनेके पहिले भययुक्त व्यवहार तथा शत्रुके साथ अवश्य सन्धि करनी चाहिये; भयसे सावधान बुद्धि उत्पन्न हुआ करती है। हे महाराज ! जो लोग भयका कारण उपस्थित न होते ही भीत होते हैं उन्हें कभी भय उत्पन्न नहीं होता; और जो निर्भयचित्तसे सबका विश्वास करते हैं, उन्हें सदा ही भय उपस्थित हुआ करता है। एकबारगी भीत न होवे—ऐसी सलाह देनी किसी तरह योग्य नहीं है, भयभीत पुरुष अपनेको अविज्ञ समझके सदा बहुदर्शी पण्डितोंके निकट गमन किया करता है; इससे बुद्धिमान पुरुष भीत होके निर्भयकी तरह निवास और अविश्वासी लोगोंके समीप विश्वास प्रदर्शित करके सब कार्य्योंकी गुरुता मालूम करके भी लोगोंके समीप मिथ्या व्यवहार न करे। हे युधिष्ठिर ! मैंने नीतिशास्त्रके सार मर्म्मको वर्णन करनेके उद्देश्यसे इस मर्ज्जार मूषिकके इतिहासको कहा है, तुम इसे हृदयङ्गम करके शत्रु और मित्रोंके बीच सन्धि विग्रह स्थापन करनेके विधानकी व्यवस्था करो और इस विषयको सुनके बुद्धि शुद्ध करके सन्धि विग्रहके समय शत्रु मित्रोंके मानसिक भावको अवरोध करके आपदकालमें मुक्तिके उपायको मालूम करो। शत्रुके साधारण कार्य्यमें निबल पुरुष अपेक्षानुसार बलवान शत्रुके साथ सन्धि करके उसके साथ फिर समागम होनेपर युक्तिके अनुसार व्यवहार करे और कृतकार्य्य होके भी उसका विश्वास न करे। महाराज ! यह नीतकाव्य धर्म्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गसे युक्त है; इससे इसे सुनके फिर प्रजा पालन करते हुए तुम अभ्युदय लाभ करोगे।

हे पाण्डुनन्दन ! तुम ब्राह्मणोंके सहित निज राजधानीमें गमन करो, ब्राह्मण लोग ही इस लोक और स्वर्ग लोकमें परम कल्याण साधन किया करते हैं। हे महाराज ! ये लोग ही धर्म्मवेत्ता और अत्यन्त कृतज्ञ हैं, ये लोग पूजित होनेसे परम कल्याणका विधान करते हैं, इससे इनकी पूजा करनी उचित है। हे राजन् ! तुम न्यायके अनुसार यथा रीतिसे राज्य, परम कल्याण, यश, कीर्त्ति और वंशकी वृद्धि करनेवाली सन्तान लाभ करोगे। हे भरत कुलप्रदीप ! उक्त मार्ज्जार मूषकके सन्धिविग्रह विषयक बुद्धिको श्रेष्ठ करनेवाले सुन्दर वचनको यथार्थ रूपसे हृदयङ्गम करके राजाको शत्रु मण्डलोंके बीच निवास करना उचित है।

१३८ अध्याय समाप्त ।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहो! शत्रुओंके बीच विश्वास करना उचित नहीं है; आपने ऐसी ही मन्त्रणा प्रदान की है, यदि किसीका भी विश्वास करना उचित न हुआ, तो राजा किस उपायका अवलम्बन करके निवास करेगा? हे पितामह! विश्वासके कारणसे ही राजाओंको अत्यन्त भय उत्पन्न होता है, इससे राजा लोग किसी पुरुषका विश्वास न करनेसे किस प्रकार शत्रुओंको जय करनेमें समर्थ होंगे। इस अविश्वासकी कथा सुनकर मेरा मन अत्यन्त मलिन होरहा है, इससे आप मेरे इस सन्देहको नष्ट कीजिये।

भीष्म बोले, ब्रह्मदत्त राजाके मन्दिरमें पूजनीके साथ उनका जो वार्त्तालाप हुआ था। उस सम्वादको सुनो। ब्रह्मदत्त राजाके अन्तः-पुरमें रहनेवाली एक पूजनी नाम चिड़िया बहुत दिनोंसे उनके सङ्ग वास करती थी। यह जीवजीवक पक्षीकी तरह सब जीवोंकी बोली समझ सकती थी और तिर्य्यग्योनिमें उत्पन्न होके भी सर्व्वज्ञ तथा सब तत्वोंको जाननेवाली थी। पूजनीने उस राजमन्दिरमें एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया उस ही समय राजाकी भी राज-महिषीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह कृतज्ञ चिड़िया उन दोनोंके वास्ते किसी समय समुद्रके किनारे गमन करके दो फल लाकर निज पुत्र और राजपुत्रकी पुष्टिके निमित्त दोनोंको एक एक फल दिया। इसी तरह वह वैसे अमृत स्वादके समान बल और तेजको बढ़ानेवाले, उन दोनों फलोंको बार बार लाके उन बालकोंको देने लगी, राजपुत्र उस फलके खानेसे अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट हुआ। एक समय वह बालक राजपुत्र दासीकी गोदमें चढ़के पक्षीके बच्चेके समीप आके उसे देखा, अनन्तर राज-कुमार बाल्यस्वभावके कारण यत्नपूर्व्वक उस पक्षीके बच्चेके साथ खेलने लगा। हे राजेन्द्र! अनन्तर राजपुत्रने उस समजात बच्चेको ऊपर उठाके उसे मारकर दासीके समीप चला गया। हे राजन्! अनन्तर वह पूजनी फल लेके आई और अपने बच्चेको राजपुत्रके जरिये मरा हुआ पृथ्वीपर पड़ा देखा। पूजनी बच्चेको मरा देखके, मन मलिन, दीन और दुःखसे सन्ता-पित होकर रोती हुई बोली, कि क्षत्रियके साथ सहवास, प्रीति वा सुहृदता न करनी चाहिये, ये लोग प्रयोजनके कारण पुरुषको सान्त्वन करते और कृतकार्य्य होनेपर उसे परित्याग किया करते हैं, सबकी बुराई करने-वाले क्षत्रियोंके विषयमें विश्वास करना उचित नहीं है, ये लोग सदा अपकार करके भी निरर्थक सान्त्वना करते हैं; इससे आज मैं इस विश्वासघाती नृशंस और कृतघ्न क्षत्रिय बालकसे यथा उचित वैरका पलटा लूंगी, साथमें उत्पन्न होके बढ़े हुए, साथमें भोजन करनेवाले और शरणागत पुरुषका वध करनेसे इसे तीन तर-हका पाप हुआ है। पूजनी ऐसा वचन कहके चङ्गुलसे राजपुत्रके दोनों नेत्रोंको निकालके आकाशमें उड़के यह वचन बोली, इस संसा-रमें जो पुरुष इच्छापूर्व्वक पापकर्म्म करता है, वह पाप उस ही समय उस पाप करनेवा-लेको स्पर्श किया करता है। जिसका प्रतिकार किया जाता है, उसके शुभाशुभ फल नष्ट नहीं होते। महाराज! यद्यपि गृहस्वामीका किया हुआ कुछ भी पापकर्म्म न दीख पड़े, तौभी उसके पुत्र पौत्र आदिकोंमें वह पापकर्म्मका फल दीख पड़ता है।

ब्रह्मदत्त निज पुत्रको पूजनीके जरिये अन्धा होते देखकर उसके किये हुए कार्य्यका प्रति-कार हुआ है, ऐसा समझके पूजनीसे कहने लगे। ब्रह्मदत्त बोले, हे पूजनी! मेरे पुत्रने जो किया, तुमने उसका पलटा लिया है, इससे दोनोंके कार्य्य समान हुए हैं, इसलिये तुम मेरे गृहमें वास करो; यहांसे मत जाओ।

पूजनी बोली, जिस पुरुषने जिस स्थानपर

एक बेर अपराध किया है, पण्डित लोग उसके उस स्थानमें वास करनेकी प्रशंसा नहीं करते; उसका वहांसे भागना ही कल्याणकारी है; कृतवैर पुरुषके अत्यन्त सान्त-वचन प्रयोग करनेपर भी उसका विश्वास करना उचित नहीं है; जो मूढ़ पुरुष उसका विश्वास करता है, वह शीघ्र ही बध्य होता है और शत्रुभावकी भी एक ही समयमें शान्ति नहीं होती। जिनमें आपसकी शत्रुता है, उन लोगोंके पुत्रपौत्र आदि सभी युद्ध-विग्रह आदिसे नष्ट होते हैं, पुत्रपौत्रोंके नाशसे परलोक भी नष्ट हो जाता है। वैर करनेवाले पुरुष मात्रका अविश्वास करना ही सुखोदयका कारण है; विश्वासघातक पुरुषोंके साथ एकबारगी विश्वास करना उचित नहीं है। अविश्वासी पुरुषका विश्वास न करे और विश्वस्त पुरुषका अत्यन्त विश्वास करना भी योग्य नहीं है; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय विश्वासकी जड़को काटता है, स्वयं दूसरेका विश्वास पात्र होवे, परन्तु दूसरेका विश्वास न करे। इस जगत्में पिता माता ही बान्धवोंके बीच वरिष्ठ हैं, भार्य्या हरण तथा पुत्र, भ्राता, मित्र आदि धन हरण करनेसे शत्रुपद वाच्य हुआ करते हैं; इसलिये अकेला आत्मा ही केवल सुख दुःखका भोगनेवाला है। जिन लोगोंमें एक बेर आपसमें वैर हुआ है, फिर उन लोगोंकी सन्धि सङ्घटित नहीं होती। मैं जिस लिये तुम्हारे गृहमें वास करती थी, वह कारण शेष हुआ है; पहिले किसी पुरुषकी बुराई करके फिर धनदान और सम्मानसे उसे सम्मानित करनेपर उसका मन कभी विश्वास युक्त नहीं होता; बलवान पुरुषोंका ऐसा ही व्यवहार है, कि निर्बलोंको भय भीत करते हैं। जिस स्थानमें पहिले सम्मान और पीछे अपमान होवे, बुद्धिमान पुरुष शत्रुसे सम्मानित होनेपर भी वैसे स्थानको परित्याग करे; मैंने बहुत समयसे सम्मानित होके आपके गृहमें वास किया, इस समय वैर भाव उत्पन्न हुआ; इसलिये मैं अनायास ही शीघ्रताके सहित इस स्थानसे गमन करूंगी।

ब्रह्मदत्त बोले, हे पूजनी! जो लोग अपकारका प्रत्यपकार करते हैं, उससे किये वे अपराधी नहीं होते, बल्कि उससे वे अऋणी हुआ करते हैं, इसलिये तुम इस ही स्थानमें वास करो, दूसरी जगह मत जाओ।

पूजनी बोली, अपकारक और प्रत्यपकार-कर्मी फिर मित्रता वा साम्य नहीं होती, इसे उन लोगोंका अन्तःकरण ही विशेष रूपसे जान सकता है।

ब्रह्मदत्त बोले, अनेक स्थानोंमें अपकर्त्ता और प्रत्यपकर्त्ताका फिर मिलन हुआ करता है, तथा उनके शत्रुताकी शान्ति देखी गई है, दूसरी बार फिर अनिष्ट घटना भी नहीं हुई।

पूजनी बोली, वैरकी कभी समाप्ति नहीं होती, शत्रुने मेरी सान्त्वना की है ऐसा समझके उसका विश्वास न करे; संसारमें विश्वासके कारण ही लोग मारे जाते हैं; इसलिये शत्रुके साथ भेंट न होनी ही कल्याणकारी है, उत्तम पानी चढ़े हुए शस्त्रके जरिये जिन लोगोंको जय नहीं किया जा सकता, उन्हें इस प्रकार सान्त्व वचनके जरिये वशमें करना उचित है, जैसे करेणुका समूह हाथियोंको वशीभूत करता है।

ब्रह्मदत्त बोले, चाण्डालके सङ्ग कुत्तोंकी तरह प्राणनाश करनेवाले पुरुषोंके निकट भी परस्परके सहवासके कारण प्रीति उत्पन्न होती है, और उस ही कारणसे आपसमें विश्वास उत्पन्न हुआ करता है। कृतवैर पुरुषोंका वैरीभाव परस्परके सहवासके कारण मृदुताको प्राप्त होकर पद्म-पत्र पर स्थित जलकी तरह स्थिर नहीं रहता।

पूजनी बोली, वैर पांच तरहसे उत्पन्न होता है, इसे पण्डित लोग जानते हैं। पहिला

कृष्ण और शिशुपालके विवादकी भांति स्त्रीके वास्ते, दूसरा कौरव और पाण्डवोंकी तरह वस्तुके लिये, तीसरा द्रुपद और द्रोणाचार्य्यकी भांति वचनके कारण चौथा बिड़ाल और चूहेकी स्वभावसिद्ध जाति बैर, पांचवा मेरे और आपके अपराधके कारण जो सङ्घटित हुआ है, यह अपराधज है। उसके बीच प्रकाश्य वा अप्रकाश्य भावसे दोषके बलाबलको विचारके दातव्य पुरुषको किसीका विशेष करके क्षत्रियका वध करना उचित नहीं है; मित्रके साथ शत्रुता होने पर फिर उसका विश्वास न करे। काठके बीच छिपी हुई अग्निकी तरह बैरभाव गूढ़ भावसे स्थित रहता है। हे राजन्! समुद्रमें रहनेवाली वाड़वाग्निकी तरह बैराग्नि वित्त, कठोरता, सान्त्व वचन और शास्त्रके जरिये शान्त नहीं होती। महाराज बढ़ी हुई बैरकी अग्नि और अपराध युक्त कर्म्म एक पक्षको जलाके नष्ट बिना किये शान्त नहीं होते। प्रथम अपकार करनेवाले पुरुषको धन और सम्मानके जरिये सत्कृत करके उसमें मित्रकी तरह विश्वास स्थापित करना उचित नहीं है; क्योंकि उसके किये हुए कर्म्म ही बलपूर्व्वक भयभीत करते हैं। मैंने पहिले कभी आपको बुराई नहीं की, आपने भी पहिले कभी मेरी बुराई नहीं की थी, इस ही कारण मैंने आपके गृहमें निवास किया है; परन्तु इस समय अब मैं आपका विश्वास नहीं करती।

ब्रह्मदत्त बोले, काल वशसे कार्य्य सङ्घटित होते हैं, और कालके अनुसार अनेक क्रिया आरम्भ हुआ करती हैं; इस लिये कौन पुरुष किसीके समीप अपराधी होगा? कालके वशमें सब जगत् है, हम दोनोंका कुछ दोष नहीं है। जन्म, मृत्यु, दोनों ही समान रूपसे हुआ करती है; जीव कालके अनुसार जन्मता और कालवशसे ही मरता है। हर एक पुरुषोंके बीच कितने ही पुरुष एक ही समयमें बध्य होते है, दूसरे नहीं होते। जैसे अग्नि काठ प्राप्त होनेसे ही भस्म करती है, वैसे ही काल सब जीवोंको जला रहा है। हे कल्याणि! तुम अथवा मैं हम दोनों ही परस्परके दुःखके कारण नहीं हैं क्योंकि काल ही सदा देहधारियोंके सुख दुःखको हरण किया करता है। हे पूजनी! इससे जैसे तुम मेरे गृहमें रहती थी, वैसे ही प्रीतिपूर्व्वक इच्छानुसार शंका रहित चित्तसे वास करो; तुमने मेरी जो बुराई की है, उसे मैंने क्षमा किया और मुझसे तुम्हारा जो कुछ अपकार हुआ है, उसे तुम क्षमा करो।

पूजनी बोली, हे राजन्! यदि आपके अभिप्रायके अनुसार काल ही सबका कारण होता, तो किसीके साथ कोई पुरुषकी शत्रुता न होती; बान्धवोंके मरने पर बन्धु लोग किस कारण दुःखको प्राप्त होते हैं? देवता और दानवोंने ही किस कारणसे पहिले आपसमें युद्ध किया था? यदि कालके अनुसार ही जन्म, मृत्यु, सुख, दुःख आदि होते हैं, तो वैद्य लोग रोगियोंके वास्ते क्यों औषधि तय्यार करनेमें प्रवृत्त होते हैं? यदि काल वशसे ही जीवोंकी मृत्यु होती, तो औषध प्रयोग करनेका क्या प्रयोजन था? शोकसे मूर्च्छित पुरुष ही किस कारण अत्यन्त प्रलाप वचन कहा करते हैं? यदि काल ही आपके मतमें प्रमाण हुआ तो कर्त्तृसमूहके विषयमें धर्म्म विषयक विधि निषेध आदि निष्फल हो जावेंगे। हे नरनाथ! आपके पुत्रने मेरे सन्तानको नष्ट किया, इस ही कारण मैंने भी उसे घायल किया है, इस समय आप मुझे मारेंगे। मैंने पुत्र शोकके वशमें होकर आपके बालकके साथ अनिष्ट आचरण किया है आप भी जिस प्रकार मेरे ऊपर प्रहार करेंगे, उस विषयकी तत्व कथा कहती हूं, सुनो। मनुष्य लोग खेलवाड़ और भोजनके वास्ते पक्षियोंको ठगा करते हैं, उन लोगोंके बध और बन्धनके अतिरिक्त तीसरा कारण और

कुछ भी नहीं है। पक्षी-वृन्द भी बध और बन्धनके भयसे मुक्ति पथ आश्रय किया करते हैं। वेदके जाननेवाले श्रेष्ठ पुरुष मृत्यु त्यागजनित क्लेशको ही दुःख कहा करते हैं, प्राण और पुत्र सबको ही प्रिय है; और सब लोगही दुःखसे व्याकुल होते हैं, सुखमें सबको ही अभिलाषा होती है। हे ब्रह्मदत्त! दुःख अनेक तरहसे उत्पन्न हुआ करता है; बुढ़ापा, अर्थ विपर्य्यय, अनिष्ट सहवास, इष्ट वियोग, बध, बन्धन, स्त्रीके कारण और सहज भेदसे दुःख अनेक प्रकारके हैं; उसके बीच पुत्रवियोग जनित दुःख लोगोंको विशेष रूपसे परिवर्त्तित करता है। कोई कोई निर्बुद्धि लोग दूसरेके दुःखसे दुःखित नहीं होते। यह कहा करते हैं कि जिस पुरुषने कभी दुःख अनुभव नहीं किया है, वह महाजनोंके निकट इस प्रकार कह सकता है। और जो पुरुष दुःखमें आर्त्त होकर शोक करता है, वह किस तरह ऐसा कहनेमें उत्साही होसकता है? जिस पुरुषने सब दुःखोंके विषयोंको ग्रहण किया है, वह अपनेमें जैसा देखता है, दूसरेमें भी उसी तरह देखा करता है। हे वैरीदमन राजन्! मैंने आपको जो बुराई की है और आपने भी जो अहित आचरण किया है, वह सौ वर्षमें भी लुप्त न हो सकेगा। मैंने जो कार्य्य किया है, उससे फिर अब परस्परका मिलन नहीं होसकता; आप जिस समय पुत्रको स्मरण करेंगे, उस ही समय वैरभाव नवीन हो जावेगा। अर्थ शास्त्रके जाननेवाले पण्डितोंने निश्चय किया है, कि जैसे मट्टीके पात्र टूटनेपर फिर नहीं जुड़ते वैसे ही जो शीघ्र वैर करके प्रीति करनेकी इच्छा करता है, उसका विश्वास कभी सुखदायक नहीं होसकता। पहिले शुक्राचार्य्यने प्रह्लादसे इस विषयमें दो गाथा कही थी, कि जो शत्रुके सत्य वा मिथ्या वचनमें विश्वास करता है, वह सूखे तृणसे युक्त अन्धकूपमें गिरे हुए मधुलोभीकी तरह शीघ्र नष्ट होता है। ऐसा देखा गया है, कि किसी स्थानमें शत्रुता वंश परम्परासे प्रचलित रहती है। जो लोग वैर करके परलोकमें गमन करते हैं; उनके वंशमें जो पुरुष रहते हैं, दूसरे लोग उनके समीप पहिले वैरको प्रकाशित कर देते हैं। हे महाराज! जो लोग वैरकी शान्तिके वास्ते शत्रुके साथ सन्धिबन्धन करते हैं, वेही पत्थरपर गिरे हुए पूर्ण घड़ेकी तरह उसे चूर्ण किया करते हैं। इस जगतमें राजा किसीके साथ अनिष्ट आचरण करके सदा उसका विश्वास न करे, दूसरेकी बुराई करनेसे दुःख भोग करना पड़ता है।

ब्रह्मदत्त बोले, अविश्वास करनेसे कोई अर्थ मनुष्य वा दूसरा कुछ उपाय नहीं कर सकते; बल्कि एक पक्षका सदा अविश्वास करनेसे भयके कारण मृतकके समान हुआ करते हैं।

पूजनी बोली, इस संसारमें जो पुरुष परिक्षत पदसे भ्रमण करते हैं, वह सावधान रहनेपर उनके दोनों पांव स्खलित हुआ करते हैं, जो पुरुष रुग्ननेत्रसे वायुके प्रतिकूल दिशाकी ओर देखता है, वायु निश्चय ही उसके दोनों नेत्रोंके लिये पीड़ाजनक होजाती है। जो पुरुष अपना बल न जानके अज्ञानताके कारण दुष्ट मार्ग अवलम्बन करके उसमें उपस्थित होता है उस ही स्थानमें उसका जीवन समाप्त हुआ करता है। जो पुरुष वर्षाका समय मालूम न करके खेत बोता है, वह पौरुषरहित पुरुष शस्य भोग करनेमें समर्थ नहीं होता। जो तीता, कसैला, मीठा वा मधुर पथ्य नित्य आहार करता है, वह अमृत होता है और जो पुरुष परिणामको बिना विचारे मोह वशसे पथ्य भोजनोंको परित्याग करके अपथ्य भोजन करता है, उसका जीवन नष्ट होता है। दैव और पुरुषार्थ आपसमें एक दूसरेके आश्रयसे स्थिति करते हैं। उदार पुरुष सत्कर्मोंका

आसरा ग्रहण करते हैं और कादर लोग ही दैवको अवलम्बन किया करते हैं। आत्म हित-कर कर्म्म चाहे कठोर हो, चाहे कोमल ही होवे, उसे अवश्य करना चाहिये; कर्म्महीन तुच्छ पुरुष सदा अनर्थ ग्रस्त हुआ करते हैं; इससे सब विषयोंको परित्याग करके पराक्रम प्रकाश करना ही योग्य है। सर्व्वस्व परित्याग करके भी मनुष्योंको आत्म-हितकर कार्य्य करना उचित है, शूरता, दक्षता, विद्या, वैराग्य और धीरज इन पांचोंको पण्डित लोग सहज मित्र कहा करते हैं; और वे लोग इन पांच प्रकारके मित्रोंके अवलम्बनसे जीवन बिताते हैं। और गृह ताम्र आदि पात्र, क्षेत्र, भार्य्या, तथा सुहृदवृन्द, इन पांचोंको पण्डित लोग उपमित्र कहते हैं; पुरुष सर्व्वत्र ही इन पांचोंको पाता है। बुद्धिमान पुरुष सर्व्वत्र ही अनुरक्त होता और सब जगह बिराजता है, कोई पुरुष उसे भय नहीं दिखा सकता, भय दिखानेसे भी वह नहीं डरता। बुद्धिमान पुरुषको थोड़ा अर्थ होने पर भी वह सदा बढ़ता है, निपुणताके सहित कर्म्म करनेसे उसे प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

कर्कटीके गर्भसे उत्पन्न हुए सब सन्तान जैसे उसके मांसको भक्षण करते हैं, वैसे गृह-स्नेहमें आबद्ध अल्पबुद्धि मनुष्योंको दुष्टस्त्रियां वाक्य-यन्त्रणाके जरिये उन लोगोंके मास और रुधिरको सुखा देती है। कोई पुरुष अपने बुद्धिदोषसे विदेश जानेके समय मेरा गृह मेरा क्षेत्र, मेरे मित्र और हमारा स्वदेश ऐसी ही चिन्ता करके दुःखित हुआ करते हैं। स्वदेश यदि व्याधि वा दुर्भिक्षसे पीड़ित होवे, तो उसे परित्यागके दूसरे देशमें वास करनेके वास्ते जाकर सम्मानित होके रहना उचित है, इसलिये मैं दूसरी जगह वास करनेके लिये गमन करूंगी। हे महाराज! मैंने आपके पुत्रके विषयमें अत्यन्त ही अन्याय आचरण किया है, इसलिये इस स्थानमें वास करनेकी इच्छा नहीं करती हूं। कुभार्य्या, कुपुत्र, कुराज्य, कुमित्र, कुसम्बन्ध और कुदेशको एकबारगी परित्याग करना चाहिये; कुपुत्रमें विश्वास नहीं, कुभार्य्यामें अनुराग नहीं कुराज्यमें सुख नहीं और कुदेशमें जीविका निर्व्वाह नहीं होता। सदा अस्थिर सुहृद कुमित्रके सहित सङ्गति नहीं निभती और प्रयोजनमें विपर्य्यय होनेसे कुसम्बन्धमें अप-मान हुआ करता है। जो भार्य्या प्रिय वचन कहे, वही भार्य्या है; जिस पुत्रसे सुखी होवे, वही पुत्र है, जिसका विश्वास किया जाय वही मित्र है; जिस देशमें अनायास ही जीविका निर्व्वाह हो, वही स्वदेश है। जिस राज्यमें जबर्दस्ती नहीं, वहां किसी भयकी भी सम्भा-वना नहीं रहती; जो राजा दरिद्रोंको पालन करनेकी इच्छा करता है, उसके साथ प्रजाका पाल्य-पालन सम्बन्ध होता है; इसलिये ऐसा राजा ही तीक्ष्ण शासनकारी कहके प्रसिद्ध होता है, धर्म्मपालक गुणवान राजाके देश भार्य्या, पुत्र, मित्र, सम्बन्धी और बान्धव आदि सभी सुन्दर हुआ करते हैं। अधर्म्मी राजाके निग्रह निबन्ध-नसे प्रजाका नाश होता है। राजा ही धर्म्म, अर्थ, काम, इस त्रिवर्गका मूल है; इसलिये प्रमाद-रहित होके उसे प्रजापालन करना अवश्य उचित है। राजा प्रजासमूहके समीपसे छठवा भाग कर लेके उन लोगोंका पालन करे। जो राजा प्रजासमूहका पूर्णरीतिसे पालन नहीं करते, वह राजाओंके बीच तस्कर कहके निन्दित होते हैं। जो राजा स्वयं अभय दान करके फिर उसमें असम्मत होते हैं, वह अधर्म्म बुद्धि राजा सब लोगोंके पापको ग्रहण करके अन्त समयमें नरकमें गमन किया करते हैं। राजा यदि स्वयं अभयदान करके उसे प्रमाणित करे, तो वह धर्म्म पूर्व्वक प्रजा पालन करते हुए सबको सुख देनेवाला कहके विख्यात होता है। प्रजापति मनुने कहा है, कि

राजामें पिता, माता, रक्षिता, अग्नि, कुबेर और इन सातोंका गुण रहता है; क्यों कि राजा प्रजा समूहके विषयमें कृपा प्रकाशित करनेसे पितृस्वरूप हुए हैं, जो मनुष्य उनके समीप मिथ्या विनय करता है, वह तिर्य्यग् योनिमें जन्म लेता है। राजा दरिद्रोंकी माताके समान पालन करता है, इसीसे मातृस्थानीय हुआ है। बराइयोंको जलाता है, इससे अग्नि और दुष्टोंको शासन करता है, इस ही कारण यम स्वरूप हुआ है। साधु पुरुषोंको धन दान करनेसे काम प्रद कुबेर, धर्म्म उपदेश करनेसे गुरु और पालन करनेसे रक्षक स्वरूप हुआ करता है। जो राजा गुणसमूहसे पुरवासी और जन पदवासी लोगोंके चित्तको रञ्जन करता और धर्म्मके अनुसार स्वयं उन लोगोंका पालन किया करता है, वह राज्यसे कभी च्युत नहीं होता। जो स्वयं पुरवासी और जनपद वासियोंके सम्मानको मालूम करता है, वह इस लोक और परलोकमें सुखभोग किया करता है। जिसकी प्रजा कर भारसे पीड़ित होकर सदा व्याकुल होती और बराइयोंके जरिये क्लेश पाती है, उसकी शत्रुके निकट पराजय होती है। तालाबमें शतदल कमलकी तरह जिसकी सब प्रजा सदा वर्द्धित होती है, वह फलभागी राजा स्वर्गलोकमें निवास करता है। हे महाराज! बलवानके साथ विग्रह करना कदापि प्रशंसित नहीं है, जिसका बलवानके साथ विग्रह हुआ करता है, उसके राज्य ही कहां? वा सुख ही कहां है?

भीष्म बोले, हे नरनाथ! पूजनी चिड़िया राजा ब्रह्मदत्तसे ऐसा ही कहके उनकी आज्ञा लेकर निज अभिलषित दिशामें चली गई। हे राजन! पूजनीके साथ ब्रह्मदत्तकी जैसी वार्त्ता हुई थी, उसे मैं तुमसे कहा और कहो क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१३९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतकुलतिलक पितामह! युगक्षयके कारण धर्म्म और सब लोगोंके पर्य्यन्त चोर तथा डाकुओंके जरिये पीड़ित होनेपर किस तरह निवास करना चाहिये?

भीष्म बोले, हे भारत! राजा काल क्रमसे करुणा त्यागके जिस तरह निवास करेंगे, मैं तुम्हारे समीप उस आपत्कालके योग्य नीतिका विषय वर्णन करूंगा पुराने पण्डित लोग इस विषयमें राजा शत्रुञ्जय और भारद्वाजके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। सौवीर देशमें शत्रुञ्जय नाम एक महारथी राजा थे; उन्होंने भारद्वाजके निकट जाके अर्थविषयमें विशेष निर्णयका प्रश्न किया। अप्राप्त अर्थकी प्राप्तिकी इच्छा किस तरह करनी चाहिये, प्राप्त हुए धनकी किस प्रकार बढ़ती होती है, बढ़े हुए वित्तको किस तरह पालन किया जाता है और पालित अर्थ किस प्रकार व्यय किया जा सकता है? राजाने जब इस प्रकार अर्थनिर्णय विषयमें प्रश्न किया, तब द्विजवर भारद्वाज उनके पूछे हुए विषयको, युक्तियुक्त श्रेष्ठ उत्तर देने लगे, कि राजा सदा दण्ड उद्यत कर रखे। सदा अपना पराक्रम प्रकाश करे, स्वयं निर्दोष होकर दूसरेका दोषदर्शी और छिद्रान्वेषी होवे। जो राजा सदा दण्ड उद्यतकर रखता है, मनुष्य उसके निकट अत्यन्त भय करते हैं; इसलिये सब जीवोंको ही दण्डके जरिये शासित करे। तत्वदर्शी पण्डित लोग इसी तरह दण्डकी प्रशंसा कियाकरते हैं; इसलिये भेद, दण्ड, साम; दान, इन चारोंके बीच दण्डही प्रधान कहके वर्णित हुआ है। आश्रयस्थानकी जड़ काटनेसे जीव मात्रका ही जीवन नष्ट होता है, वृक्षकी जड़ कटनेपर सब शाखा उसमें स्थित नहीं रह सकती। बुद्धिमान् राजा पहिले शत्रुका मूलच्छेदनकरे, अनन्तर उसके सहाय और अमात्य आदिको वशमें करे। आपद उपस्थित होनेपर उत्तम मन्त्रणा, पराक्रम प्रकाश

पक्षी तरहसे युद्ध अथवा पलायन करे; इस विषयमें कुछ विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हृदयसे अख़ुरेकी तरह रहके वचनमात्रसे विनय दिखावे, मृदुभावसे वार्त्तालाप करे और कामक्रोधको त्याग दे। शत्रुके साथ कार्य्य-संश्रव उपस्थित होनेपर पहिले सन्धि करके उसका विश्वास न करे। बुद्धिमान पुरुष कृत-कार्य्य होकर शीघ्र ही शत्रुका सङ्ग परित्याग करे और मित्ररूपसे शान्त वचनसे शान्त करके सर्पयुक्त गृहकी भांति सदा उससे शङ्कित रहे। निज बुद्धिके जरिये जिसकी बुद्धिको पराजित करनी होगी; उसे अभयदान करते हुए धीरज देवे। मन्दबुद्धि पुरुषको अनागत बुद्धिसे और पण्डित पुरुषको प्रत्युत्पन्न बुद्धिके सहारे शान्त करे। जो पुरुष अपने कल्याणकी इच्छा करे, वह हाथ जोड़कर शपथ करके सान्त्व वचनसे शिर झुकाकर आंसू बहाते हुए वचन कहे। जबतक समय परिवर्त्तन न होवे, तबतक शत्रुको कन्धेपर चढ़ाके ढोवे, समय उपस्थित हुआ जानके पत्थरपर फेंके हुए घड़ेकी तरह उसे नष्ट कर डाले। हे राजेन्द्र! मनुष्य तिन्दुककाष्ठकी तरह मुहूर्त्त भर प्रज्वलित होवे; ज्वालारहित तूषकी अग्निकी भांति सदा सुलगता न रहे। अनेक प्रयोजनसे युक्त पुरुष कृतघ्नके साथ अर्थयुक्त कुराई न रखे, क्योंकि कृतघ्न पुरुष कृतकार्य्य होकर उपकारकी अवमानना किया करता है। इसलिये शत्रुसंघटित सब कार्य्योंको सब तरहसे पूर्ण न करके उसे शेष रखना उचित है। राजा निज प्रतिपाल्य लोगोंको अन्नके जरिये प्रतिपालन करनेमें कोकिलका, शत्रुका मूल उखाड़नेमें बराहका, अनुलङ्घनीयता गुणमें सुमेरु पर्व्वतका, अनेक रूप धारण करनेमें नटका, अर्थागम करनेके कारण शून्य गृहका और प्रजासमूहके विषयमें दयायुक्त व्यवहार प्रकाश करनेके लिये मित्रका अनु-करण करे। राजा प्रतिदिन उठके शत्रुके गृहमें जावे, शत्रुके घर यदि अमङ्गल भी रहे, तौभी कुशल प्रश्न करे। आलसी, अभिमानी, कादर, लोकापवादसे डरनेवाले और सदा संशय युक्त चित्तवाले पुरुष धनलाभ करनेमें समर्थ नहीं होते। शत्रु लोग निज छिद्रकी ओर दृष्टि न रखके दूसरेका छिद्र खोजते रहते हैं; इसलिये कछुवेकी तरह अपने अमंगल और सब छिद्रोंको छिपा रखे। बकुलेकी तरह अर्थचिन्ता सिंहकी भांति पराक्रम, भेड़ियेकी तरह आत्मगोपन और बाणकी भांति शत्रु भेद करे। सुरापान, जुआखेलना, स्त्रीसम्भोग, मृगया और गीत वाद्य युक्तिके अनुसार करे; इन सब विषयोंमें अत्यन्त आसक्त होनेसे ही दोषी होना पड़ता है। बांस आदिसे धनुष तय्यार करावे, मृगकी तरह सावधानीसे शयन किया करे, समयके अनुसार कभी अन्धे और कभी बधिरकी तरह व्यवहार करे।

बुद्धिमान राजा देश और कालके अनुसार विक्रम प्रकाश करे, क्यों कि देशकालको अति-क्रम करके विक्रम प्रकाश करनेसे वह निष्फल हुआ करता है। समयके अनुसार अपना बलाबल निश्चय कर परस्परका बल मालूम करके कर्त्तव्य कार्य्योंमें तत्पर होवे। जो राजा दण्डोपहत शत्रुको निग्रहीत नहीं करता, वह कर्कटीके गर्भ धारणकी भांति मृत्युमुखमें पतित हुआ करता है। अच्छी तरह फूले हुए वृक्ष भी फलहीन होते हैं फलवान वृक्ष दुरारोह हुआ करते हैं, और जिसका फल अपक्व अवस्थामें रहता है; उसे भी पके हुए फलकी तरह देखा जाता है; इसलिये राजा इन सब कारणोंको देखके किसीके समीप शीर्ण न होवे। शत्रुओंकी आशा बहुत समयमें सिद्ध होवे, वचनसे ऐसा ही विधान करे; परन्तु विशेष कारण दिखाके उस विषयमें विघ्नका अनुष्ठान करना उचित है। जबतक

भय उपस्थित न होवे, तबतक भयभीत पुरुषकी तरह निवास करे; परन्तु भयका कारण उपस्थित होनेपर निडरकी भांति उसे नष्ट करनेमें प्रवृत्त होवे। मनुष्य संशयमें आरोहण न करनेसे कल्याणका मार्ग देखनेमें समर्थ नहीं होता, परन्तु संशययुक्त होकर यदि जीवित रहे, तो अवश्य ही अपना कल्याण देखता है; भय जिसमें उपस्थित न हो, आगे उसका विचार करना चाहिये, दैवात् उपस्थित होनेपर उसका प्रतिकार करना उचित है, फिर वृद्धि होगी, इस भयसे उसे अनिवृत्तकी तरह निवारण करना चाहिये। उपस्थित सुखको त्यागना और अनुपस्थित सुखकी आशा करनी बुद्धिमान पुरुषकी रीति नहीं है। जो पुरुष शत्रुके साथ सन्धि बन्धन करके विश्वास पूर्व्वक सुखकी नींद सोता है, वह वृक्षके अग्रभागमें सोये हुए पुरुषकी तरह पतित होते हुए दीख पड़ता है। कोमल होवे, अथवा कठोर हो, जिस किसी कर्म्मके जरिये होसके विपदयुक्त आत्माको उद्धार करना उचित है, और समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करना योग्य है। शत्रुके शत्रुओंकी सेवा करे, अपने दूतोंको भी शत्रु प्रेरित करके समझना उचित है; अपने दूतोंको शत्रु लोग न जान सकें, ऐसा ही उपाय करना चाहिये। पाषण्ड और तपस्वियोंको दूतरूपसे दूसरेके राज्यमें प्रवेश करावे। कपट धर्म्माचारी लोगोंके कण्टक रूपी दुराचारी चोर लोग बगीचा, विहार स्थान, जलसत्र, पान्थनिवास, पानागार, सब तीर्थों और सभा स्थानोंमें कपट वेषसे भ्रमण करते हैं, इसलिये उन लोगोंको मालूम करके निग्रहीत और शान्त करना योग्य है। शत्रुका अविश्वास न करे, और विश्वासका भी अत्यन्त विश्वास उचित नहीं; क्योंकि विश्वाससे भय उत्पन्न होता है, और विशेष रीतिसे परीक्षा न करके किसीका विश्वास न करे। यथार्थ कारण दिखाके उसका विश्वासपात्र होवे कालक्रमसे उसका किसी विषयमें तनिक भी पैर विचलित होनेपर उसके ऊपर प्रहार करे। जिससे शङ्काकी सम्भावना नहीं है, उसकी भी शङ्का करनी और शङ्का करने योग्य पुरुषोंकी सदा शङ्का करनी उचित है; क्योंकि अशंकित होनेसे उत्पन्न हुआ भय मूल सहित नष्ट किया करता है। ध्यान, धारणा, मौनावलम्बन, गेरुआ वस्त्र पहरना जटा और मृगछाला धारणके जरिये शत्रुके चित्तमें विश्वास उत्पन्न करके फिर भेड़ियेकी तरह उसे लुप्त करे। पिता, भ्राता, पुत्र अथवा सुहृद लोग यदि अर्थमें विघ्न करें, तो ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले पुरुषको उन्हें नष्ट करना चाहिये। महत् पुरुष भी यदि कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म्म न जानके गर्व्वित और कुमार्ग गामी होवे, तो उसके लिये भी दण्ड रूप शासनकी विधि है। जैसे तीक्ष्ण तुण्डवाले पक्षी वृक्षोंके फल और फलोंको नष्ट करते हैं, वैसे ही अभ्युत्थान, अभिवादन वा जिस किसी वस्तु दानसे होसके, शत्रुका विश्वास पात्र होकर अन्तमें उसके सब पुरुषार्थको नष्ट करे मछरी मारनेवाले मछुवाहेकी तरह दूसरेके मर्म्मच्छेद आदि कठिन हिंसा कर्म्मका न करनेसे महा समृद्धि नहीं प्राप्त होसकती। जातिके जरिये कोई किसीका शत्रु वा मित्र नहीं होता, प्रयोजन अनुसार ही शत्रु मित्र उत्पन्न हुआ करते हैं। शत्रु पुरुषके दुःखका कारण प्रकाश करनेपर भी उसे कभी परित्याग न करे और उसके दुःखसे दुःखित न होवे। पूर्व्वापराधी पुरुषको जिस उपायसे बने नष्ट करे। जो अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करते हैं, उन्हें शत्रुको पराजित करनेके लिये यत्न करना अवश्य उचित है; किसीके विषयमें निन्दा करनी योग्य नहीं है। जिसके ऊपर प्रहार करना हो, उससे प्रिय वचन कहे और प्रहार करके भी प्रिय बात्तें कहे; तलवारसे किसीका सिर काटके भी उसके वास्ते शोक

प्रकाश और रोदन करे। जो लोग ऐश्वर्य्यकी अभिलाषा करें, वे सान्त्ववचन, सम्मान और तितिक्षाके जरिये सब लोगोंको आवाहन करें, इसी तरह लोगोंकी आराधना करनी चाहिये, बाहुके सहारे नदी पार न होवे, और जिससे कुछ लाभ न हो, तैसा बैर न करना चाहिये; गोश्टङ्गको भक्षण वा चर्व्वण करना निरर्थक और अनायुष्य है, उससे दांत टूटते और कुछ रस नहीं मिलता। धर्म्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्गकी तीन तरहकी पीड़ा होती है अर्थात् धर्म्मसे अर्थमें बाधा, अर्थके जरिये धर्म्ममें बाधा और धर्म्म अर्थ दोनोंके जरिये काममें बाधा हुआ करती है; इसलिये इनके बलाबलको विचार कर उक्त पीड़ाको त्याग देवे। ऋण-शेष, अग्निशेष और शत्रुशेष रहनेसे बार बार बढ़ते हैं, इससे इन्हें निःशेष करना उचित है; वर्द्धिष्णु ऋण, उपस्थित व्याधि और पराभूत शत्रुसमूह अत्यन्त भय उत्पन्न करते हैं।

कोई कार्य्य आरम्भ करके उसे बिना पूरा किये विरत न होवे, सदा सावधान रहे, क्षुद्र कण्टक भी अच्छी तरहसे न निकालनेपर सदाके लिये विकार उत्पन्न किया करता है। मनुष्यहत्या, मार्ग रोध और गृह नाशके जरिये शत्रु राज्यको नष्ट करे। गृद्धकी तरह दूरदर्शी बगुलेकी तरह निश्चल, कुत्तेकी तरह सावधान सिंहकी भांति पराक्रमी और कौए की तरह दूसरेका इङ्गित जानकर धीरताके सहित सर्पकी तरह अकस्मात शत्रुके किलेमें प्रवेश करे। वीरके समीप हाथ जोड़के डरपोकोंको भय दिखाके और लोभीको धनदानसे वशमें करे और अपने समान पुरुषके सङ्ग विग्रह करना ही उचित है। राजाके मृदुस्वभाव होनेसे प्रजा उसकी अवज्ञा करती है और तीक्ष्ण होनेसे सब कोई उससे भयभीत होते हैं, इस लिये तीक्ष्ण होनेके समय तीक्ष्ण और कोमलके समय मृदु होना उचित है। मृदुताके जरिये कोमलको छेदन करे, कोमलतासे कठोरकार्य्य नष्ट किया जासकता है, कोमल उपायके जरिये कोई कार्य्य भी असाध्य नहीं है; इसलिये मृदुता तीक्ष्णसे भी तीक्ष्ण है। जो लोग समयके अनुसार कोमल और समयानुसार कठोर होते हैं, वे सब कार्य्योंको सिद्ध करके शत्रुको विजय करनेमें समर्थ होसकते हैं। पण्डितके साथ विरोध करके "मैं दूरहूं" कहके विश्वास न करे क्योंकि बुद्धिमानकी दोनों भुजा बहुत लम्बी होती हैं, वे हिंसित होकर उससे ही हिंसा कर सकते हैं। जिसके दूसरे किनारे पर तैरके न पहुंच सके, वैसी नदीमें न तैरे; शत्रु लोग जिसे फिर हरण कर सकें, वैसा धन हरण न करे; जिसकी जड़ नहीं उखाड़ी जा सकती उसे न खोदे; जिसका सिर न गिराया जासके, उसके ऊपर प्रहार न करे। आपत्कालके अभिप्रायसे मैंने ऐसा कहा है; मनुष्य सदा ऐसा आचरण न करे; शत्रुसे आक्रान्त होनेपर कैसा व्यवहार करे—उसके निमित्त मैंने आपका हितार्थी होकर इस प्रकार कहा है।

भीष्म बोले, भारद्वाजने जब सौवार-राज्याधिपतिसे ऐसी कथा कही, तब उन्होंने सुनकर सावधान चित्तसे उसे प्रतिपालन किया और बान्धवोंके सहित समुज्वल राजलक्ष्मी भोग करने लगे।

१४० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, पितामह! परम धर्म्म नष्ट प्राय वा सब लोगोंसे उल्लङ्घित होनेपर अधर्म्म धर्म्मकी तरह और धर्म्म अधर्म्मको भांति होने-मर्य्यादा नष्ट धर्म्म-निश्चय क्षुभित और सब लोग राजा वा डाकुओंसे पीड़ित होने, आश्रमवासियोंके मोह युक्त तथा सब कर्म्मोंके नष्ट होने; लोभ, मोह, कामके कारण सब कोईके भय दर्शन करने, जीव मात्रके सदा अविश्वस्त होने,

अवमाननाके जरिये पीड़ित सब कोईके परस्पर वञ्चना करते रहनेपर, सब देशोंके प्रदीप्त और ब्राह्मणोंके पीड़ित होने, बादल बरसनेसे विरत, आपसमें भेद उत्पन्न होने और पृथिवीमें जो सब उप जीव्य वस्तु हैं, वह सब दस्युओंके हस्तगत होनेसे, इस बुरे आपदकालके आनेपर जो ब्राह्मण दयाके कारण पुत्र पौत्र आदिको त्यागनेमें अशक्त हैं, वे किस प्रकार जीवन व्यतीत करेंगे ? और सब लोगोंके पापाचारी होनेपर जो राजा दयाके वशमें होकर पुत्र पौत्रोंको परित्याग करनेमें असमर्थ हैं; तथा ब्राह्मणोंको पालन करनेमें भी अशक्त हैं, वे किस प्रकार निवास करेंगे और किस प्रकार धर्म्म और अर्थसे भ्रष्ट न होंगे ? हे शत्रुतापन ! आप मुझसे यही कहिये।

भीष्म बोले, हे महाबाहु भरतश्रेष्ठ ! अप्राप्त राज्यकी प्राप्ति और प्राप्त राज्यका प्रतिपालन स्वरूप योगक्षेम, उत्तम वृष्टि, प्रजासमूहके व्याधि मरन और भय इन सब विषयोंमें राजा ही मूल कारण है और सतयुग;—त्रेता, द्वापर तथा कलियुग; इन युगोंके परिवर्त्तन विषयमें राजा ही मूल कारण हुआ करता है; इसमें मुझे सन्देह नहीं है। प्रजासमूहके दोषकारक उस आपदकालके उपस्थित होनेपर विज्ञानबलको अवलम्बन करके जीवन व्यतीत करना चाहिये। पण्डित लोग इस विषयमें विश्वामित्र और चाण्डालके सम्बादयुक्त इस प्रचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं।

त्रेता और द्वापर-युगके सन्धि समयमें लोकके बीच दैव इच्छासे बारह वर्षतक घोर अनावृष्टि हुई थी। त्रेताके अन्त और द्वापरके आरम्भके समय अत्यन्त-वृद्ध प्रजासमूहके प्रलयकाल उपस्थित होनेपर देवराजने जलकी वर्षा नहीं की, बृहस्पति प्रतिकूल थे और चन्द्रमण्डलने निज लक्षण परित्याग करके दक्षिण मार्गसे गमन किया था, उस समय बादलका सञ्चार तो दूर रहे, ओहार पात भी नहीं हुआ, सब नदी शुष्कप्राय होगईं, तालाब, कूएं और झरने दैववशसे जल रहित और प्रभाहीन होनेसे अलक्षित होने लगे, जलशाला आदि जलशून्य हुए, ब्राह्मणोंके यज्ञ, वेदाध्ययन और वषट्कार आदि मङ्गलकार्य्य निवृत्त होगये; कृषिकार्य्य और गोरक्षा नष्ट हुई; विपणि और आपण आदि निवृत्त हुए, पशुबन्धनके स्तम्भ, यज्ञका होना और समस्त उत्सव एक बारही नष्ट हुए; बहुतेरे नगर सूने और ग्राम आदि आग लगनेसे जल गये; सब प्रजाके किसी स्थानमें चोरोंसे, किसी जगह शस्त्रोंसे और किसी स्थानमें राजासे पीड़ित होकर परस्पर भयके कारण भागनेसे सब ग्राम सूने तथा निर्जन होगये; सब देवस्थान नष्ट हुए और वृद्ध मनुष्य अपने पुत्र पौत्रादिकोंके जरिये घरसे निकाले गये। गौ, बकरे, भेड़ और भैंसे पञ्चत्वको प्राप्त हुए; ब्राह्मण लोग मृत्युके ग्रासमें पतित हुए; रक्षसोंका नाश हुआ; औषधियां नष्ट होगईं; अधिक क्या कहें, उस समय पृथ्वीमण्डल केवल श्मशान—वृक्षसमूहसे भर गया था। हे युधिष्ठिर ! उस भयङ्कर समयमें धर्म्म नष्ट होनेसे मनुष्य लोग भूखे होकर परस्परके मांसको भक्षण करते हुए भ्रमण करने लगे। ऋषि लोग जप, होम, नियम और समस्त आश्रमोंको परित्याग करके इधर उधर दौड़ने लगे। अनन्तर बुद्धिमान् भगवान विश्वामित्र महर्षिने क्षुधासे आर्त्त हो घर त्यागके स्त्री पुत्र आदिको किसी जनसमाजमें रक्षा करते हुए खाद्याखाद्य विचार और होम आदि कार्य्योंको तजके सर्व्वत्र पर्य्यटन करनेमें प्रवृत्त हुए। वह घूमते २ किसी समय वनके बीच प्राणघातक हिंसक चाण्डालोंकी बस्तीमें पहुंचे, वहां पहुंचके देखा, कि वह स्थान टूटे घड़े, कुत्तोंके चमड़ोंके टुकड़े, वराह और गधेकी हड्डियों और मरे हुए मनुष्योंके वस्त्रसमूहसे

परिपूरित है, गृह सब निर्म्माल्यसे अलंकृत, कुटीके सब मठ अहिनिर्मोक-मालासे चिन्हित हुए हैं। कोई स्थान बहुतसे कुत्तों और कोई स्थान गधेके शब्दसे प्रतिध्वनित होरहा है; किसी जगह चाण्डाल लोग कड़वे बचनसे आपसमें झगड़ा कर रहे हैं कहींपर उल्लू और अनेक तरहके पक्षियोंकी मूर्त्तियोंसे अलंकृत देवालय वर्त्तमान हैं। कोई स्थान लोहेकी घण्टियोंसे अलंकृत कुत्तोंके समूहसे भरा हुआ है।

महर्षि विश्वामित्र क्षुधायुक्त होकर उस स्थानमें प्रवेश करके खाद्य वस्तुके खोजनेमें अत्यन्त यत्न करने लगे; परन्तु भीख मांगनेपर भी किसी स्थानमें मांस, अन्न, फल, मूल वा दूसरी कुछ भोजनकी सामग्री प्राप्त न हुई। "हाय! मैंने क्याही कष्ट पाया है।" ऐसा ही विचार करके कौशिक शरीरकी निर्व्वलताके कारण उस ही चाण्डाल बस्तीके बीच पृथ्वीपर गिर पड़े, हे नृपसत्तम! वह उस समय क्या करनेसे अवस्थाका परिवर्त्तन हो और किस प्रकार वृथा मृत्यु न हो, ऐसी ही चिन्ता करने लगे। मुनिने चिन्ता करते करते देखा, चाण्डालके घरमें प्रतिदिन शस्त्रोंसे मरे हुए कुत्तोंका मांस बहुत है; उसे देखकर मुनिने बिचारा, इस समय मेरे प्राण धारणके विषयमें दूसरा कुछ उपाय नहीं है; इसलिये मुझे चोरी वृत्ति अवलम्बन करनी पड़ी; आपदकालमें प्राण रक्षाके वास्ते चोरी अवलम्बन करनी ब्राह्मणोंके विषयमें अनुचित नहीं है; पहिले अपनी अपेक्षा नीचसे अनन्तर समानसे वह भी असम्भव होनेपर नष्ट धर्म्मवालोंसे भोजनकी वस्तु हरन करे; इसलिये मैं प्राण नष्ट होनेके समय इन चाण्डालोंके घरसे कुत्तेका मांस हरण करूंगा; इसमें चोरी दोष नहीं दीखता है।

हे भारत! महामुनि विश्वामित्र ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके उस चाण्डालके घरमें सो रहे। जब चाण्डाल लोग सो गये, तब भगवान मुनि घोर रात्रि देखके धीरे धीरे उठके उसके घरमें घुसे। अदसूरत चाण्डाल श्लेष्माच्छन्न नेत्रसे निद्रितकी तरह स्थित था। वह मुनिको मांस चुराते देख रूखे और विभिन्न स्वरसे कहने लगा।

चाण्डाल बोला, जातिके सब लोग सोये हुए हैं अकेला केवल मैं ही जागता हूं, इस समय कौन मेरे घरमें घुसके मांस चुरानेके वास्ते दण्ड उखाड़ रहा है; वह अपने जीवनमें संशय समझे।

अनन्तर विश्वामित्र सहसा चोरी कार्य्यके कारण व्याकुल और भयभीत तथा लज्जायुक्त होकर उससे बोले, हे आयुष्मन्! मैं विश्वामित्र क्षुधासे अत्यन्त आर्त्त होकर तुम्हारे गृहमें आया हूं। हे सद्बुद्धिवाले! तुम यदि साधुदर्शी हो, तो मेरा बध मत करो। चाण्डाल महर्षिका ऐसा बचन सुनके शङ्कायुक्त चित्तसे शय्यापरसे उठके उनके समीप आया; और दोनों आखोंसे बहते हुए आंसुओंको पोंछके सम्मानपूर्व्वक हाथजोड़के उनसे बोला। हे ब्रह्मन्! इस रात्रिके समय आपको कौनसा कार्य्य साधन करनेकी इच्छा है?

विश्वामित्र चाण्डालको धीरज देके बोले, मैं अत्यन्त भूखा हूं, इसलिये मृतकके समान होकर तुम्हारे गृहमें कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करनेके वास्ते आया हूं, मैं भूखा होकर पापसे आक्रान्त हुआ हूं, भूखे पुरुषमें लज्जा रहनी सम्भव नहीं है; इस समय क्षुधाने मुझे दूषित किया है, मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करूंगा। मेरा प्राण अवसन्न होरहा है, क्षुधा मेरे वेदज्ञानको नष्ट करती है; मैं निर्व्वल चेतरहित और खाद्याखाद्य विचारसे विमुख हुआ हूं; चोरी कर्म्मको अधर्म्म जानके भी मैं कुत्तेका मांस हरण करनेके वास्ते उद्यत हुआ हूं। मैंने तुम्हारी बस्तीमें हरएक गृहमें घूमकर भी भिक्षा नहीं पाई; इसलिये इस समय पाप

कार्य्यमें मेरी प्रवृत्ति हुई हैं, मैं कुत्ते का निकृष्ट मांस हरण करूंगा। भगवान अग्नि जो देवताओंके मुखस्वरूप हैं और पुरोधा होकर पवित्र वस्तु मात्र सच्च किया करते हैं, उन्हें भी समयके अनुसार सर्व्वभुक् होना पड़ता है, इस लिये मुझे भी धर्म्मानुसार वैसा ही समझो।

चाण्डाल बोला, हे महर्षि! मेरा वचन सुनिये और सुनकर जिसमें धर्म्म नष्ट न हो, वैसा ही अनुष्ठान करिये। हे विप्रवर! मैं आपसे जो कहता हूं, वह भी आपका धर्म्म है, पण्डित लोग कुत्ते को सियारसे भी निकृष्ट समझते हैं; उसका बुरा मांस शरीरके अधम स्थानसे भी अधिक निकृष्ट है; इससे आपने यह उत्तम कार्य्य नहीं किया। हे महर्षि! चाण्डालस्व, विशेष करके अभच्य मांस हरण करना अत्यन्त धर्म्मनिन्दित कर्म्म है, आप प्राण धारणके वास्ते दूसरा कोई उत्तम उपाय देखिये हे महामुनि! मांसलोभके कारण जिसमें आपकी तपस्या नष्ट न होवे; विहित धर्म्मको मालूम करके धर्म्मसङ्कर करना योग्य नहीं, आप धार्म्मिक पुरुषोंमें अग्रगण्य हैं; इसलिये धर्म्म परित्याग न करिये।

हे भरतश्रेष्ठ! महामुनि विश्वामित्रने चाण्डालका ऐसा बचन सुनके और क्षुधासे आर्त्त होकर फिर उस इस प्रकार उत्तर दिया, मैंने निराहार रहके घूमते हुए बहुत समय बिताया है अब मेरे प्राणधारणका दूसरो कोई उपाय नहीं है। प्राणान्त होनेके समय जिस किसी कर्म्मसे होसके, जीवित रहे; उसके अनन्तर समर्थ होनेपर धर्म्माचरण करे। क्षत्रियोंका इन्द्रकी तरह पालन करना ही धर्म्म है, ब्राह्मणोंका अग्निकी तरह पवित्रता ही धर्म्म हुआ करता है; वेदरूपी अग्नि मेरा बल है, मैं उस ही बलको अवलम्बन करके अभच्य मांस भक्षण करके क्षुधाको शान्त करूंगा। जिस किसी उपायसे बचारे जीवन धारण किया जा सके, यत्नपूर्व्वक वैसा ही करना चाहिये। मरनेकी अपेक्षा जीवन श्रेष्ठ है, जीवित रहनेसे फिर धर्म्माचरण हो सकता है; इसलिये मैं प्राणधारणके निमित्त ज्ञानपूर्व्वक अभच्यको भक्षण करनेमें उद्यत हुआ हूं; तुम इसमें अनुमोदन करो। मैं जीवित रहनेसे धर्म्माचरण करूंगा और जैसे ज्योतिवाले पदार्थ घोर अन्धकारको नष्ट करते हैं, वैसे ही विद्या और तपोबलसे सब अशुभ कर्म्मोंको खण्डन करूंगा।

चाण्डाल बोला, इस अभच्य मांसको खानेसे परमायुकी बढ़ती नहीं होती, प्राण प्रसन्न नहीं होता अमृतपानकी तरह तृप्ति नहीं होती; इससे आप दूसरी कुछ भिक्षा प्रार्थना करिये, कुत्ते का मांस भक्षण करनेमें चित्त न लगाइये; कुत्ते ब्राह्मणोंके अभच्य हैं।

विश्वामित्र बोले! इस दुर्भिक्षके समय दूसरा मांस सुलभ नहीं है, मेरी भी कुछ सम्पत्ति नहीं है, मैं क्षुधाके निमित्त उपायरहित और निराश हुआ हूं; इसलिये इस कुत्ते के मांसमें छः प्रकारके रसोंका स्वाद लेना उत्तम समझता हूं।

चाण्डाल बोला, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये शशक आदि पांच पञ्च-नखवाले पशु ही भच्य हैं इस विषयमें आपके निमित्त शास्त्र ही प्रमाण है, इस लिये आप अभच्य वस्तुके खानेमें प्रवृत्ति न कीजिये।

विश्वामित्र बोले, अगस्त मुनिने भूखे हो कर वातापी नाम दानवको भक्षण किया था, मैं भी आपदग्रस्त और क्षुधासे आर्त्त हुआ हूं इसलिये कुत्ते का महा निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, आप और कुछ भिक्षा मांगिये, इस स्थानमें इस तरह अभच्य भक्षण नहीं कर सकेंगे; यह अवश्य ही आपका अकर्त्तव्य है, तब यदि इच्छा हो, तो कुत्ते का मांस ले जाइये।

विश्वामित्र बोले, शिष्ट पुरुष ही धर्माचरण विषयमें कारण है इससे मैं उन्हींके चरित्रोंका अनुसरण करूंगा, पवित्र सामग्रीकी भक्षण करनेकी अपेक्षा इस कुत्तेके मांसको मैं उत्तम भक्ष्य समझता हूं।

चाण्डाल बोला, दुष्ट पुरुषोंने जैसा आचरण किया है, वह सनातन धर्म नहीं है; इस समय आपको ऐसा अकर्त्तव्य कर्म करना उचित नहीं है; आप छलके जरिये अशुभ कार्य्य न करिये।

विश्वामित्र बोले, ऋषि होकर कोई साधारणके असम्मत पापके करनेमे समर्थ नहीं होता, परन्तु इस समय मैं कुत्ता और मृग दोनोंको ही पशु कहके तुल्य ज्ञान करता हूं, इससे मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस भोजन करूंगा।

चाण्डाल बोला, वातापी ब्राह्मणोंको भक्षण करता था, इस ही लिये महर्षि अगस्त्यने ब्राह्मणोंकी प्रार्थनाके अनुसार उसे भक्षण किया, वैसी अवस्थामें नरमांस भक्षण दोषयुक्त नहीं है; जिसमें पापका स्पर्श नहीं, वही धर्म है और सब तरहके उपायसे ब्राह्मणोंकी रक्षा करनी उचित है।

विश्वामित्र बोले, मैं ब्राह्मण हूं मुझे शरीरही परम प्रिय और पूजनीय मित्र है, उस शरीरके रक्षाके निमित्तही इस निकृष्ट मांसको हरन करनेकी इच्छा करता हूं; इसलिये ऐसे कुसमय चाण्डालोंका भी भय नहीं करता।

चाण्डाल बोला, हे विद्वन्! मनुष्य लोग वल्कि अपने जीवनको त्यागते तथापि कोई अभक्ष्य वस्तुके भक्षण करनेमें प्रवृत्त नहीं होते वे लोग भूखको जीतके ही इस लोकमें समस्त कामना प्राप्त करते हैं, इससे आप भी क्षुधाके वेगको सहके इच्छानुसार प्रीति लाभ करिये।

विश्वामित्र बोले, पाप कर्म करके प्राणत्यागनेसे परलोकमें संशय उपस्थित होता है, यह ठीक है; परन्तु सब कर्म्मोंके नष्ट होनेपर कुछ संशय नहीं रहता। मैं शान्तचित्त होकर सदा व्रताचरण किया करता हूं; इसलिये तपस्याके जरिये अभक्ष्य भक्षणरूपी पापसे छूटंगा; इस समय धर्म आचरणके मुख्य साधन शरीरकी रक्षा करनी उचित है, इसीसे मैं अभक्ष्य मांसको भक्षण करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, विवेक शक्तियुक्त पुरुषोंके समीप यह अभक्ष्य भक्षण भी पवित्र कर्म कहके वर्णित होता है और मूढ़ पुरुष ही आपदकालमें कुत्तेके मांसको अभक्ष्य कहा करते हैं, मैं जीवन संशयके समयमें यद्यपि इस असत् कार्य्यको करूं, तौभी तुम्हारी तरह चाण्डाल न हूंगा।

चाण्डाल बोला, मुझे यह निश्चय मालूम होता है, कि इस अकार्य्यसे आपका रक्षा करना योग्य है, ब्राह्मण यदि दुष्कर्म करे, तो उनमें ब्राह्मणत्व नहीं रहता; इस ही कारण मै आपको निवारण करता हू।

विश्वामित्र बोले, मेढक ऊंचे स्वरसे चिल्लाते रहते हैं, गौवें कभी जल पीनेसे विरत नहीं होतीं, तुम्हें धर्म उपदेश करनेका कुछ अधिकार नहीं है, इसलिये तुम आत्म-प्रसंशा मत करो।

चाण्डाल बोला, हे द्विजवर! आपके विषयमे मुझे करुणा हुई है, इसलिये मैं सुहृद भावसे आपको कहता हूं; इससे यदि आप इसे अपना कल्याणदायक समझिये तो ऐसा ही करिये, परन्तु लोभके कारण पाप कर्म न कीजिये, मैं आपको पापाचरण करनेसे निवारण करके भी अपराधी होता हूं।

विश्वामित्र बोले, तुम यदि मेरे सुहृद और सुखकी इच्छा करनेवाले हो, तो मुझे इस आपदसे उद्धार करो; मैं कुत्तेका निकृष्ट मांस परित्याग करके अपनेको धर्मपूर्व्वक रक्षित समझूं।

चाण्डाल बोला, यह कुत्तेका मांस मेरा अपना भक्ष्य है, इसे आपको दान नहीं कर

सकता ; और मेरे सम्मुख आप इसे हरण करेंगे, उसमें भी उपेक्षा न कर सकूंगा । मैं इसे दान करने और आप ब्राह्मण होके इसे ग्रहण करनेसे हम दोनों ही नरकमें गमन करेंगे । विश्वामित्र बोले, मैं आज यदि इस पापयुक्त कर्म्म करके शरीर रक्षा करते हुए जीवित रहूंगा, तो भविष्यत् कालमें परम धर्म्म आचरण करूंगा उपवास करके शरीर त्यागना और अभक्ष्य-भक्षणके जरिये जीवित रहना, इन दोनोंके बीच कौनसा श्रेष्ठ है, उसे तुम कहो।

चाण्डाल बोला, वंश परम्परासे प्रचलित धर्म्म-सम्पादन विषयमें आत्मा ही साक्षी है, इसलिये इसमें पाप है, वा नहीं ; उसे आप ही जानते हैं। जो पुरुष कुत्तेके मांसको भक्ष्य कहके आदर करता है, मालूम होता है, उसके लिये दूसरी कोई वस्तु भी परित्याग करनेके योग्य नहीं होता है।

विश्वामित्र बोले, अभक्ष्य वस्तुके ग्रहण करने वा भोजन करनेसे अवश्य पाप होता है ; परन्तु प्राण नष्ट होनेके समय वह दोषयुक्त नहीं है। जिसमें हिंसा वा मिथ्या व्यवहार नहीं है और जिस कर्म्मके करनेसे जनसमाजके बीच अत्यन्त निन्दित नहीं होना पड़ता ; वैसे अभक्ष्य भक्षणमें बहुत भारी पापका कारण नहीं है।

चाण्डाल बोला, यदि अभक्ष्यको भक्षण करके प्राण रक्षा करना ही आपका मुख्य कारण हुआ, तो वेद और आर्य्य धर्म्म आपके समीप कुछ भी नहीं है। हे द्विजवर ! आप जब अभक्ष्य भक्षण करनेके लिये आग्रह प्रकाश करते हैं, तब खाद्याखाद्य वस्तु मात्रमें ही कुछ दोष नहीं है ;—ऐसा ही प्रतिपन्न होता है।

विश्वामित्र बोले, भोजन करनेसे अत्यन्त पाप होता है ; ऐसा विचार नहीं किया जाता सुरापान करनेसे लोग पतित होते हैं, यह शास्त्रोंका शासनमात्र है ; निषिद्ध मैथुन आदि पापकार्य्य मात्र ही जो पुण्यको नष्ट करते हैं, ऐसा निश्चय नहीं है।

चाण्डाल बोला, नीच जाति चाण्डालके घरसे चोरी वृत्तिके जरिये, अत्यन्त आग्रहके सहित जो कुत्तेका मांस हरण करता है, उस विद्वान् पुरुषमें सच्चरित्रता नहीं रहती और अन्तमें उसे अवश्य ही शोकित होना पड़ता है, चाण्डाल उस समय महर्षि विश्वामित्रसे ऐसा ही कहके निवृत्त हुआ ; बुद्धिमान् विश्वामित्रने भी कुत्तेका निकृष्ट मांस हरण करके प्रस्थान किया। अनन्तर उस महामुनिने जीवन धारणकी इच्छा करते हुए कुत्तेका मांस लेकर वनमें स्वजनोंके सहित उसे भोजन करनेकी इच्छा की। अनन्तर उन्होंने विचार किया कि आगे विधिपूर्व्वक देवताओंको तृप्त करके फिर इच्छानुसार इस कुत्तेके मांसको भोजन करूंगा, मुनिने ऐसा ही स्थिर करके ब्राह्म विधिके अनुसार अग्नि लाके ऐन्द्राग्नेय विधानके जरिये स्वयं चरु पाक किया। हे भारत ! अनन्तर उन्होंने विधिपूर्व्वक भागके अनुसार इन्द्र आदि देवताओंको आवाहन करके देव और पितर-कर्म्म आरम्भ किया। उस ही समय देवराजने प्रजासमूहको सञ्जीवित करते हुए बहुत ही जल बरसाया ; उससे सब औषधी उत्पन्न हुईं। भगवान् विश्वामित्र तपस्यासे पाप जलाकर बहुत समयके अनन्तर परम सिद्धिको प्राप्त हुए। उन्होंने उस आरम्भ किये हुए कार्य्यकी समाप्ति करते हुए वैसे चरुका स्वाद न लेकर ही देवताओं और पितरोंको सन्तुष्ट किया था, विद्वान् पुरुष आपदायुक्त होके जीवन धारणके अभिलाषी होकर इसी प्रकार अहङ्काररहित चित्तसे जिस किसी उपायसे होसके दुःखित आत्माका उद्धार करे। सदा ऐसा ही उपाय अवलम्बन करके जीवित रहना उचित है ; पुरुष जीवित रहनेसे पुण्य समूह और कल्याण भोग कर सकता है। हे कुन्तीनन्दन ! इस-

लिये विद्वान् पुरुषको धर्माधर्म निर्णयके विषयमें कृतबुद्धि लोगोंकी बुद्धिको अवलम्बन करके इस लोकमें जीवन व्यतीत करना उचित है।

१४१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, आपने अनृतकी तरह श्रद्धारहित जिस घोर कार्य्यको महत् पुरुषोंका भी कर्त्तव्य कहके वर्णन किया है, उसे पूछना पड़ता है, कि सुनकर डाकुओंका क्या कर्म है और हम लोगोंके लिये ही कौन सा विषय त्यागने योग्य है मैं शोक और मोहसे युक्त हुआ हूं; मेरा धर्मबन्धन शिथिल हुआ जाता है; मैं चित्तको शान्त करनेमें किसी प्रकार अध्यवसाय लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं; इसलिये मैं ऐसा धर्माचरण करनेमें अशक्त हूं।

भीष्म बोले, मैं वेदागम आदि शास्त्रोंको सुनकर तुम्हें ऐसा धर्माचरण करनेका उपदेश नहीं करता हूं! आपदकालमें ऐसा आचरण न करनेसे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं; इस ही कारण कवियोंने निज बुद्धि कौशलके जरिये अच्छी तरह इसे कल्पना किया है। कोकिल, वराह, सिंह आदिसे शिक्षा लाभ करके, जब जिस विषयमें तुम्हारी यह बुद्धि प्रवर्त्तित होवे, उसे ही करना; धर्मके एक देश मात्रका अवलम्बन करना उचित नहीं है, राजाको अनेक तरहकी बुद्धि धारण करनी योग्य है। हे कुरुनन्दन! बुद्धि प्राखर्य्य द्वारा धर्म और साधुओंके आचरणको सदा जानना चाहिये; मेरा वचन सर्व्वदा उसे ही प्रतिपन्न करता है; इसे मालूम करो। राजा लोग निज निज बुद्धिके प्रभावसे विजयी होते हैं; इसलिये बुद्धि बल अवलम्बन करके धर्मसंस्कारमें प्रवृत्त होना उचित है। राजधर्म अनेक शाखाओंसे युक्त है; इसलिये उसके एक देशके सहारे व्यवहार करना उचित नहीं है। अध्ययनके समय अच्छी तरह न सीखनेसे बुद्धि शुद्धि नहीं होती, निर्व्वल पुरुष एक शाखा धर्मके जरिये किसी कार्य्यको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं होते। हे भारत! एक मात्र धर्म ही कभी धर्म और कभी अधर्म रूपसे मालूम होता है; जो पुरुष इस विषयमें अनभिज्ञ हैं, वे दो तरहके मार्गमें पड़के संशययुक्त होते हैं; इससे बुद्धिके अनुसार इस प्रकार द्वैधको मालूम करना उचित है। अनन्तर जो करना होगा, पहिले उसे निश्चय करके बुद्धिमान् राजा प्रजासमूहके समीपसे छठवां भाग कर ग्रहण करे। आपदकालमें उससे अधिक ग्रहण करना अनुचित नहीं है; दूसरे लोग इसी प्रकार राजाके चरित्रको धर्म समझते हैं, इसमें अन्यथा होनेसे विपरीत होता है। कोई कोई यथार्थ ज्ञानी, कोई वृथा ही ज्ञानयुक्त होते हैं; इसे यथार्थ रीतिसे जानकर बुद्धिमान् पुरुष साधुओंके मतको ग्रहण किया करते हैं। धर्मद्वेषी, अर्थज्ञानरहित मनुष्य शास्त्रोंकी निन्दा तथा शास्त्रोंका अप्रमाण प्रकट किया करते हैं। हे महाराज! जो लोग शास्त्र और आचारके निन्दा-प्रसङ्गमें केवल जीविका-निर्व्वाहके लिये विद्या सीखकर यशको इच्छा करते हैं, वेही धर्मद्वेषी और पापी हैं। शास्त्रज्ञानरहित, अयुक्तिसम्पन्न लोगोंकी तरह अपरिणत बुद्धिवाले मूर्ख लोग अपने कर्त्तव्य कर्मका निर्व्वाह करना नहीं जानते। शास्त्रमें दोषदर्शी पुरुष शास्त्रोंकी निन्दा किया करते हैं; शास्त्रोंका अर्थ मालूम होनेपर भी उन लोगोंके समीप वह साधुभावसे प्रतिपन्न नहीं होता; वह लोग कृतविद्य पुरुषोंकी तरह वचनरूपी अस्त्र वा बाण धारण करके ही दूसरेकी विद्याके निन्दावादके जरिये निज विद्या प्रकट करते हैं। हे भारत! तुम ऐसे लोगोंको विद्यावणिक् और राक्षसोंके समान जानो; वे लोग साधु पुरुषोंके विहित धर्मको छलपूर्व्वक परित्याग करते हैं। मैंने

सुना है, वचन वा बुद्धिके जरिये धर्म्म उच्चारण करनेसे ही धर्म्म नहीं होता; देवराजने स्वयं वृहस्पतिका यह उपदेश कहा था। इस समय मैं बिना कारणके कोई वचन नहीं कहता हूं, कोई कोई पुरुष शास्त्रज्ञानसे युक्त होकर भी उसके अनुसार धर्म्म आचरण नहीं करते, कोई कोई पण्डित लोक-यात्रा विधानको ही धर्म्म कहा करते हैं; पण्डित पुरुष स्वयं साधुओंके अनुष्ठित धर्म्मका आचरण करें। हे भारत! बुद्धिमान् लोग यदि क्रोध, मोह और अज्ञानके वशमें होकर शास्त्रीय उपदेश दान करें, तो वह जनसमाजमें ग्रहण नहीं किया जाता और जो लोग शास्त्रदर्शिनी बुद्धि धारण करते हैं, उनके समीप उक्त उपदेश प्रशंसनीय नहीं है, बल्कि वे लोग अल्प-बुद्धियुक्त पुरुषोंका वचन ज्ञान पूरित होनेसे उसे साधु समझते हैं। युक्तिके जरिये जो शास्त्र नष्ट होजाय, वह शास्त्रोंमें नहीं गिना जाता। शुक्राचार्य्यने दानवोंसे यह सन्देहको नष्ट करनेवाला वचन कहा था,—सन्देह युक्त ज्ञानका रहना और न रहना समान है; वैसे ज्ञानके जरिये जो धर्म्म होता है, उसके मूलको काटना और मेरे इन सब उपदेशोंको अङ्गीकार करना तुम्हें अवश्य उचित है, तुमने जो उग्र कर्म्म सिद्ध करनेके वास्ते जन्म लिया है, वह क्या तुम्हें स्मरण नहीं है? देखो, मैंने युद्ध-विग्रहमें प्रवृत्त होकर कितने ऐश्वर्य्यवान क्षत्रियोंको स्वर्गलोकमें भेजा है उससे उन लोगोंकी सद्गति हुई है; परन्तु कोई कोई पुरुष इसके वास्ते मेरे ऊपर सन्तुष्ट नहीं हुए। प्रजापतिने बकरे, घोड़े और क्षत्रियोंको समान रूपसे परोपकारके निमित्त उत्पन्न किया है; इससे सदा प्राणियोंका उपकार करके सुरलोकमें गमन करना ही उचित है; अवध्य पुरुषके मारनेसे जैसा दोष होता है, बध्य पुरुषका बध न करनेसे भी वैसा ही दोष हुआ करता है। साधु लोग जिसे त्यागते हैं, डाकू लोग उसी निज कर्त्तव्य कर्म्मको ग्रहण करते हैं, इसलिये राजा अत्यन्त तीक्ष्ण होकर प्रजासमूहको स्वधर्म्ममें स्थापित करे; इसमें अन्यथा होनेसे वे लोग भेड़ियेकी तरह परस्परमें एक दूसरेको भक्षण करते हुए भ्रमण करेंगे। कौओंकी तरह जलसे मछली हरनेकी भांति जिसके राज्यमें डाकू लोग परधन हरन किया करते हैं वह क्षत्रियोंके बीच अत्यन्तही पापी है। राजन्! तुम वेदविद्यायुक्त, सत्कुलमें उत्पन्न हुए लोगोंको मन्त्रोपदपर अभिषिक्त करके धर्म्मके अनुसार प्रजा पालन और पृथ्वी शासन करो। जो राजा अन्याय रीतिसे प्रजासमूहके निकट कर ग्रहण करता है,वह पालन-धर्म्मसे हीन और विशेष उपायमें अनभिज्ञ क्षत्रिय क्लीव शब्दसे पुकारे जाने योग्य होता है। राजा लोग अत्यन्त कोमल तथा अत्यन्त कठोर होनेसे धर्म्मपूर्व्वक प्रशंसित नहीं होते; इसलिये मृदुता और कठोरता दोनोंको ही अतिक्रम करना उचित नहीं है; इससे तुम पहिले उग्र होकर पीछे मृदु बनो। मैं तुमपर अत्यन्त स्नेह किया करता हूं; इसलिये यह अत्यन्त कष्टयुक्त क्षत्रिय धर्म्म कहा है। विधाताने उग्र कार्य्योंके करनेके ही वास्ते तुम्हें उत्पन्न किया है; इसलिये तुम उसहीके अनुसार राज्य शासन करो। हे भरतश्रेष्ठ! बुद्धिमान शुक्राचार्य्यने कहा है, आपदकालमें अशिष्टोंका निग्रह और शिष्टोंकी सदा प्रतिपालन करना ही धर्म्म है।

युधिष्ठिर बोले, हे साधुसत्तम पितामह! दूसरे लोगोंसे अलङ्घनीय यदि कोई मर्य्यादा हो, तो मैं पूछता हूं, आप उसे कहिये।

भीष्म बोले, वेद जाननेवाले सच्चरित्र तपस्वी ब्राह्मणोंकी सेवा करो, यही अत्यन्त पवित्र उत्तम कर्म्म है; तुम देवताओंके विषयमें जैसा व्यवहार किया करते हो, ब्राह्मणोंके विषयमें भी सदा वैसा ही व्यवहार करो। हे महाराज!

ब्राह्मणोंने क्रुद्ध होकर अनेक दुष्कर कर्म किये हैं, उन लोगोंकी प्रसन्नतासे बहुत यश प्राप्त होता है, अप्रसन्नतासे भय उत्पन्न हुआ करता है। ब्राह्मण लोग प्रसन्न होनेसे अमृतके समान और क्रुद्ध होनेसे विषकी तरह हुआ करते हैं।

१४२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाबुद्धिमान पितामह! शरणागत लोगोंके प्रतिपालन करनेसे जो धर्म होता है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम महाराज! शरणागत पुरुषोंके प्रतिपालन करनेसे बहुत ही धर्म हुआ करता है; तुम इस विषयके प्रश्न करनेके योग्यपात्र हो। हे राजन्! शिवि आदि राजा लोग शरणागत लोगोंको प्रतिपालन करके परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं मैंने सुना है, किसी कपोतने शरणागत शत्रुको विधिपूर्वक सम्मान करके निज मांस भोजन कराया था।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पहिले समयमें कपोतने किस प्रकार शरणागत शत्रुको निज मांस भोजन कराया और किस तरह उसकी गति हुई थी?

भीष्म बोले, हे राजन्! भगवान भार्गवने मुचकुन्द राजाके समीप सब पापोंको नष्ट करनेवाली दिव्य कथा कही थी, उसे तुम सुनो। हे पुरुषप्रवर पृथापुत्र! पहिले मुचकुन्द राजाने भार्गवके निकट विनीत भावसे इस विषयमें प्रश्न किया था। भार्गवने उस सेवा करनेवाले राजासे कपोतने जिस प्रकार सिद्धि लाभ की थी; उस कथाको इस भांति वर्णन किया था, मुनि बोले, हे महाभुज महाराज! मैं धर्म, काम, अर्थ-निर्णय युक्त कथा कहता हूं, सावधान होके सुनो। किसी महावनके बीच कालान्तक यमराजके समान विकट रूपवाला एक पक्षीघातक निषाद भ्रमण करता था। उसका शरीर कौआकी तरह काला, दोनों नेत्र लाल, दोनों जङ्घा बहुत लम्बी, दोनों चरण छोटे, मुखमण्डल भयानक और दोनों गाल बड़े थे। वह भयङ्कर कार्य्य करता था इसीसे स्त्रीके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उसका सुहृद सम्बन्धी और बान्धव नहीं था; सब कोईने ही उसे परित्याग किया था, क्योंकि पापाचारी मनुष्योंको पण्डित लोग एकबारगी परित्याग किया करते हैं, जो पुरुष अपनेको ही विष भक्षण वा उद्बन्धन आदिसे नष्ट कर सकता है वह किस प्रकार दूसरेका हितसाधन करेगा? जो सब दुराचारी नृशंस मनुष्य प्राणियोंका प्राण हरण करते हैं, वे सर्पकी तरह जीवोंके उद्वेगजनक होते हैं। हे प्रजानाथ! वह निषाद जाल ग्रहण करके वनमें सदा पक्षियोंको मारकर उनका मांस बेंचता था। उस दुष्टात्माके इसी प्रकार व्यवसायमें प्रवृत्त रहनेसे बहुत समय बीत गया; तौभी वह निज कार्य्यसे जो अधर्म होता है, उसे न जान सका। वह इसी प्रकार उपायके सहारे भार्य्याके सहित समय बिता रहा था, मूढ़ताके कारण उसे दूसरे किसी व्यवसायमें अभिलाषा नहीं हुई। अनन्तर किसी समय वह निषाद वनके बीच स्थित था; उसको चारों ओर प्रचण्ड पवन मानो वृक्षोंको उखाड़ता हुआ प्रकट हुआ, जैसे समुद्र नौकासमूहसे परिपूरित होता है, वैसे ही आकाशमण्डल मुहूर्त्त भरके बीच बादलों और बिजली समूहसे भर गया, देवराजने बहुतसी जलधारा वर्षा करके क्षणभरमें पृथ्वीको जलसे परिपूर्ण किया। अनन्तर उस वर्षाके समय निषाद चेतरहित और शीतसे आरत होकर व्याकुलचित्तसे वनके बीच घूमते हुए कहीं भी ऐसी नीची भूमि न पाई जो कि जलसे परिपूर्ण न हुई हो। वनके सब मार्ग भी

जलसे भर गये थे। वेगपूर्व्वक जलकी वर्षा होनेसे पक्षीसमूह मरके पृथ्वीमें पड़ हुए थे। मृग, सिंह, वराह आदि ऊंचे स्थलको अवलम्बन करके सोरहे। जङ्गलीजीव प्रचण्डवायु और वर्षासे त्रासित, भयसे आर्त्त और भूखे होकर सब कोई वनमें एक स्थलमें भ्रमण करने लगे। पक्षी घातक निषाद शीतार्त्त शरीरसे किसी स्थानमें जाने वा एक स्थानमें स्थिर रहनेमें समर्थ न हुआ। अन्तमें उसने देखा, कि शीतसे विह्वल एक कपोती पृथ्वीपर पड़ी है, वह पापी स्वयं पीड़ित होनेपर भी कपोतीको देखते ही उसे निज पीञ्जरेमें डाल लिया। वह स्वयं दुःखित होनेपर भी दूसरेके दुःखका कारण हुआ; वह पापात्मा पाप करनेवाला था, इसीसे पापकार्य्यमें ही प्रवृत्त हुआ। उसने वनमें मेघमण्डल पर्य्यन्त ऊंचा एक वृक्ष देखा; छाया वास और फलकी आशासे पक्षी समूह उसका आश्रय कर रहे थे; विधाताने मानों परोपकारके ही निमित्त साधु पुरुषोंकी तरह उसे बनाया था। अनन्तर फूले हुए कुमुददलसे शोभित जलयुक्त बड़े तालावकी तरह आकाशमण्डल क्षणभरमें तारा समूहसे सुशोभित हुआ। शीतविह्वल व्याधाने बादल रहित, तारोंसे प्रकाशमान आकाश और घोर रात्रि देखकर सब ओर देखने लगा। "इस स्थानसे बहुत दूर मेरा निवास स्थान है,—ऐसा विचारके उसने उस वृक्षके मूलमें रात्रि बितानेका निश्चय किया। अनन्तर उसने हाथ जोड़के वृक्षको प्रणाम करके कहा। हे तरुवर! तुम्हारे ऊपर जो सब देवता हैं, मैं उनका शरणागत हुआ हूं। पक्षीघातकने महादुःखमें पड़के ऐसा वचन कह कर पृथ्वीपर कुछ पत्ते बिछाकर पत्थरके ऊपर सिर रखके शयन किया।

१४३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! विचित्र तनरुहयुक्त एक पक्षी बहुत समयसे सुहृदोंके सहित उस वृक्षकी शाखापर वास करता था; उसकी भार्य्या प्रातःकाल चारा चुगने गई थी; रात्रि उपस्थित हुई तौभी वह आश्रममें न आई; इससे पक्षी अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगा, इसके पहिले प्रचण्ड पवन बहता था और जलकी वर्षा हुई थी; मेरी प्रेयसी अबतक भी क्यों नहीं आई? वह जो अभीतक नहीं लौटी, इसका क्या कारण है? वनमें मेरी स्त्रीका कुछ अमङ्गल तो नहीं हुआ? प्रियाविरहसे आज यह मेरा गृह सूना मालूम होता है। भार्य्यारहित गृहस्थका गृह पुत्र, पौत्र, बधू और सेवकोंसे परिपूरित होनेपर भी सूना हुआ करता है; पण्डित लोग गृहको घर नहीं कहते, गृहिणीको ही घर कहा करते हैं; गृहिणीरहित घर वनके समान है। मेरी वह आरक्तनयनी चित्राङ्गी मधुर वचन कहनेवाली प्यारी यदि आज न आवे, तो मेरे जीनेका कोई प्रयोजन नहीं है। जो उत्तम व्रत करनेवाली मेरे भूखे रहनेपर भोजन नहीं करती, स्नान न करनेपर स्नान नहीं करती, बिना बैठे बैठती नहीं और बिना सोये शयन नहीं करती थी; मेरे प्रसन्न होनेसे जो हर्षित और दुःखी होनेसे दुःखित होती थी; मेरे प्रवासमें गमन करनेसे जिसका मुख मलीन होता था और क्रुद्ध होनेपर जो प्रिय वचन कहती थी; वह पतिव्रता, पतिगति और पतिके प्रिय तथा हित कार्य्योंमें रत रहनेवाली प्रेयसी कहां गई? भूलोकमें जिसकी उसके समान भार्य्या है, वह पुरुष ही धन्य है। वह अनुरक्ता, सुस्थिरा, स्निग्ध-मूर्त्ति, भक्तिशालिनी तपस्विनी ही मुझे थकने वा भूखा होनेपर जान सकती है। जिसके प्रेयसी है, वह यदि वृक्षकी मूलमें भी वास करे तो वही उसके लिये गृहस्वरूप होता है और प्रियाहीन घर भी दुर्गम वनके समान हुआ करता है पुरुषकी

धर्म, अर्थ और काम साधन कार्य्यमें भार्य्या ही सहाय हुआ करती हैं और विदेश जानेके समय एक मात्र भार्य्या ही पुरुषकी विश्वास-पात्र रहती है। लोकमें भार्य्या ही पुरुषका परम प्रयोजन सिद्ध करती है, सहायरहित पुरुषके लोकयात्रा निर्व्वाहके विषयमें भार्य्या ही सहायक होती है। पीड़ित पुरुषकी औषध समान सदा रोगयुक्त और क्लेशमें पड़े हुए मनुष्योंके लिये भार्य्याके समान और कोई भी नहीं, भार्य्याके समान बन्धु नहीं, भार्य्याके समान आश्रय नहीं और जनसमाजमें धर्म्म संग्रहके विषयमें भार्य्याके समान और कोई भी सहायक नहीं है। जिसके घरमें पतिव्रता प्रियवादिनी भार्य्या नहीं है, उसे वनमें गमन करना ही योग्य है, उसके लिये वन और घर दोनों ही समान हैं।

१४४ अध्याय समाप्त।

कपोत इसी तरह विलाप कर रहा था, तब पक्षिघाती निषादके हस्तगत हुई कपोती पतिका करुणायुक्त बचन सुनके कहने लगी। कपोती बोली, अहो! मैं अत्यन्त सौभाग्यवती हूं, मेरा पति क्या ही प्रियवादी है! मुझमें गुण हो, वा न हो, ये तो ऐसा कहते हैं, जिस नारीके ऊपर पति प्रसन्न नहीं है, उसे स्त्री कहके गिनना अनुचित है। स्त्रियोंके ऊपर यदि पति प्रसन्न रहे, तो सब देवता ही सन्तुष्ट होते हैं; अबलाओंका जो पति ही परम देवता स्वरूप है, उस विषयमें अग्नि ही साक्षी रहती है। जैसे पुष्प-स्तवकयुक्त लता दावानलके जरिये जल जाती हैं, पतिके असन्तुष्ट रहनेसे नारी भी उसी प्रकार भस्म होजाती हैं। निषादके हस्तगत हुई कपोती दुःखसे आर्त्त होकर उस समय इसी भांति चिन्ता करके शोकित पतिसे बोली, हे नाथ! मैं तुम्हें कल्याणकी कथा कहती हूं, तुम सुनकर वैसा ही करो,—तुम शरणागत पुरुषका विशेष रीतिसे परित्राण करो; यह तुम्हारे स्थानपर आके सो रहा है, यह पुरुष शीतसे दुःखित तथा क्षुधासे आर्त्त हुआ है; इसलिये इसका सत्कार करो, जो कोई ब्रह्महत्या करे, जो कोई लोक-माता गऊको मारे और जो पुरुष शरणागत पुरुषका वध करते हैं, उन लोगोंके पाप समान ही होते हैं। हमारी कपोतजातिके धर्म्म अनुसार जैसा व्यवहार विहित है, उसी भांति बुद्धिमान पुरुषको सदा उसका अनुसरण करना उचित है, जो गृहस्थ शक्तिके अनुसार धर्म्माचरण करता है, मैंने सुना है अन्तकालमें अक्षय लोकोंको पाता है। इस समय तुमने कन्या पुत्रोंका मुख देखा है, इससे निज शरीरके लिये दया त्यागके धर्म्म और अर्थ परिग्रह करके जिस प्रकार इसका चित्त प्रसन्न हो, उसी तरह सत्कार करो। हे नाथ! तुम मेरे वास्ते दुःख मत करो, तुम यदि जीते रहोगे, तो शरीर यात्रा निर्व्वाहके लिये दूसरी भार्य्या पाओगे। पोंजरेमें स्थित तपस्विनी कपोती अत्यन्त दुःखित होकर पतिको देखके ऐसा ही बोली थी।

१४५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, कपोतने निज पत्नीका धर्म्मपूरित युक्तियुक्त बचन सुनके अत्यन्त हर्षित होकर आंसू भरे नयनसे पक्षिजीवी निषादको देखकर यथाविधि यत्नपूर्व्वक उसका सत्कार किया, और उसका स्वागत प्रश्न करके बोला तुम्हारी क्या अभिलाषा है, शीघ्र कहो? मैं उसे ही करूंगा। शत्रु भी यदि घरपर आवे, तो उसकी भी अतिथि सेवा करनी उचित है; कोई पुरुष यदि काटनेके लिये आवे, तो वृक्ष उसे छाया दान करनेमें विरत नहीं होता; पञ्चयज्ञमें

प्रवृत्त गृहस्थ पुरुषोंको विशेष यत्नके सहित शरणागत पुरुषोंका अतिथि-सत्कार करना चाहिये। गृहस्थाश्रममें रहकर जो पुरुष मोहके वशमें होकर पञ्चयज्ञ करनेमें विरत होता है; धर्म्मपूर्व्वक उसकी इस लोक और परलोकमें सद्गति नहीं होती; इससे तुम विश्वासी होकर कहो, मुझसे जो कहोगे, मैं वही करूंगा; तुम अपने मनमें शोक मत करो। निषाद कबूतरका ऐसा वचन सुनके उससे बोला, मैं जाड़ेसे अत्यन्त दुःखो हूं, इससे जिस प्रकार जाड़ेसे परित्राण हो, तुम वैसा ही विधान करो।

निषादके ऐसा कहनेपर कपोतने सामर्थ्यके अनुसार पृथ्वीपर कितने ही पत्तोंको इकट्ठा करके पत्तेके सहारे अग्नि लानेके वास्ते शीघ्र ही गमन किया। वह अग्निशालासे आग ले आया, फिर सूखे पत्तोंके बीच अग्नि जला दिया। कबूतर इसी तरह आग जलाके शरणागत पुरुषसे बोला, तुम विश्वासी होकर निःशंकचित्तसे अपना शरीर गर्म्म करो। कपोतका ऐसा वचन सुन निषादने अपना शरीर गर्म्म किया। अग्नितापसे उसका जीवन प्रत्यागत हुआ, तब वह कपोतको पुकारके बोला, हे पक्षी! मैं भूखसे कातर हुआ हूं, इससे इच्छा करता हूं कि तुम मुझे कुछ भोजन दान करो, कबूतरने व्याधेका वचन स्वीकार करके कहा, मेरे ऐसी कोई भोजनकी सामग्री सञ्चित नहीं है, जिससे तुम्हारी क्षुधा शान्त हो; मैं वनवासी हूं, प्रतिदिन जो कुछ लाता हूं, उसहीसे जीविका निर्व्वाह किया करता हूं; मुनियोंकी तरह हम लोगोंके पास भी भोजनकी वस्तु सञ्चित नहीं रहती। हे भरतश्रेष्ठ! कपोत निषादसे ऐसा वचन कहके दुःखित हुआ और क्या करना चाहिये, ऐसी ही चिन्ता करते हुए निज वृत्तिकी निन्दा करने लगा। कपोत मुहूर्त भरके अनन्तर सावधान होकर पक्षिघातीसे बोला, "थोड़ी देर ठहरो, मैं तुम्हें तृप्त करूंगा।" कपोत निषादसे ऐसा वचन कहके सूखे पत्तोंमें आग जलाकर अत्यन्त हर्षित होकर बोला, मैंने पहिले देवता पितर और महानुभाव ऋषियोंके निकट सुना है कि अतिथि पूजनसे बहुत धर्म्म हुआ करता है। इससे, हे प्रियदर्शन! मैं तुमसे सत्य कहता हूं, तुम मेरे ऊपर कृपा करो, अतिथि-पूजा विषयमें मुझे निश्चय ज्ञान हुआ है। अनन्तर प्रतिज्ञा किये हुए महाबुद्धिमान कपोतने मानो हंसते हंसते तीन बार उस अग्निकी प्रदक्षिणा करके उसमें प्रविष्ट हुआ। निषादने कपोतको अग्निमें प्रवेश करते देखकर "मैंने यह क्या किया।" मनही मन ऐसी ही चिन्ता करने लगा। हाय! मैं कैसा नृशंस और क्या ही निन्दनीय हूं। निजकर्म्मके दोषसे मुझे निःसन्देह महाघोर अधर्म्म होगा। व्याधा पक्षीकी वैसी अवस्था देखकर निज कर्म्मकी निन्दा करते हुए इसी भांति अनेक प्रकार विलाप करने लगा।

१४६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर क्षुधासे आर्त्त वह लोभी अग्निमें प्रविष्ट हुए कपोतको औरसे देखकर फिर यह वचन बोला कि मैं अत्यन्त नृशंस और निर्बुद्धि हूं, मैंने क्या कर्म्म किया। मैं अत्यन्त क्षुद्रजीवी हूं; इस कार्य्यसे अवश्य ही मुझे महापाप होगा। वह बार बार अपनी निन्दा करके बोला, मैं जब शुभ कार्य्यको त्यागके पक्षिलोभी हुआ हूं, तब मैं अवश्य ही अविश्वासी और अत्यन्त दुर्बुद्धि तथा सदा पापमें रत हूं; मैं बहुत ही निठुर हूं, इस ही लिये महात्मा कपोतने निज शरीरको जलाकर मुझे धिक्कारपूर्व्वक उपदेश दान किया, इसमें सन्देह नहीं है; इससे मैं स्त्री-पुत्रोंको त्यागके प्रिय प्राण छोड़ूंगा; महात्मा कपोतने मुझे धर्म्म-

उपदेश प्रदान किया है। जैसे ग्रीष्मकालमें थोड़े जलसे युक्त तालाब सूख जाते हैं, उसही प्रकार मैं आजसे निज शरीरको सब भोगोंसे रहित करके सुखाऊंगा। भूख, प्यास और आतपको सहके धमनी संयुक्त शरीरसे अनेक तरहके उपवासके सहारे पारलौकिक धर्म्म आचरण करूंगा। कैसा आश्चर्य है! कपोतने देह दान करके अतिथिसत्कार दिखाया। धर्म्मिष्ठ पक्षिश्रेष्ठका जैसा धर्म्म दीख पड़ा, मैं वैसा ही आचरण करूंगा, क्योंकि धर्म्म ही परम गति है। क्रूर कर्म्म करनेवाले लोभी व्याधने तीक्ष्ण व्रत अवलम्बनपूर्व्वक ऐसा ही कहके तथा निश्चय करके महाप्रस्थानका आश्रय करते हुए उस बूढ़ी कपोतीको छोड़के यष्टि, शलाका, जाल और पिञ्जरा परित्याग किया।

१४७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, निषादके जानेपर परम दुःखी कपोतवनिता शोकसे आर्त्त होकर रोदन करती हुई पतिको स्मरण करके बोली, नाथ! तुमने कभी मेरा अप्रिय कार्य्य किया था,—ऐसा स्मरण नहीं होता, बहुतसे पुत्रवाली स्त्रियें भी विधवा होनेपर शोक किया करती हैं; पतिसे रहित दुःखिनी नारी बन्धु जनोंमें शोचनीय होती हैं। तुमने सदा मेरा लालन किया, मीठे और मनोहर वचनोंसे अनेक तरहसे मेरा सत्कार किया है। पहाड़की गुफा, नदियोंके झरने और रमणीय वृक्षोंकी चोटियोंमें मैंने तुम्हारे सङ्गमें विहार किया है; आकाशमें गमन करनेके समय भी मैं तुम्हारे साथ सुखसे फिरती थी। हे नाथ! मैंने पहिले तुम्हारे साथ जो सब विहार किया है; आज अब वह कुछ भी नहीं है। पिता, भ्राता, पुत्र आदि परिमित सुख प्रदान करते हैं, अपरिमित सुख देनेवाले पतिकी कौन पूजा नहीं करती? पतिके समान नाथ नहीं, पतिके समान सुख नहीं; सर्व्वस्व धन परित्याग करके स्त्रियोंके लिये एक मात्र पतिही अवलम्बनीय है। हे नाथ! इस समय तुम्हारे बिना मेरे जीनेका कुछ प्रयोजन नहीं है; कौन सती सीमन्तिनी पतिहीन होकर जीनेका उत्साह करेगी? अत्यन्त दुःखिता पतिव्रता कपोतीने करुणा स्वरसे इसी भांति अनेक तरह विलाप करके जलती हुई आगमें प्रवेश किया। अनन्तर कपोतको स्त्रीने देखा, कि विचित्र कवचधारी विमानमें स्थित पतिकी महानुभाव सुकृति जन पूजा करते हैं। कपोत उस समय विचित्र माला, वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित होकर शतकोटि विमानोंपर विहार करनेवाले पुण्यवान पुरुषोंसे घिरा था। कपोतने विमानपर चढ़के स्वर्ग लोकमें जाकर वहां निज कर्म्मके अनुसार सत्कृत होकर प्रियाके सहित विहार करने लगा।

१४८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजन्! निषादने उस कपोत दम्पतीको विमानपर चढ़ हुए निवास करते देखकर दुःखित होकर चिन्ता किया, कि इसी प्रकार तपस्याके सहारे मैं परम गतिको प्राप्त होऊंगा। उसने मनहीमन ऐसाही निश्चय करके गमन करनेको तैयारी की। पक्षिजीवी व्याधा महाप्रस्थानका आश्रय करके स्वर्गप्राप्तिकी इच्छासे चेष्टारहित और ममताहीन होकर वायु भक्षण करने लगा। अनन्तर सुन्दर शीतल जलसे युक्त अनेक प्रकारके पक्षियोंसे परिपूरित एक तालाब उसके दृष्टिगोचर हुआ। प्यासा पुरुष उसे देखनेसे ही निःसन्देह तृप्त होता था। महाराज! व्याधा उस समय उपवासके कारण अत्यन्त कृश हुआ था, उसने उस रमणीय तालाबकी ओर विशेष रूपसे न देखकर

ही विविध श्वापदयुक्त एक महाघोर वनके बीच हर्षपूर्व्वक प्रवेश किया ; वनमें प्रवेश करते ही उसका शरीर कांटोंसे क्षत विक्षत होकर रक्त-पूरित होगया ; तोभी वह उस अनेक मृग आदिकोंसे युक्त निर्ज्जन वनके बीच भ्रमण करने लगा। अनन्तर वनमें वेगपूर्व्वक वायुके चलनेसे बड़े बड़े वृक्षोंके आपसमें रगड़ खानेसे प्रबल दावाग्नि प्रकट हुई। घोरे घोरे प्रलय-कालकी अग्नि समान प्रभायुक्त अग्नि क्रुद्ध होकर विविध वृक्षों और लतापल्लवोंसे परि-पूरित वनको जलाने लगी जब अग्निदेव ज्वाल-माला युक्त वायुसे बढ़के अग्निपुञ्जके सहारे मृग पक्षियोंसे युक्त घोर वनको जलाने लगे, तब व्याधाने शरीर त्यागनेके वास्ते कृतनिश्चय होकर हृष्टचित्तसे बढ़ी हुई अग्निकी ओर दौड़ा। हे भरतसत्तम! निषाद जब उस अग्निके जरिये भस्म हुआ, तब उसकी कल्मष-राशि विनष्ट हुई; अन्तमें उसने परम सिद्धि लाभ की। अनन्तर उसने पापरहित होकर स्वर्ग-लोकमें गमन करके अपनेको यक्ष, गन्धर्व्व और सिद्धोंके बीच देवराजके समान विराजते हुए देखा। पतिव्रता कपोती और कपोत पुण्यक-र्म्मके सहारे इसी प्रकार निषादके सहित स्वर-लोकमें गये थे। इसी प्रकार जो स्त्री शीघ्र ही पतिका अनुसरण करती है, वह स्वर्गवासिनी कपोतीकी तरह विराजमान हुआ करती है। मैंने महात्मा कपोत और व्याधका यह उपन्यास कहा, इन्होंने पवित्र कर्म्मके जरिये धर्म्मिष्ठ पुरु-षोंकी गतिलाभ की थी। जो पुरुष सदा इसे सुनता वा कहता है, प्रमादके कारण मनमें भी कभी उसका अशुभ नहीं होता है। हे धार्म्मिकप्रवर युधिष्ठिर! इसी तरह शरणागत पुरुषकी रक्षा करना ही महान् धर्म्म है ; यह कार्य्य करके गोहत्या करनेवाला मनुष्य भी पाप कर्म्मोंसे छूट जाता है ; परन्तु जो पुरुष शरणा-गत जनोंका वध करता है, उसकी निष्कृति नहीं होती। मनुष्य इस पाप नष्ट करनेवाले पवित्र इतिहासको सुननेसे दुर्गतिको न प्राप्त होकर स्वर्ग लोकमें गमन किया करते हैं।

१४९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! जो पुरुष अज्ञानताके कारण पापाचरण करता है, वह किस प्रकार उससे मुक्त होता है, आप मुझसे वही कहिये।

भीष्म बोले, शुनकपुत्र द्विजवर इन्द्रोतने जो जनमेजयसे कहा था, मैं इस विषयमें तुम्हारे निकट ऋषियोंसे सत्कृत वह प्राचीन वृत्तान्त वर्णन करूंगा। परीक्षितके पुत्र जनमेजय नाम महाबलवान पराक्रमी एक राजा थे ; उन्होंने अज्ञानताके कारण ब्रह्महत्या की थी, इसीसे पुरोहितके सहित ब्राह्मणोंने उन्हें परित्याग किया, अन्तमें प्रजासमूहने भी उन्हें परित्याग किया, तब उन्होंने रातदिन शोककी अग्निसे जलते हुए वनमें गमन करके महत् कल्याण साधन किया। राजाने शोकसे जलते हुए घोर तपस्या करते हुए पृथ्वीमण्डलमें देश देश घूमकर ब्रह्महत्यासे उत्पन्न हुए पाप दूर होनेका विषय ब्राह्मणोंसे पूछा था ; उस विषयमें यह धर्म्मयुक्त पूर्ण वृत्तान्त वर्णन करता हूं, सुनो! किसी समय राजा जनमेजयने पाप कार्य्यसे दह्यमान होकर भ्रमण करते हुए शुनकनन्दन संशित-व्रती महर्षि इन्द्रोतके निकट आके उनके दोनों चरण ग्रहण किये। महर्षि उस समय राजाको और देखकर अत्यन्त निन्दा करके बोले, तुम भ्रूणहत्या करनेवाले, पापाचारी होकर किस निमित्त इस स्थानमें आये हो? मेरे निकट तुम्हारा क्या प्रयोजन है? तुम मुझसे कोई बात मत पूछो, जाओ, यह तुम्हारे योग्य स्थान नहीं है ; तुम्हारे आनेसे मैं प्रसन्न नहीं हुआ ; तुम्हारे शरीरसे रुधिरकी तरह दुर्गन्धि बाहर

होती है, आकार मुर्देकी तरह दीख पड़ता है, तुम अमङ्गलाचारी होकर मङ्गलाचारी और मृत होकर जीवितकी तरह भ्रमण कर रहे हो। तुम अनुक्षण पापकी चिन्ता करते हुए मलिनस्वभाव और मृत्युसे आक्रान्त हुए हो, तुम सोते और जागते हो, यह ठीक है; परन्तु अत्यन्त दुःख भोग कर रहे हो। हे राजन्! तुम्हारा जीवन निरर्थक है, तुम अत्यन्त क्लेशसे जीवन बिता रहे हो। नीच पाप कर्म करनेके वास्ते विधाताने तुम्हें उत्पन्न किया है। पितर लोग अनेक कल्याणकी इच्छा करके तपस्या, देवपूजा, वन्दना और तितिक्षाके जरिये पुत्र-कामना किया करते हैं; परन्तु देखो, तुम्हारे लिये तुम्हारे सब पितर नरकगामी होरहे हैं, तुममें उन लोगोंका जो सब आशाबन्धन था, वह भी निरर्थक हुआ है। लोग जिनकी पूजा करते हुए स्वर्ग, आयु और यश लाभ करते हैं, तुम बिना कारणके ही उन ब्राह्मणोंसे सदा द्वेष किया करते हो; इसलिये तुम इस लोकको परित्याग करनेपर पाप कर्मके कारण शिर नीचे करके सब कर्म्मोंके फल भोगनेके लिये बहुत समयतक नरकमें डूबते रहोगे। वहांपर गिद्ध और अधोमुख मयूर समूह तुम्हें प्रतिक्षण भक्षण करेंगे। अनन्तर तुम फिर पापयोनिको प्राप्त होगे। हे राजन्! यदि तुम विचार करो कि यह लोक ही नहीं है,—तो परलोक कहां?' ऐसा होनेसे यम स्थानपर यमदूत लोग प्रतिक्षण तुम्हें उसे स्मरण करा देंगे।

१५० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इन्द्रोत मुनिने जब जनमेजयसे ऐसा कहा, तब वह मुनिको सम्बोधन करके बोले, हे तपोधन! आप निन्दनीय पुरुषकी निन्दा किया करते हैं, इस कारण मैं निन्दनीय हुआ हूं और निन्दनीय कार्य्य किया है; इससे मुझे और मेरे कार्य्योंकी निन्दा कर रहे हैं; इसलिये मैं आपको प्रसन्न करता हूं, मैंने जो कुछ किया है, वह सब दुष्कर्म है, इस समय मैं मानो अग्निमें पड़के जल रहा हूं, निज कर्म्मोंको स्मरण करके मेरा अन्तःकरण किसी तरह सन्तुष्ट नहीं होता है; मैं यमसे अत्यन्त भयभीत होता हूं; यम भयरूपी शल्यको बिना निकाले किस प्रकार जीवन धारण करनेमें समर्थ होऊंगा? हे महर्षि! आप समस्त क्रोध परित्याग करके मुझे सदुपदेश प्रदान करिये। पहिले मैं ब्राह्मणोंके विषयमें अत्यन्त भक्तिमान था; इस समय भी कहता हूं कि ब्राह्मणोंके विषयमें फिर अब अभक्ति नहीं करूंगा, मेरे इस वंशका शेष रहे, जिसमें इसको पराभव न हो। जो लोग ब्राह्मणोंकी हिंसा करके जनसमाजमें अपयशके पात्र और वेद निर्णयके अनुसार निजजातिसे परित्यज्य हुए हैं, उनका शेष होना उचित नहीं है, मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूं, इसलिये युक्तियुक्त वचन बार बार प्रकाश करके आसक्तिरहित योगी लोग जैसे कृपा करके निर्द्धन आगोंको प्रतिपालन किया करते हैं, आप भी उसी तरह मेरी रक्षा करिये। यज्ञहीन मनुष्य किसी प्रकार इस लोकको नहीं प्राप्त होते, वे पुलिन्द और शबर आदि म्लेच्छ जातियोंकी तरह नरकमें निवास किया करते हैं। हे ब्रह्मन्! आप उत्तम पण्डित हैं, इसलिये मैंने बालककी तरह न जानकर जो कुछ कहा है, आप उसे क्षमा करिये; पुत्रके विषयमें पिताकी तरह आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।

शौनक बोले, अज्ञ पुरुष जो बहुतसे अयुक्त कर्म्म किया करते हैं, उसमें आश्चर्य नहीं है; ज्ञानवान होके भी जो जीवोंके विषयमें योग्य व्यवहार नहीं करते, वही आश्चर्य है। बुद्धिमान् पुरुष बुद्धिरूपी महलपर चढ़के स्वयं अशोच्य होकर दूसरेके लिये शोक किया करते हैं और पहाड़पर वास करनेवालेकी तरह

पृथ्वीकी सब वस्तुओंको कुटिलतासे देखते हैं। जो पुरुष साधुओंके समीप निन्दनीय होकर दुःखित होता और उनकी दृष्टिके अगोचर हुआ करता है, वह कभी कल्याण लाभ और कर्त्तव्यको नहीं देख सकता। वेद शास्त्रोंमें कहे हुए ब्राह्मणोंके पराक्रम और महात्मा तुम्हें अविदित नहीं हैं; इसलिये इस समय जिससे शान्तिलाभ हो, वही करो; ब्राह्मण लोग तुम्हारी रक्षा करें। हे तात! क्रोधरहित ब्राह्मण लोग जो आचरण करते हैं, उसीसे अल्पकालमें उपकार होता है; इस समय तुम पापसे परितापित हो रहे हो, इसलिये एक मात्र धर्म्म अवलम्बन करो।

जनमेजय बोले, हे सुनकनन्दन! मैं पापकी आंचसे सन्तापित होरहा हूं, यह ठीक है, परन्तु मैंने धर्म्मलोप नहीं किया है, कल्याणकी इच्छा करके आपकी आराधना कर रहा हूं; आप मेरे ऊपर प्रसन्न हूजिये।

शौनक बोले, हे राजन्! मैं दम्भ और अभिमानको त्यागके तुम्हारी प्रीतिकी अभिलाष करता हूं, तुम एकमात्र धर्म्मको स्मरण करके सब प्राणियोंके हितानुष्ठानमें अनुरक्त रहो। भय, कृपणता अथवा लोभके वशमें होकर मैं तुम्हें अनुशासन नहीं करता हूं, तुम ब्राह्मणोंके सहित मेरा सत्य वचन सुनो। मैं किसी विषयमें प्रार्थना नहीं करता। हा हा! धिक् धिक्! कहके जो सब जीवसमूह चिल्लाया करते हैं, उनके सम्मुखमें ही मैं तुम्हें उपदेश देता हूं, सुहृद लोग इसके लिये मुझे अधार्म्मिक कहेंगे और परित्याग करेंगे, परन्तु वे लोग मेरा वह सब वचन सुनकर अत्यन्त ही पीड़ित होंगे। कोई कोई महाबुद्धिमान मनुष्य यथार्थरूपसे मेरा अभिप्राय जान सकेंगे। हे भारत! ब्राह्मणोंके विषयमें मेरा जैसा अभिप्राय है, उसे तुम मालूम करो; वे लोग मेरे लिये जिस प्रकार कल्याण लाभ करें तुम वैसा ही करो; हे नरनाथ! ब्राह्मणोंकी बुराई नहीं करूंगा,— कहके प्रतिज्ञा करो।

जनमेजय बोले, हे विप्रवर! मैं आपके दोनों चरण छूके प्रतिज्ञा करता हूं, कि वचन, मन और कर्म्मसे फिर कभी ब्राह्मणोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करूंगा।

१५१ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे राजन्! इस समय तुम्हारा चित्त धर्म्म मार्गमें लौटा हुआ है, इस ही कारण मैं तुम्हें उपदेश दान करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं, तुम श्रीमान् महाबलवान् और पराक्रमी होकर स्वयं धर्म्मदर्शी होरहे हो; राजा लोग पहिले कठोर स्वभाववाले होके पीछे जीवोंके विषयमें कृपा प्रकाशित किया करते हैं, यह अत्यन्त ही आश्चर्य है। लोग कहा करते हैं, कि जो राजा निठुर होता है, वह सब लोगोंको दुःखित करता है, तुम भी पहिले वैसा ही होकर इस समय धर्म्मदर्शी हुए हो। हे जनमेजय! तुमने जो राज्य भोग भक्ष्य भोज्य परित्याग करके बहुत दिनोंसे तपस्या अवलम्बनकी है, वह अधर्म्म युक्त राजाओंके विषयमें अद्भुत कार्य्य है। समृद्धि युक्त दाता वा कृपण जो तपस्वी होता है, वह आश्चर्य नहीं है; क्योंकि वे लोग तपस्याको अन्तिम सीमापर स्थिति नहीं करते। पूर्व्व पर विचार न करके कार्य्य करनेसे दोष घटनाकी सम्भावना रहती है और परीक्षा करके कार्य्य करनेपर उससे अनेक गुण उत्पन्न होते हैं। हे महाराज! यज्ञ, दान, दया, वेदाध्ययन, और सत्य वचन, इन पांच कर्म्मोंके तथा उत्तम रीतिसे तपस्या करना ही राजाओंके परम पवित्र धर्म्म हैं। हे जनमेजय! तुम पूर्ण रीतिसे उस ही तपस्याको अवलम्बन करनेसे श्रेष्ठ धर्म्म-लाभ करोगे। पवित्र देशमें गमन करना परम पवित्र

कर्म है, इसे ऋषियोंने स्मरण किया है। इस विषयमें ययाति राजाने जो गाथा कही थी, पण्डित लोग उसे ही उदाहरणमें कहा करते हैं। जो मनुष्य बहुत दिन जीनेकी इच्छा करे, वह यत्न पूर्व्वक यज्ञ करके, अन्तमें उसे छोडके तपस्या करे। पण्डित लोग कुरुक्षेत्रको पवित्र तीर्थ कहा करते हैं, कुरुक्षेत्रसे सरस्वती, सरस्वतीसे उसके सब तीर्थ और सरस्वतीसे पृथोदक तीर्थ पवित्र है, जिसमें नहाने और जिसके जल पीनेसे मनुष्य अकाल-मृत्युके लिये शोकित नहीं होते।

जो लोग वृहत् आयुकी इच्छा करें वे महासरोवर पुष्कर, प्रभास, उत्तर मानस और कालोदक आदि सब तीर्थोंमें गमन करें। सरस्वती और दृषद्वती नदियोंके सङ्गम और मानस सरोवरपर स्वाध्यायमें रत होकर भ्रमण करें। मनुने कहा है, कि सब पवित्र धर्म्मोंसे त्याग धर्म्म पवित्र है और सन्न्यास-धर्म्म उससे अधिक पवित्र है। इस विषयमें सत्यवानने जो अपनी निज सम्मति प्रकाशित की है, पण्डित लोग उसे ही उदाहरण दिया करते हैं; राग द्वेषसे रहित बालक जैसे पापपुण्यमें आसक्त नहीं होता, तुम भी उसी प्रकार पाप पुण्यके अनुष्ठानसे निवृत्त होजाओ। इस पृथ्वीपर सुख दुःख कुछ भी नहीं है जीवोंके पत्र कलत्र आदिके संयोग वियोगके कारण सुख दुःख कल्पना मात्र है निखिल-कलुष संसर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके पुण्य और पाप निवृत्त होनेपर वे ब्रह्मस्वरूप लाभ करके जीवन परित्याग करके परम कल्याण भाजन होते हैं। इस समय राजाओंके कर्त्तव्य कार्य्योंके बीच जो उत्तम है; वह तुमसे कहता हूं। हे प्रजानाथ! तुम धीरज और दानके सहारे स्वर्ग लोकमें अधिकार करो जिसमें धीरज और दान शक्ति है, वही धार्म्मिक है। महाराज! तुम ब्राह्मणोंके सुखके निमित्त पृथ्वी पालन करो पहिले तुमने जिस प्रकार ब्राह्मणोंकी निन्दा की थी, उस भांति इस समय उन्हें प्रसन्न करो। ब्राह्मणोंसे बारम्बार धिक्कृत और परित्यक्त होनेपर भी तुम आत्म उपमाके जरिये उन लोगोंका कभी वध ना करना, ऐसा ही निश्चय करके निज कार्य्योंमें नियुक्त रहके परम कल्याण साधन करो। कोई कोई राजा हिमके समान शीतल, अग्निकी तरह क्रूर और यमकी भांति गुणदोषोंके विचारक हुआ करते हैं, और कोई कोई शत्रु-तापन राजा हलकी तरह शत्रुओंके मूलको नष्ट करते तथा बज्रके अकस्मात गिरनेकी भांति दुष्टोंको शासन किया करते हैं। दुष्टोंके सङ्ग विशेषरूपसे प्रीति करनेसे वह स्थिरताके सहित वर्त्तमान नहीं रहती, इसलिये कल्याणकी इच्छा करनेवाले पुरुषको खलोंके साथ कभी प्रीति करनी उचित नहीं है। एक बेर पापकर्म्म करके शोक करनेपर उससे छुटकारा होता है; दूसरी बार पापकर्म्म करके फिर ऐसा न करूंगा इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे उससे निस्तार हो सकता है; तीसरी बार पापकर्म्म करनेपर "धर्म्माचरण करूंगा" कहके दृढ़-प्रतिज्ञ होनेपर वह नष्ट होता है; बहुत सा पाप कर्म्म करनेपर पवित्र होकर तीर्थाटन करनेसे उससे मुक्ति लाभ हुआ करता है। ज्ञानकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको कल्याण-पथका पथिक होना उचित है। जो लोग सुगन्धित वस्तुकी सेवा करते हैं, उनका शरीर सुगन्धयुक्त होता है, और जो लोग दुर्गन्ध वस्तुकी सेवा किया करते हैं, उनका शरीर दुर्गन्धमय होजाता है, तपस्या करनेवाले पुरुष पापसे सदा ही मुक्त हुआ करते हैं। अभिशापयुक्त पुरुष सात वर्ष तक अग्निकी उपासना करनेसे मुक्ति लाभ करते हैं। भ्रूण-हत्या करनेवाले मनुष्य तीन वर्षतक अग्निकी उपासना करनेसे मुक्त हो सकते हैं; और भ्रूण-हत्या करनेवाला पुरुष एक सौ योजन दूरसे यदि महा सरोवर

पुष्कर प्रभास और उत्तर मानस-तीर्थोंमें गमन करे तो वह पापसे मुक्त होवे। प्राणी-घातक मनुष्य जितने प्राणियोंका बध करते हैं, उस जातिके उतने ही प्राणियोंके म्रियमाण होने-पर उन्हें बन्धनसे छुड़ा सकें तो उस पापसे छूट जाते हैं। मनुने कहा है, कि पापी पुरुष अघ-मर्षण मन्त्रको तीन बार जप करते हुए यदि जलमें निमग्न हो; तो वह अश्वमेध यज्ञके अन्तमें स्नान करनेवाले पुरुषकी भांति पवित्र होके जन समाजमें आदरयुक्त हुआ करता है, और जीव मात्र ही जड़ तथा मूकको तरह उससे प्रसन्न होते हैं। हे राजन्! पहिले देवता और असुरोंने देव गुरु बृहस्पतिके समीप जाके विनीत वचनसे कहा था, हे महर्षि! आप धर्म्मके फलको जानते हैं और जिसके जरिये परलोकमें नरकमें गमन करना पड़ता है, वह पापका फल भी आपको अविदित नहीं है, जिसके पाप-पुण्य दोनों ही समान हैं, वह क्या पुण्यके जरिये पापको जय नहीं कर सकता? सो पुण्यका फल कैसा है, और धर्म्म-शील मनुष्य किस प्रकार पाप खण्डन करते हैं, वह आप हम लोगोंसे कहिये।

बृहस्पति बोले, पहिले अज्ञान पूर्व्वक पाप कर्म्म करके, फिर यदि ज्ञान पूर्व्वक पुण्यका अनुष्ठान करे, तो जिस प्रकार खारके संयोगसे मैले वस्त्रोंका मल दूर किया जाता है, वैसे ही पुण्य करनेवाला पुरुष धर्म्माचरणके सहारे पाप खण्डन करनेमें समर्थ होता है। पुरुष पाप कर्म्म करके, अभिमान न करे, श्रद्धायुक्त और असूयारहित होकर कल्याणकी इच्छा करे, जो पुरुष पापाचार करके कल्याणकी इच्छा करता है, वह साधुओंके निवृत छिद्रोंको छिपाया करता है। जैसे सूर्य्य भोरके समय उदय होकर समस्त अन्धकार नष्ट करता है। धर्म्म करने-वाला पुरुष उसी तरह सब पाप खण्डन किया करता है।

भीष्म बोले, शुनक पुत्र महर्षि इन्द्रोतने राजा जनमेजयसे ऐसा ही कहके विधिपूर्व्वक उसे अश्वमेध यज्ञमें प्रवर्त्तित किया। अनन्तर शत्रु-नाशन राजा जनमेजयने पापरहित और कल्याणयुक्त होकर जैसे पूर्णचन्द्र आकाशमें उदय होता है, वैसे ही जलती अग्निके समान तेज-पुञ्ज युक्त शरीरसे निज नगरमें प्रवेश किया।

१५२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कोई मनुष्य मरके फिर जीवित होता, इसे आपने देखा वा सुना है?

भीष्म बोले, हे राजन्! पहिले समय नैमिषार-ण्यमें गिद्ध जम्बुक सम्वाद युक्त प्राचीन इतिहास जिस प्रकार कहा गया था, उसे सुनो। किसी ब्राह्मणके अनेक दुःखसे प्राप्त हुआ विशालनेत्र-वाला एक मात्र पुत्र बालग्रहके जरिये बालक अवस्थामें ही मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ। बान्धवगण दुःखित और शोकित होकर रोदन करते हुए वंशके सर्व्वस्वभूत उस अप्राप्त अवस्था-वाले मृत बालकको उठाके श्मशानकी ओर प्रस्थान किया। वे लोग उस बालकको गोदमें लेके अत्यन्त दुःखित होकर उसके मधुर वच-नको बार बार स्मरण करके शोक प्रकाश करते हुए रोदन करने लगे, किसी प्रकार भी उस मृत बालकको पृथ्वीपर फेंकके घर जानेमें समर्थ न हुए। उस ही समय कोई गृध्र उन लोगोंके रोदनको ध्वनिके अनुसार वहांपर आके बोला, तुम लोग इस एक मात्र पुत्रको इस स्थानमें परित्याग करके गमन करो, देरी मत करो, इस स्थानमें सहस्रों पुरुष और स्त्रियां आया करती हैं, बान्धव लोग यथा सम-यमें उन्हें परित्याग कर जाते हैं। देखो सब जगत ही सुख और दुःखमें स्थिति करता है; पर्य्याय क्रमसे पुत्रकलत्र आदिके सङ्ग संयोग और वियोग हुआ करता है; जो लोग मृत पुरुषको

ग्रहण करके स्थित रहती अथवा उसका अनुगमन करते हैं; उन्हें भी निज परमायुके परिमाणके अनुसार यमलोकमें गमन करना पड़ता है; इसलिये इस गिद्ध गोमायुयुक्त अनेक प्रेतोंसे घिरा हुआ सब प्राणियोंको भयङ्कर घोर श्मशानमें रहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है; प्रिय हो, वा अप्रिय हो होवे कोई पुरुष पञ्चत्वको प्राप्त होकर फिर जीवित नहीं होता, प्राणियोंकी ऐसीही गति है। मर्त्तलोकमें जिसने जन्म लिया है, उसे अवश्य मरना होगा, इसलिये इस कालकृत नियमसे रहते कौन पुरुष मरे हुए लोगोंको जीवित कर सकेगा। कार्य्यकी समाप्तिके कारण सब लोगोंके विरत होनेपर सूर्य्य अस्ताचलपर गमन कर रहे हैं; इसलिये तुम लोग पुत्रस्नेह त्यागके निज निवास स्थानपर गमन करो। अनन्तर बान्धव लोग गिद्धका वचन सुनके उस समय मानो शोकरहित होकर पुत्रको पृथ्वीपर छोड़के घरकी ओर गमन करनेमें प्रवृत्त हुए और वे लोग बालकको मरा हुआ निश्चय करके उसे देखनेसे निराश और हताश होकर रोदन करने लगे। बान्धव लोग विशेष रीतिसे निश्चय करके मार्गके बीच आरहे हैं उस ही समय कौआके समान काले रङ्गका एक शियार बिलसे निकलके उन घर जानेवाले पुरुषोंसे बोला, रे दयाहीन मूढ़ मनुष्यो! यह देखो सूर्य्य अभीतक अस्त नहीं हुआ, इसलिये अब भी तुम लोग स्नेह करो, भय मत करो मुहूर्त्तका अत्यन्त चमत्कार प्रभाव है, मुहूर्त्तके प्रभावसे इसका फिर जीवित होना असम्भव नहीं है। तुम लोग अपत्यस्नेहहीन और निर्द्दयी होकर श्मशानमें भूमिपर दाभ बिछाके पुत्रको छोड़के किस लिये गमन करते हो? जिसका वचन कानमें प्रविष्ट होनेसे ही तुम लोग प्रसन्न होते थे, उस मधुर वचन कहनेवाले शिशु सन्तानके ऊपर क्या तुम्हारा स्नेह नहीं है? पशु पक्षी आदि अपनी सन्तानोंको प्रतिपालन करके कोई फल नहीं पाते; तौभी उनका कैसा अपत्यस्नेह है, उसे तुम लोग विचारो, कर्म्म सन्न्यासी मुनियोंके यज्ञ कार्य्यकी भांति पशुपक्षी कीट आदि स्नेहवद्ध प्राणियोंका पुत्र आदिसे परलोक फलकी आशा नहीं है, उन लोगोंको इस लोक और परलोकमें पुत्रादिकोंसे कुछ उपकार प्राप्त नहीं होता; तौभी वे कैसे यत्नके सहित अपत्योंको धारण किया करते हैं। पशुपक्षी आदि प्राणियोंकी सन्तान बड़ी होकर कभी पितामाताको प्रतिपालन नहीं करती, तौभी प्रिय पुत्रोंको न देखनेपर क्या उनके मनमें शोक उत्पन्न नहीं होता? मनुष्योंको अपत्य स्नेहके कारण पुत्र आदिके विरहसे शोक उत्पन्न हुआ करता है; इससे तुम लोग इस एक मात्र पुत्रको छोड़के कहां जाओगे? तुम लोग बहुत समयतक आंसू बहाते हुए स्नेहयुक्त नेत्रसे इसे देखो; ऐसे प्रियपात्रको परित्याग करना किसी प्रकार भी योग्य नहीं है। दुर्ब्बल, आमयुक्त और श्मशानमें स्थित पुरुषके निकट बान्धवोंके स्थित होनेपर दूसरे लोग वहां निवास करनेमें समर्थ नहीं होते। जीवन सबको ही प्यारा है सभी स्नेहलाभ किया करते हैं, साधु लोग तिर्य्यग् योनिवालोंमें जैसा स्नेह करते हैं, उसे देखिये नवीन विवाहके समय मालासे विभूषितकी तरह इस कमल नेत्रवाले बालकको छोड़के तुम लोग किस कारण चले जाते हो? बान्धव लोग उस समय शियारका वचन सुनके दीनतापूर्व्वक विलाप करते हुए सब कोई मुर्देके सबब घर जानेसे निवृत्त हुए।

गिद्ध बोला, हाय! क्या आश्चर्य है! हे पुरुषार्थहीन मनुष्यो! तुम लोग इस अल्पबुद्धि नृशंस क्षुद्र सियारका वचन सुनके क्यों निवृत्त होते हो? पञ्चभूतोंसे परित्यक्त और काष्ठत्वको प्राप्त हुए शून्य और चेष्टाहीन मुर्देके शरीरके लिये क्यों शोक प्रकाश करते हो? तुम लोग

अपने वास्ते क्यों नहीं शोक प्रकाश करते? शीत तपस्याचरण करो, जिसके जरिये पापोंसे मुक्त होगे; तपस्याके जरिये सब प्राप्त होसकता है विलाप करनेसे क्या होगा? अनिष्ट और अदृष्ट मृत्युके सहित उत्पन्न होते हैं; उस ही अदृष्टका अनुगामी होकर यह बालक तुम लोगोंको अनन्त शोकसमुद्रमें डालकर गमन करता है। गऊ, धन, सुवर्ण, मणिरत्न और पुत्र तपस्याके फल प्रभावसे प्राप्त होते हैं। और योगसे तपस्या प्राप्त होती है। जो प्राणी जैसा कर्म्म करता है वह वैसा ही सुख दुःख पाता है; जीव सुख और दुःखको ग्रहण करके जन्म लेता है। पुत्र पिताके कर्म्मसे अथवा पिता पुत्रके कर्म्मसे सुकृत वा दुष्कृतमें बद्धहोकर इस मार्गसे गमन नहीं करता। जिस प्रकार अधर्म्मसे निवृत्ति होसके वैसे ही यत्नपूर्व्वक धर्म्माचरण करो, देवता और ब्राह्मणोंको समयके अनुसार सेवा करो। शोक और दीनता परित्याग करके पुत्रस्नेहसे निवृत्त होजाओ; इसे सूने स्थानमें छोड़के शीघ्र गृहको ओर गमन करो, जो पुरुष शुभ वा अशुभ कर्म्म करता है, वही उसका फल भोग किया करता है; उसमें बान्धवोंका क्या सम्बन्ध है? बान्धव लोग प्रियपुत्र आदिको परित्याग करके इस स्थानमें निवास नहीं करते; वे लोग स्नेह त्यागके आंसू भरे नेत्रसे युक्त होकर घर चले जाते हैं। बुद्धिमान हो वा मूर्ख हो; धनवान हो वा निर्द्धन हो होवे; सबको ही शुभाशुभसे युक्त होकर कालके वशमें होना पड़ता है शोक करके क्या करोगे? मरे हुएके वास्ते किस लिये शोक करते हो? धर्म्मानुसार समदर्शी काल ही सबका नियन्ता है बालक, युवा, वृद्ध और गर्भस्थ सभी मृत्युको वशीभूत होते हैं, जगत्की ऐसी ही गति है।

सियार बोला, कैसा आश्चर्य है, हे मनुष्यो! तुम लोग अपत्यस्नेहसे युक्त होकर अत्यन्त शोक प्रकाश करते हो, अल्पबुद्धि गिद्ध इस समय तुम लोगोंके स्नेहबन्धनको छेदन करता है, क्यों कि इसके समभावसे भली भांति प्रयुक्त प्रत्ययान्वित वचनके जरिये तुम लोग दुःसह स्नेह त्यागके निज स्थानपर जाते हो। हाय! बछड़ाहीन गऊकी तरह पुत्र वियोगके कारण श्मशानमें मुर्देकी सेवा करते हुए रोदन करते करते तुम लोगोंको अत्यन्त दुःख होता है। पृथ्वीमण्डलमें मनुष्योंको जैसा शोक हुआ करता है, उसे आज मैंने जाना है। तुम लोगोंको स्नेह और विलाप देखके मेरा भी आंसू गिरता है। सदा यत्न करनेसे दैवके जरिये वह सिद्ध होता है, दैव और पुरुषका प्रयत्न समयके अनुसार सिद्ध होता है। सदा दुःख न करना ही उचित है; क्यों कि शोकसे सुख नहीं मिलता, यत्न करनेसे प्रयोजनको सिद्धि हुआ करती है; इसलिये तुम लोग दयारहित होके क्यों जाते हो? पितरोंके वंशको रक्षा करो; आत्म-मांससे उत्पन्न हुई अर्द्ध शरीर स्वरूप सन्तानको वनमें परित्याग करके कहां जाते हो? सूर्य्यके अस्त होने तथा सन्ध्याकाल उपस्थित होनेपर तुम लोग इस बालकको घर ले जाना, अथवा इसको लेकर इस ही स्थानमें निवास करना।

गिद्ध बोला, हे मनुष्य लोगो! इस समय मुझे उत्पन्न हुए सहस्र वर्षसे भी अधिक हुआ होगा; परन्तु पुरुष, स्त्री और नपुंसकोंमेंसे कोई मरके फिर जीवित हुआ है, इसे मैंने नहीं देखा; कोई कोई गर्भमें ही मरके पृथ्वीपर गिरते हैं, कोई जन्मते ही मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ करता है; कोई बाल्यकालमें पांवसे चलनेके समय और कोई युवा अवस्थामें पञ्चत्वको प्राप्त होता है। इस लोकमें पशु पक्षी आदि जङ्गम मात्रका ही अदृष्ट अनित्य है; स्थावर जङ्गम सभी परमायुके अधीन हैं। प्यारी स्त्रीके विरह और पुत्र शोकसे जलते हुए पुरुष प्रति दिन इस स्थानसे घरको चले जाते हैं। मनुष्य

लोग इस लोकमें सहस्रों अप्रिय और सैकड़ों प्रिय वस्तुओंको परित्याग करके अत्यन्त दुःखित होकर परलोकमें गमन करते हैं; इसलिये तुम लोग इस शोचनीय अवस्थायुक्त जीवन हीन और तेज रहित बालकको परित्याग करो; जीवन दूसरे शरीरमें सन्सक्त होनेसे इस निर्जीव बालकके काष्ठत्व प्राप्त मृत शरीरको परित्याग करके किस लिये तुम लोग गमन करनेमें विरत हो रहे हो? इस समय इसके ऊपर स्नेह और इसे घेरकर स्थिति करनेसे कोई फल नहीं है। इस समय इस बालकके देखने और सुननेको इन्द्रियसे कोई कार्य्य नहीं होता है; इससे तुम लोग इसे त्यागके शीघ्र ही निज गृहको ओर गमन करो। मेरा वचन इस समय निठुरवत् मालूम होनेपर भी अन्तमें यह युक्ति युक्त और मोक्ष धर्म्मसे पूरित बोध होगा, इसलिये कहता हूं, तुम लोग विलम्ब न करके निज निज स्थानपर चले जाओ, बुद्धि और विज्ञानवान् चैतन्य-प्रद गिद्धका वचन सुनकर मनुष्य लोग निवृत्त हुए। मृत पुरुषको बान्धवोंसे घिरा हुआ देखने और स्मरण करनेसे शोक दूना हो जाता है, बान्धव लोग यह वचन सुनतेही एक-बारही निवृत्त हुए। बान्धवोंके निवृत्त होनेपर सियारने जलदीसे दौड़कर वहां आके सोये हुए बालकको देखकर कहा,—

सियार बोला, हे मनुष्यो! आप लोग गिद्धका वचन सुनके इस सुवर्णके आभूषणोंसे भूषित पितरोंको पिण्डदेनेवाले पुत्रको क्यों परित्याग करते हैं? इस मेरे पुत्रके त्यागनेसे स्नेह, विलाप और रोदनका अन्त न होगा, बल्कि अवश्य ही पछतावा करना पड़ेगा। मैंने सुना है, सत्य पराक्रमी रामचन्द्रने शम्बुक नाम शूद्र तपस्वीको मारा, उसके धर्म्मबलसे कोई ब्राह्मणका बालक फिर जीवित हुआ था; और महर्षि श्वेतका बालक पुत्र पञ्चत्वको प्राप्त हुआ था, धर्म्मनिष्ट श्वेतने उस प्रेत पुत्रको फिर जीवित किया था। उसी तरह कोई सिद्ध मुनि वा देवता तुम लोगोंका करुणायुक्त रोदन सुनके दया कर सकता है। सियारका ऐसा वचन सुन शोकसे आर्त बान्धव लोग घर जानेसे निवृत्त हुए और मृत बालकका सिर गोदमें रखके अत्यन्त विलापके सहित रोदन करने लगे। गिद्धने उन लोगोंके रोदनकी ध्वनि सुन कर वहां आके वक्ष्यमाण वचन कहना आरम्भ किया।

गिद्ध बोला, यह बालक धर्म्मराजके नियोग निबन्धनसे दीर्घ निद्राको प्राप्त हुआ है, इस लिये इसके शरीर पर हाथ फेरने और आंसू बहानेसे क्या होगा? कितने ही तपस्या करने-वाले धनवान और बुद्धिमान मनुष्य इस प्रेत स्थानपर मृत्युके ग्रासमें पतित हुआ करते हैं। बान्धव लोग इस स्थानपर सहस्रों बालक और वृद्धोंको परित्याग करते हुए रात दिन दुःखित भावसे निवास करते हैं, इसलिये शोक भार धारण करनेसे कुछ फल नहीं है, इस समय इसका फिर जीवित होना किसी प्रकार भी विश्वासके योग्य नहीं है। यह बालक सियारके वचनसे फिर जीवित नहीं होगा, जो पुरुष कालके वशमें होकर शरीर छोड़ता है, फिर वह जीवित नहीं होता। सियार यदि अपने समान सैकड़ों शरीर प्रदान करे, तोभी एक सौ वर्षमें भी इस बालकको जीवित न कर सकेगा, तब यदि रुद्रदेव, स्वामिकार्त्तिक, ब्रह्मा अथवा विष्णु इसे वरदान करें, तभी यह बालक जीवित हो सकेगा, नहीं तो तुम लोगोंके आंसू बहाने, आश्वासन और बहुत समय तक रोदन करनेसे यह बालक फिर जीवित न होगा। यह सियार और तुम लोग कई एक बान्धव तथा हम सब कोई धर्म्माधर्म्म ग्रहण करके इस मार्गमें ही निवास करेंगे; इसलिये बुद्धिमान पुरुष अप्रिय, पुरुषता, पर-द्रोह, परनारीसे प्रणयकी अभिलाष, अधर्म्म

और मिथ्या व्यवहारको एकबारही परित्याग करें। तुम लोग सत्य, धर्म्म शुभ, न्याय, प्राणियोंके ऊपर महती दया, शठता हीनता और सरलताको यत्न पूर्व्वक प्रार्थना करें। जो लोग माता, पिता, बान्धव और सुहृदोंको जीवित नहीं देखते उन लोगोंमें धर्म्म-विपर्य्यय हुआ करता है। जो नेत्रसे देखने और अङ्ग आदि चलानेमें समर्थ नहीं है, उसके शरीरान्त होने पर तुम लोग अब रोदन करके क्या करोगे? अपत्य-स्नेह-निबन्धनसे जलते हुए वे सब शोक-युक्त बान्धव लोग गिद्धका ऐसा वचन सुनकर पत्रको भूमिपर परित्याग करके घर जानेमें प्रवृत्त हुए।

सियार बोला, प्राणियोंके विनाश साधनका स्थान यह मर्त्त्यलोक अत्यन्त दारुण स्थल है, इस स्थलमें प्रियवस्तुका वियोग, जीवनकालकी अत्यन्त अल्पता, अनेक प्रकारको अलीक, अत्यन्त व्यवहार, अपवाद और अप्रिय वचन आदि दुःख-शोकको बढ़ानेवाले समस्त भाव अवलोकन करके मुहूर्त्त कालके लिये भी इस मर्त्त्यलोकमें निवास करनेकी मेरी रुचि नहीं होती धिक् धिक्! कैसा आश्चर्य है। हे मनुष्यो! तुम लोग पुत्र शोकसे जलकर बुद्धिहीन लोगोंकी तरह गिद्धके वचनसे निवृत्त हुए, पापी-चञ्चल-बुद्धिवाले गिद्धका वचन सुन स्नेहहीन होकर अपत्य-स्नेह त्यागके इस समय किस प्रकार घर जानेमें प्रवृत्त हुए हो। इस सुख दुःखसे पूरित लोकके बीच सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख होता है, इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है हे मूढ़ लोगो! वंशके शोभाको खान इस रूपवान शिशु सन्तानको पृथ्वीपर त्यागके तुम लोग कहां जाओगे? इस उत्तम सुन्दरतायुक्त बालकको मैं मनही मन जीवितकी तरह देखता हूं, इसमें सन्देह नहीं है। हे मनुष्यो! इसका मरनाही अनुचित है, तुम लोग अनायास ही इसे पाओगे। यदि छोड़के जाओगे, तो पुत्र शोकसे सन्तापित होकर आज ही तुम लोगोंका नाश होगा। रात्रिमें इस स्थानपर निवास करनेसे दुःखकी सम्भावना जानके स्वयं सुखमें रहनेकी इच्छासे अल्पबुद्धि लोगोंकी भांति इसे त्यागके कहां जाओगे?

भीष्म बोले, धर्म्मराज! श्मशानवासी सियारने स्वार्थ-सिद्धिके लिये उस समय अमृतके समान धर्म्मयुक्त मिथ्या प्रिय वचनके जरिये उन सब बान्धवोंको गति निवृत्त करके उन्हें मध्यवर्त्ती किया; तब वे लोग वहां पर स्थित रहे।

गिद्ध बोला, यह यक्ष राक्षस-सेवित, प्रेतोंसे परिपूरित, पेचकनादसे अनुनादित, काले बादलके समान घोर दारुण वन अति भयङ्कर है; सूर्य्य अस्त होनेके पहिले जबतक दिशा निर्म्मल रहती हैं, उतने ही समयके बीच तुम लोग इस वनस्थलमें मुर्देका शरीर परित्याग करके समस्त प्रेत कर्म्म समाप्त करो। बाज-पक्षी कर्कश बोली बोल रहे हैं; सियारोंने दारुणरूपसे चिल्लाना आरम्भ किया है, शेर गर्ज रहे हैं। और सूर्य्य अस्ताचल चूड़ावलम्बी हो रहे हैं। श्मशानमें स्थित वृक्ष समूह काले रङ्गवाली चिताके धूएंसे रञ्जित होते हैं, श्मशानवासी देवता लोग निराहार रहनेसे गर्ज्ज रहे हैं। इस दारुण श्मशान स्थलके बीच विकृतरूपवाले क्रव्यादगण तुमलोगोंको वशीभूत करेंगे; वनके बीच आज तुम लोगोंको अवश्य ही भय होगा; इसलिये इस काष्ठके समान मृत शरीरको परित्याग करो; सियारका वचन मत मानो, तुम लोग यदि ज्ञान भ्रष्ट होकर जम्बुकके निष्फल मिथ्या वचनको सुनोगे, तो सब कोई नष्ट होगे।

सियार बोला, हे मनुष्यो! जब तक सूर्य्य अस्ताचलपर गमन नहीं करते हैं, उतने समयतक तुम लोग अपत्य-स्नेह निबन्धनसे दुःख न करके इस स्थानमें निवास करो; भय

करना उचित नहीं है। तुम लोग विश्वासी होकर रोदन करते हुए बहुत समय तक सन्तानको और स्नेहयुक्त नेत्रसे देखो; इस दारुण वनके बीच तुम लोगोंको किसी भयकी सम्भावना नहीं है। पितरोंके मरनेकी जगह यह वनस्थल अत्यन्त मनोहर है; इसलिये जब तक सूर्य्य स्थित है, तब तक तुम लोग निवास करो; मांसभक्षी गिद्धके वचन सुननेसे कोई फल नहीं है। तुम लोग यदि मोहित होकर गिद्धके निठुर वचनको मानोगे, तो तुम लोगोंका पुत्र फिर जीवित न होगा।

भीष्म बोले, राजन्! गिद्ध बोला, सूर्य्य अस्त हुआ, सियारने कहा; नहीं हुआ; इसी तरह वे निज कार्य्य साधनमें यत्नवान और भूख प्याससे कातर होकर शास्त्रको अवलम्बन करके मृत बालकके बान्धवोंको विडम्बित करने लगे। वे लोग उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियारके अमृत समान वचनसे कभी स्थित और कभी घरकी ओर गमन करनेमें उद्यत हुए। अन्तमें वे लोग शोक युक्त होकर रोदन करते हुए उन कार्य्यदक्ष गिद्ध और सियारकी वचन निपुणतासे प्रतारित होकर भी उस समय वहां निवास करनेमें प्रवृत्त हुए। इसी प्रकार विवाद करनेवाले उन विज्ञानवित् गिद्ध और सियार तथा वहांपर स्थित बान्धवोंके समीप भगवान् भवानीपति भगवतीके भजनेसे करुणा भरे नेत्रसे उपस्थित हुए। और बोले, हे मनुष्यो! मैं वरदाता शङ्कर हूं। दुःखित बान्धवोंने प्रणाम करके खड़े होकर कहा; हे भगवन्! हम सब कोई एक मात्र पुत्रके जीवनके लिये अत्यन्त प्रार्थना करते हैं; इसलिये आप कृपा करके हमारे पुत्रको जीवन दान करके जीवित करिये। सब प्राणियोंके हितैषी भगवान पिनाकीने मनुष्योंका ऐसा वचन सुनके जलसे युक्त हाथके जरिये बालकको एक सौ वर्षकी आयु और गिद्ध सियारको क्षुधाशान्तिका वरदान किया।

अनन्तर उन लोगोंने कल्याण पूरित हर्षयुक्त, कृतकृत्य और अत्यन्त आनन्दित होकर देवोंके देवको प्रणाम करके प्रस्थान किया, अनिर्व्वेद और दृढ़-निश्चयके जरिये महादेवकी कृपासे शीघ्र ही फल प्राप्त होता है। दैवयोग और बान्धवोंका दृढ़ निश्चय देखो! वे लोग दुःखित होकर रोदन कर रहे थे, भगवान्‌ने उनके आंसू पोंछे! देखिये, थोड़ेही समयके बीच निश्चय खोजके सहारे महादेवकी कृपासे दुःखित मनुष्य सुखी हुए। हे भारत! वे लोग महादेवकी कृपासे पुत्रके फिर जीवित होने पर विस्मययुक्त और अत्यन्त हर्षित हुए थे। हेराजन्! अनन्तर उन लोगोंने शिशुसे प्राप्त हुए शोकको त्यागके शीघ्रही पुत्रके सहित हर्षपूर्व्वक नगरमें प्रवेश किया था। ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके बीच सबके ही विषयमें इस प्रकारका ज्ञान निदर्शन रूपसे दिखाया गया है। मनुष्य इस धर्मार्थ-मोक्ष संयुक्त पवित्र इतिहासको सुननेसे इस लोक और परलोकमें सदा आनन्दित हुआ करते हैं

१५३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! असार, अल्पबल, और क्षुद्रजीवी मनुष्य मोहके वशमें होकर अपनी बड़ाईसे युक्त असहृश वचनके जरिये सदा निकटवर्त्ती उपकार और अपकारके सहारे शत्रुनिग्रहमें समर्थ, सदा उद्योगी बलवान पुरुषसे बैर करें तो यदि वह क्रुद्ध होकर बैर समाप्त करनेकी अभिलाषासे आगमन करे, तो थोड़े बलवाला पुरुष किस प्रकार आत्मबल अवलम्बन करके निवास करेगा?

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पुराने लोग इस विषयमें शाल्मलि पवनके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हिमालय पर्व्वत पर अनेक वर्षोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ;

शाखा और स्कन्ध पत्रादियुक्त एक बहुत बड़ा शाल्मलिका वृक्ष था। वहां मतवाले हाथियोंके यूथ और दूसरे अनेक भांतिके सब पशु ग्रीष्म-कालमें गर्म्मीसे आर्त्त होने तथा थकने पर विश्राम करते थे। उस वृक्षके चार सौ हाथके परिमाण बड़े, घनी छायासे परिपूरित और फल फूलसे सुशोभित रहनेसे शुकसारिका समूह सदा उसमें निवास करते थे। हे भारत! किसी समय महर्षि नारद उस शाल्मलि वृक्षके स्कन्ध और बहुतसी शाखा देखकर उसके निकट आके बोले, हे तरुवर! तुम क्या ही मनोहर हो। तुम्हें देखके मैं अत्यन्त प्रसन्न हो रहा हूं मनोहर मृगपक्षी और हाथियोंके यूथ हर्षित होकर सदा तुम्हारे आसरेमें निवास करते हैं। हे महाशाख! तुम्हारे बड़े स्कन्ध और सब शाखोंको कभी वायुके जरिये टूटी हुई नहीं देखता हूं। इस वनके बीच जब पवन सदा तुम्हारी रक्षा करता है, तब बोध होता है, वह तुम्हारा मित्र है, अथवा तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो रहा है। वेगशाली पवित्र गन्धयुक्त भगवान् पवन बहुते हुए विविध वृक्ष समूह और पर्व्वतोंकी शिखर समूहको स्वस्थानसे विचलित करते, और नदी समस्त तालावों, दूसरेकी तो कुछ बात ही नहीं है रसातलको भी सुखाया करते है, इसलिये मित्रताके कारण पवन तुम्हारी रक्षा करता है, इसमें सन्देह नहीं है, इसीसे तुम अनेक शाखायुक्त होके फूल पत्तोंसे सोभित होरहे हो, हे तरुवर! ये सब पक्षी, समूह तुम्हें अवलम्बन करके प्रसन्न मनसे विहार कर रहे हैं,—इसीसे यह वन रमणीय रूपसे शोभित होता है। वसन्तकालमें मनोहर शब्द करनेवाले इन पक्षियोंकी मीठी बोली कानोंमें अमृतकी वर्षा करती हैं। गर्म्मीसे विकल हाथियोंके समूह निज यूथके सहित गर्ज्जते हुए तुम्हारे आसरे सुखभोग करते है। इसी प्रकार तुम दूसरे सब मृग जाति और समस्त जीवोंके आश्रयके कारण होके पर्व्वतकी भांति शोभित होते हो। तपस्यासे सिद्ध ब्राह्मण, तपस्वी और सन्यासियोंके समूहसे परिपूरित होनेसे तुम्हारा स्थान स्वर्गके समान निश्चित तथा मालूम होता है।

१५४ अध्याय समाप्त।

नारद बोले, हे वृक्ष! सर्व्वत्र गमन करने-वाला भयङ्कर वायु बन्धुता वा मित्रताके कारण सदा तुम्हारी रक्षा करता है, इसमें सन्देह नहीं है; तुम उसके समीप मैं तुम्हारा हो हूं—ऐसा वचन अङ्गीकार करके परम-आत्मीय हुए हो, इस ही निमित्त वह सदा तुम्हारी रक्षा करता है। मैं भूलोकमें ऐसे किसी वृक्ष पहाड़ और स्थानको नहीं देखता हूं, जो वायुके बलसे न टूटता हो; इसलिये मुझे मालूम होता है, तुम किसी कारणसे शाखा पल्लवके सहित वायुसे रक्षित होनेसे संशय रहित होके निवास करते हो।

शाल्मलिने कहा, हे ब्रह्मन्! वायु मेरा सखा मित्र, बन्धु वा विधाता नहीं है, जो उस कार-णसे वह मेरी रक्षा करता है। मेरा तेज बल वायुसे भी प्रबल है, पवन मेरे बलके अठारहवें भागके एक भागके समान भी नहीं है। वह जब मेरे समीप आता है, उस समय मैं बलपू-र्व्वक उसे स्तम्भित कर रखता हूं। वायु पहाड़ वृक्ष आदि जिस किसी वस्तुको क्यों न तोड़े, वह समीप आनेसे मुझसे पराजित होता है, हे देवर्षि! इसलिये वायुके क्रुद्ध होनेपर भी मैं उससे भय नहीं करता।

नारद बोले, हे शाल्मलि! तुम्हारी विप-रीत बुद्धि हुई है, इसमें सन्देह नहीं है। वायुके समान बलवान कोई भी नहीं है, और कभी किसी स्थानमें कोई हुआ भी नहीं था। तुम्हारी बात तो दूर रहे, इन्द्र, यम, कुबेर और

जलके स्वामी वरुण भी वायुके समान नहीं है। इस जगत्में जो सब जीव जीवन धारण करते हैं, भगवान पवनही उसके कारण हैं, वेही सबके प्राणदाता और चैतन्य करनेवाले हैं इसी वायुके प्रशान्त भावसे रहनेसे सब प्राणी जीवित रहते और इसीके अशान्त होनेपर सब जीव नष्ट होते हैं; इसलिये तुमने सब बलवानोंमें अग्रगण्यसे पूजनीय वायुका जो असम्मान किया है, उसका कारण तुम्हारी बुद्धि लाघवके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। तुम अत्यन्त असार और दुर्बुद्धि हो, इस ही कारण केवल बड़ी बात बोलते और क्रोधमें भरकर मिथ्या वचन कहते हो। तुम्हारा ऐसा वचन सुनके मेरा क्रोध उत्पन्न हुआ है, मैं स्वयं वायुके समीप जाके तुम्हारा यह सब दुष्ट वचन कहूंगा। रे नीच बुद्धि! चन्दन, स्यन्दन, शाल, सरल, देवदारु, बेतस और बकुल आदि दूसरे जो सब सारवान तथा बलवान् वृक्ष हैं, वे कभी वायुका इस प्रकार तिरस्कार नहीं करते, वे सब वायुके और अपने बलाबलको जानते हैं, इस कारण वे सब वृक्ष वायुको प्रणाम किया करते हैं। तुमने मोहके वशमें होकर वायुके अनन्त बलको नहीं जाना है, इस ही से ऐसा कहते हो; इसलिये मैं तुम्हारी बात कहनके लिये वायुके समीप जाता हूं।

१५५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! ब्रह्मज्ञानी नारद शाल्मलिसे ऐसा वचन कहके पवनके समीप जाके उसकी सब बात कहने लगे। नारद बोले, हे वायु! हिमालय पर्व्वतपर उत्पन्न हुआ शाखा पल्लवसे युक्त वृहत् मूलवाला कोई शाल्मलि वृक्ष तुम्हारी अवज्ञा करता है; तुम्हारे समीप वह सब वचन कहना मुझे उचित नहीं है; मैं तुम्हें सब प्राणियोंमें अग्रगण्य, वरिष्ठ और गरिष्ठ समझता हूं, तुम क्रुद्ध होनेपर कालके समान हुआ करते हो।

भीष्म बोले, वायु नारदका यह वचन सुनके उस शाल्मलि वृक्षके समीप जाके अति क्रुद्ध होकर कहने लगे। वायु बोले, हे शाल्मलि! तुमने नारदके निकट मेरी निन्दा की है; इस लिये मैं बलपूर्व्वक तुम्हें अपना प्रभाव दिखाऊंगा। मैं तुम्हें जानता हूं और तुम भी मुझे जानते हो; पितामहने प्रजाकी सृष्टि करनेके समय तुम्हारे मूलमें विश्राम किया था, अर्थात् उन्होंने विश्राम किया था,—इसीसे मैं तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करता था। रे नीचबुद्धि अधम वृक्ष! उस ही कारण मैं तेरी रक्षा करता था; तू निज बलके प्रभावसे रक्षित नहीं हुआ है। तू जब सामान्य लोगोंकी भांति मेरी अवज्ञा करता है, तब जिससे फिर मेरी अवज्ञा न करे, उसी प्रकार अपना प्रभाव दिखाऊंगा।

भीष्म बोले, शाल्मलि वायुका ऐसा वचन सुनकर हंसके बोला, हे पवन! तुम मेरे ऊपर क्रुद्ध होके क्या पराक्रम प्रकाशित करोगे? अपनेको ही अपना बल दिखाओ। मेरे ऊपर क्रोध मत करो, मुझपर क्रोध करके तुम क्या करोगे? हे वायु! तुम दूसरका शासन करनेमें समर्थ हो तौभी मैं तुमसे भय नहीं करता, मैं तुमसे अधिक बलवान हूं, इसलिये तुमसे मुझे भय करनेका क्या प्रयोजन है? जगत्में जो लोग बुद्धिबलसे बली हैं, वेही बलवान हैं; सामर्थ्य मात्रसे बलवान् पुरुषोंको बलवान कहके नहीं गिना जाता। वायु शाल्मलिकी ऐसी बात सुनके कल्ह तुम्हें पराक्रम दिखाऊंगा ऐसा कहके चले गये।

अनन्तर रात्रि उपस्थित होनेपर शाल्मलिने मनही मन पवनके पराक्रमको विचारके और अपनेको उसके असदृश जानके सोचा, कि मैंने नारदके निकट वायुके विषयमें जो कहा वह अमूलक है; पवन प्रबल बलशाली है,—नार-

इसने जैसा कहा है, वायु वैसाही बलवान् है। उसके समीप मैं अत्यन्त असमर्थ हूं; उसकी बात तो दूर है, मैं दूसरे वृक्षोंसे भी निर्ब्बल हूं, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु कोई वनस्पति मेरे समान बुद्धिमान नहीं है; इससे मैं बुद्धि-बलके अवलम्बनसे पवनके भयसे अपना परित्याग करूंगा। वनमें स्थित वृक्षसमूह यदि मेरी तरह बुद्धि अवलम्बन करके निवास करें, तो वे सदा क्रोधपूरित वायुसे निःसन्देह न उखाड़ जावें। क्रुद्धवायु उन्हें जिस प्रकार सञ्चालित करता है, उसे मैं जैसा जानता हूं, वे लोग बालक होनेसे वैसा नहीं जानते।

१५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर शाल्मलिने क्षुब्ध होकर आपही अपनी सब शाखा, डाली और स्कन्धोंको छेदन किया। वह शाखा, पत्र पुष्प आदि परित्याग करके भोरके समय वायुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगा। अनन्तर क्रोधयुक्त वायु बड़े बड़े वृक्षोंको गिराकर शाल्मलिके निकट आया; आके उसे शाखा, पत्र पुष्पोंसे रहित देखके अत्यन्त हर्षित और विस्मययुक्त होकर कहा, हे शाल्मलि! तुम आप ही कष्ट करके सब डालियोंको छेदन करके जैसे हुए हो, मैं भी क्रोधपूर्व्वक तुम्हें वैसाही करता; तुम अपनी बुद्धिहीनताके कारण मेरे पराक्रमके वशमें होकर फल पत्ता डाली और अङ्कुरसे रहित हुए।

भीष्म बोले, शाल्मलि उस समय वायुका ऐसा वचन सुनके लज्जित हुआ और देवऋषि नारदने पहिले जो कहा था, उसे स्मरण करके अनुताप करने लगा। हे धर्म्मराज! इसी प्रकार जो अल्पबुद्धि पुरुष स्वयं निर्ब्बल होके बलवानके सङ्ग वैर करता है, वह शाल्मलिकी भांति दुःखित पुरुष होता है; इसलिये निर्बल प्रबलोंके साथ वैर न करें; यदि करें तो शाल्मलकी तरह शोचनीय होंगे। समान बलवाले पुरुषभी अपकारीके समीपमें सहसा पराक्रम प्रकाशित नहीं करते, वे लोग धीरे धीरे शत्रुके निकट पराक्रम दिखाया करते हैं। नीचबुद्धि पुरुषका बुद्धिमानके सङ्ग शत्रुताचरण अत्यन्त अनुचित है, तृण समूहमें पड़ी हुई अग्निकी तरह बुद्धिमानकी बुद्धि शत्रुओंके बीच अनायास ही प्रवेश करती है। हे राजेन्द्र! जगत्में पुरुषके बुद्धि और बलके समान दूसरा कुछ भी नहीं है; इसलिये बालक जड़, अन्धे, बधिर और अधिक बलवाले पुरुषके विषयमें क्षमा करे। हे शत्रुदमन! अधिक बलवाले पुरुषको जो क्षमा करना होता है, वह तुममें देखा गया है। दुर्य्योधनकी ग्यारह अक्षौहिणी और तुम्हारी सात अक्षौहिणी सेना महाबली अर्ज्जुनके बलके समान नहीं। यशस्वी इन्द्रपुत्र धनञ्जयने जङ्गलमें घूमके भी अन्तमें युद्धके बीच शत्रुओंको मारा और पराजित किया। महाराज! यही मैंने तुमसे राजधर्म्म और आपद्धर्म्म विस्तारके सहित कहा है, अब कहो, क्या सुननेकी इच्छा करते हो?

१५७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ! पापका निवासस्थान क्या है, और जिससे पाप प्रवर्त्तित होता है, मैं उसे ही यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! जिससे पाप उत्पन्न होता है, उसे सुनो। एकमात्र लोभ केवल पुण्यफल ग्रास किया करता है; इसलिये लोभसे ही पाप प्रकट होता है तथा पापके सहित अत्यन्त दुःख उत्पन्न हुआ करता है; लोग लोभके कारण पापाचरणमें प्रवृत्त होते हैं, इससे लोभ ही पापका मूल कारण है।

काम, क्रोध, मोह, माया, अभिमान, गर्व्व पराधीनता, क्रोध निर्लज्जता, शोनाश, धर्म्महीनता, चिन्ता और अकीर्त्ति आदि सभी लोभसे उत्पन्न हुआ करते हैं। कृपणता-विषयक, रुचि सुखमें अत्यन्त तृष्णा, कुकर्म्ममें प्रवृत्ति, वंश और विद्याका अहङ्कार, सुन्दरता और ऐश्वर्य्यका अभिमान, सब जीवोंका अनिष्टाचरण, सबके विषयमें असम्मान, अविश्वास और शठता प्रकाशित करना, परधन हरन, परनारी गमन, वचन और मनका आवेग, दूसरेकी निन्दा, इन्द्रियपरतन्त्रता, उदरन्तरिता, दारुण मृत्यु, बलवती ईर्षा, दुर्ज्जय मिथ्या व्यवहार, दुर्निवार्य्य रसवेग, दुःसह श्रोत्रवेग, नीचता अपनी बड़ाई मत्सरता, दुष्कर कार्य्य और समस्त साहसके कार्य्य तथा अकार्य्यके अभिमान जनित पाप लोभके कारणसे ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य लोग क्या बाल्य, क्या कौमार अथवा युवा अवस्थामें ही लोभको परित्याग नहीं कर सकते; मनुष्योंके जराजीर्ण होनेपर भी लोभ जीर्ण नहीं होता। हे कुरुकुलधुरन्धर महाराज! जैसे गहर जलसे युक्त नदियोंके समूहसे समुद्र परिपूर्ण नहीं होता, वैसेही सदा फल-प्राप्त होनेपर भी लोभको कभी परिपूर्ण नहीं किया जा सकता। जो लोभ अर्थलाभसे हर्षित और कामना सिद्ध होनेसे परितृप्त नहीं होता, देवता, गन्धर्व्व, असुर, सर्प और समस्त जीव जिसे यथार्थ रूपसे नहीं जानते, उस लोभको मोहके सहित जय करना जितेन्द्रिय पुरुषको उचित है। हे कौरव! इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले लोभियोंमें दम्भ, दूसरकी बुराई, पराई निन्दा, पिशुनता और मत्सरता उत्पन्न हुआ करती है। जो लोग अनेक शास्त्रोंको पढ़के बहुदर्शी और समस्त संशयोंको काटनेमें समर्थ हुए हैं, वे भी अल्पबुद्धि पुरुषोंकी भांति लोभजालमें फंसके क्लेश पाते हैं। द्वेष क्रोधसे आसक्त और शिष्टाचारसे बाहर हुए लोभी पुरुष तृणसे ढंके हुए कूएंकी भांति भीतरमें क्रूर और बाहरमें मधुर हुआ करते हैं। वे वृथाश्रयवाले पुरुष अधर्म्म प्रचारक होकर धर्म्मके छलसे दूसरेका अनिष्ट करते हुए जगत्‌को ठगा करते हैं, किसी उपायको अवलम्बन करके अनेक मार्ग प्रदर्शन और लोभमें आसक्त होकर सत् मार्गोंको लुप्त करते हैं। लोभग्रस्त दुष्टात्माओंके अनुष्ठित धर्म्मकी जो जो अवस्था अन्यथा होती है, वह उसके अनुसार ही प्रसिद्ध हुआ करती है। हे कुरुनन्दन! क्रोध, अभिमान, स्वप्न, हर्ष, मद और शोक लुब्धबुद्धि पुरुषोंको आश्रय किया करता है, इन सब लोभयुक्त लोगोंको सदा अनिष्ट कहके मालूम करो। अब पवित्र चरित्रवाले शिष्टोंका विषय कहता हूं सुनो, हे भारत! जिन्हें संसारमें पुनरावृत्ति और नरकका भय नहीं है, प्रिय और अप्रिय वस्तुओंमें समान ज्ञान है, जो विषयिक सुखमें आसक्त नहीं हैं, शिष्टाचार और इन्द्रियसंयम जिसे अवलम्बन किया है, सुख तथा दुःखमें जिसका समभाव है, सत्यही जिनका परम अवलम्ब है, जो दानशील और दयावान हैं, तथा दूसरेके धनको ग्रहण करनेमें पराङ्मुख हैं; जो पितरों देवताओं और अतिथियोंको तृप्त करनेमें सदा रत रहते हैं, सबका उपकार करनेवाले, धीर और सब धर्म्मोंके पालक हैं, जो सब प्राणियोंके हितैषी और साधारणके उपकारके निमित्त प्राणदान करनेमें समर्थ हैं, उन सब धार्म्मिक पुरुषोंको धर्म्म-मार्गसे विचलित करनेमें किसीकी भी सामर्थ नहीं है। पहिले साधु लोग जैसा आचरण कर गये हैं, उन लोगोंका आचरण उनसे पृथक् नहीं है। जो लोग सत्मार्गमें निवास करते हैं, उन्हें भय नहीं होता, जो लोग चपल और उग्रस्वभाववाले नहीं हैं, कभी किसीकी हिंसा नहीं करते उन सब पुरुषोंकी सदा सेवा करनी साधुओंका कर्त्तव्य है। जो लोग काम, क्रोध,

ममता और अहङ्कारसे रहित उत्तम व्रत करनेवाले और स्थिर मर्य्यादायुक्त हैं, उनकी उपासना करते हुए तुम धर्म्म जिज्ञासा करो। हे युधिष्ठिर! धन और यशके निमित्त उनका जन्म नहीं है, देह-धारणके वास्ते आहार आदिकी तरह अवश्य कर्त्तव्य कहके वे लोग धर्म्मपालन किया करते हैं; उन लोगोंमें भय, क्रोध, चपलता और शोक नहीं है, वे धर्म्मध्वजी वा पाषण्ड धर्म्मावलम्बी नहीं हैं, जिन लोगोंमें लोभ, मोह नहीं है, जो सत्य और सरलताको अवलम्बन किया करते हैं, हे कुन्तीनन्दन! तुम उन लोगोंमें ही अनुरक्त रहो, जिनके सङ्ग अनुरक्त होने पर फिर वह स्खलित नहीं होती। जो लोग लाभसे हर्षित और हानिसे असन्तुष्ट नहीं होते, उन ममताहीन, अहङ्कार-रहित, और सत्वगुण अवलम्बी, समदर्शी सत्मार्गमें स्थित, स्थिरपराक्रमी मोक्षेच्छु पुरुषोंको लाभालाभ, सुख, दुःख, प्रियाप्रिय और जीवन मरन सभी समान है। हे भद्र! तुम इन्द्रिय निग्रहमें रत और सावधान होकर उन सब धर्म्मप्रिय महानुभावोंका सब प्रकारसे सम्मान करना! लोगोंके बचन कभी दैववशसे गुण गौरव युक्त होकर सम्पत्तिका कारण होता है, कभी वही फिर बिपत्का हेतु होजाता है।

१५८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! लोभही अनर्थका मूल है, इसे आपने कहा, इस समय अज्ञान किसे कहते हैं, उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, जो पुरुष बिना जाने पापाचरण करता है उससे अपना नाश होगा उसे वह नहीं जान सकता, वह उत्तम चरित्रवाले पुरुषोंसे द्वेष करके लोगोंके समीप निन्दनीय होता है। लोग अज्ञानके वशमें होके नरकगामी, दुर्गति भागी, क्लेश तथा आपदायुक्त हुआ करते हैं।

युधिष्ठिर बोले, अब मैं अज्ञानकी उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, क्षय, उदय, मूल, गति, कारण, काल और हेतु क्या है, उसे यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं, लोग जो दुःख भोग किया करते हैं, वह अज्ञानसेही उत्पन्न होता है।

भीष्म बोले, रागद्वेष, मोह, असन्तोष, शोक, अभिमान, काम, क्रोध, हर्ष, तन्द्रा, आलस्य, सब विषयोंमें अभिलाष, ताप, पराई वृद्धिमें परिताप और पापकर्म्म, ये सब अज्ञान कहके वर्णित हुए हैं। हे महाराज! तुम जो अज्ञानकी उत्पत्ति और वृद्धि आदि पूछते हो, उसे विशेष तथा विस्तार पूर्व्वक कहता हूं, सुनो। हे भारत! अज्ञान और अत्यन्त लोभ, इन दोनोंका फल तथा दोष समान है; इसलिये तुम इन दोनोंको एकही समझो, लोभकी वृद्धि, क्षय और उत्पत्तिके अनुसार उससे प्रकट हुआ अज्ञान वर्द्धित, क्षीण और उदित हुआ करता है। विचित्तता ही लोभका मूल है, और लोभसे ही अज्ञान उत्पन्न होता है; लोभके छिन्नभिन्न होनेपर उसका कारण भी नष्ट होजाता है। अज्ञानसे लोभ और लोभसे अज्ञान तथा दूसरे सब दोष ही उत्पन्न हुआ करते हैं; इसलिये लोग लोभ त्याग देवें। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि, प्रसेनजित् और दूसरे बहुतेरे राजा लोग लोभ त्यागनेसे देवलोकमें गये थे। हे कुरुवर! प्रत्यक्ष दुःखदायक लोभको परित्याग करो। इस लोकमें लोभ त्यागनेसे परलोकमें परम सुखभोग करोगे।

१५९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मात्मन्! स्वाध्यायमें यत्नशील धर्म्म करनेवाले मनुष्योंके विषयमें इस लोकमें क्या कल्याणदायक है। जगत्में अनेक

तरहकी वस्तु देखी जाती हैं, इनके बीच इस लोक और परलोकमें जिसके जरिये कल्याण हो, आप मुझसे वही कहिये। हे भारत! धर्मका मार्ग बहुत बड़ा और अनेक शाखासे युक्त है, इसमेंसे धर्मका कौन अंश अनुष्ठेयरूपसे आपको अभिमत है। अनेक शाखासे युक्त धर्म अनन्त महत् पदार्थ है, इसलिये उस धर्मका जो परम मूल है, आप वह सब यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे राजन्! मैं तुम्हारा प्रश्न सुनके सन्तुष्ट हुआ, जिससे तुम्हारा कल्याण होगा, उसे कहता हूं। बुद्धिमान पुरुष अमृत पीके जिस प्रकार तृप्त होता है, तुम भी वैसे ही ज्ञानसे तृप्त होगे। महर्षियोंने धर्मका जैसा अनुष्ठान कहा है, वह अनेक तरहका है, निज निज विज्ञानको अवलम्बन करके इन्द्रिय निग्रह ही उसके बीच परम श्रेष्ठ है, निश्चय दर्शी वृद्ध लोग इन्द्रिय-निग्रहको ही कल्याणका कारण कहा करते हैं; विशेष करके ब्राह्मणोंके विषयमें इन्द्रिय निग्रह ही सनातन धर्म्म है। ब्राह्मणोंको इन्द्रिय निग्रहसे ही विधिपूर्व्वक कार्य्य-सिद्धि होती हैं। दमगुण दान, यज्ञ, वेदाध्ययनसे भी उत्तम है, परम पवित्र दमगुणसे तेजकी वृद्धि होती है, दमको अवलम्बन करनेसे पुरुष पापरहित और तेजस्वी होकर महत् फल लाभ कर सकते है। मैंने सुना है, लोकमें इन्द्रिय निग्रहके समान दूसरा धर्म्म और कुछ भी नहीं है। जन समाजमे सब कर्म्मोंके बीच इन्द्रिय-निग्रह ही परम श्रेष्ठ है, हे नरनाथ! इन्द्रियोंको निग्रह करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकमें महत् धर्म्म तथा परम सुख भोग करता है। धार्म्मिक पुरुष सुखसे सोते, जागते तथा सब ठौर विचरते हैं और उनका मन सदा प्रसन्न रहता है। अधर्म्मी पुरुष सदा क्लेश भोग करते हुए अपने दोषके कारणसे ही बहुतसे अनर्थोंमें फंसते हैं। पण्डितोंने कहा है, चारों आश्रमोंके बीच इन्द्रिय निग्रह ही उत्तम व्रत हैं। हे कुरुनन्दन! इससे जिसकी समष्टिको दम कहते हैं उसका सब लक्षण कहता हूं। क्षमा, धीरज, अहिंसा, सब जीवोंमें समभाव, सत्य, सरलता, इन्द्रियोंको जीतना, दक्षता, कोमलता, लज्जा, अचपलता, दीनता, अकृपणता, अक्रोध, सन्तोष, प्रियवादिता, असूयाहीनता, गुरुसेवा और सब जीवोंके विषयमें दया, इन सबको ही दम कहते हैं। धर्मात्मा पुरुष खलता, लोकापवाद मिथ्या वचन, स्तुति, निन्दा, क्रोध, लोभ, गर्व्व, अविनय, अपनी बड़ाई, रोष, ईर्षा और अवमाननाको आलोचना नहीं करते, वह निन्दा, कामना और असूया-रहित होके अनित्य सुखके अभिलाषी नहीं होते; और जैसे समुद्र जलसे परिपूर्ण नहीं होता, वैसे ही वे लोग ब्रह्मलोक प्राप्त होने पर भी किसी भांति तृप्त नहीं होते। जितेन्द्रिय पुरुष मैं तुम्हारे तुम मेरे, वह मेरा, मैं उसका, ऐसे सम्बन्धयुक्त ममता पाशमें बद्ध नहीं होते। ग्राम और अरण्य भेदसे लोकके बीच जो दो प्रकारकी प्रवृत्ति है, उसमे तथा निन्दा और प्रशंसामें जो लोग आसक्त नहीं होते, वेही मुक्ति लाभ किया करते हैं। जो सब जीवोंके हितैषी शीलयुक्त, प्रसन्नचित्त, आत्मज्ञानी और अनेक तरहकी विषयासक्तिसे रहित है, उन्हें परलोकमे महत् फल प्राप्त होता है। सुशील, सदाचार, प्रसन्नचित्त आत्मवित् पुरुष इस लोकमें साधुता पाके परलोकमे सद्गति लाभ करते हैं। इसलोकमें जो कर्म शुभ रूपसे प्रसिद्ध हैं और साधु लोग जिसका आचरण किया करते हैं, ज्ञानयुक्त मौनावलम्बी मनुष्योंका वही स्वाभाविक मार्ग है; यह मार्ग कभी नष्ट नहीं होता। ज्ञानयोगसे युक्त होकर जो जितेन्द्रिय पुरुष घर त्यागके वनमें जाकर समय बिताते हुए व्रताचरण करता है, वह ब्रह्मसायुज्य लाभ करनेमें समर्थ होता है। सब जीवोंसे

जिसे भय नहीं होता और जिससे सब भूतोंको भी भयकी सम्भावना नहीं रहती, उसे देहत्यागनेके अनन्तर किसीसे भी भय नहीं होता। जो भोगके जरिये कर्म्मफलोंका नाश करते और कभी उसे सञ्चय करके नहीं रखते, वे सब प्राणियोंमें समदर्शी विद्वान् पुरुष सब जीवोंको अभयदान करते हुए परब्रह्ममें लीन होते हैं। जैसे आकाशमें पक्षियों और जलचरोंकी गति दृष्टिगोचर नहीं होती, वैसेही निःसन्देह सब जीवोंके हितैषी पुरुषोंकी गति नेत्रसे नहीं दीख पड़ती। हे राजन्! जो लोग गृहत्यागके मोक्ष-मार्गके पथिक होते हैं, उनके वास्ते सदाके लिये तेजोमय समस्त लोक निर्म्मित होते हैं। प्रसन्नता युक्त पवित्र-चित्त, आत्मावित् निष्काम पुरुष सब कर्म्मोंको त्याग कर विधि पूर्व्वक तपस्या और विविध विद्या सन्न्यास करते हुए इस लोकमें आदर युक्त होकर स्वर्गलोकमें जाते हैं। पितामहके तपसे उत्पन्न गुफाके बीच जो नित्यलोक है, वह इन्द्रियोंके जीतनेसे प्राप्त होता है। जो ज्ञानकी आलोचनासे तृप्त और सावधान हुए हैं तथा किसीके सङ्ग जिनका विरोध नहीं है, इसलोकमें उन्हें फिर जन्म लेनेका भय नहीं रहता। तब परलोकका भय क्यों होगा? इन्द्रिय जीतनेमें एकही दोष दीख पड़ता है, दूसरा नहीं देखा जाता—दमयुक्त पुरुष क्षमाशील होते हैं, इसीसे लोग उन्हें असमर्थ समझते हैं। हे महाबुद्धिमान् धर्म्मराज! एक पुरुषका एकही दोष महत् गुणका कारण हुआ करता है, क्षमासे विपुल लोकोंकी सहिष्णुता सुलभ होती है। धार्म्मिक पुरुषको वनमें जानेका प्रयोजन नहीं है, वे जिस स्थानमें निवास करते हैं वही वन और आश्रम सदृश हुआ करता है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, राजा युधिष्ठिर भीष्मके ऐसे वचन सुन इस प्रकार आनन्दित हुए जैसे कोई अमृत पीके तृप्त होता है, उन्होंने धर्म्मात्मा शान्तनुपुत्रसे फिर धर्म्म विषयमें पूछा किया। अनन्तर कुरुकुल धुरन्धर भीष्मदेव प्रसन्न होके उनसे कहने लगे।

१६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, ऋषि लोग इन सबको ही तपका मूल कहा करते हैं, जो मूढ़बुद्धि तपस्या नहीं करता, वह कभी कर्म्मका फल नहीं पाता। सर्व्वशक्तिमान प्रजापतिने तपोबलसे ही इस दृश्यमान जगत्को बनाया है, इसी तरह ऋषियोंने भी तपके प्रभावसे वेदोंको प्राप्त किया है। विधाताने फल मूल आदि अन्नोंको तपस्यासे ही उत्पन्न किया है, एकान्त योगयुक्त सिद्ध लोग तपके प्रभावसे तीनों लोकोंको देखते हैं। रोग नाश करनेवाली सब औषधि और अनेक कर्म्मोंका निर्व्वाह तपस्यासे ही सिद्ध होता है, सब साधनोंका तप ही मूल है। जगत्में जो कुछ दुष्प्राप्य वस्तु है, वह सब तपके प्रभावसे प्राप्त होती हैं; ऋषियोंने तपस्यासे ही निःसन्देह ऐश्वर्य्य प्राप्त किया है। सुरापीनेवाले, धन हरनेवाले, भ्रूणहत्याकरनेवाले और गुरुस्त्रीगामी मनुष्य उत्तम रीतिसे तपस्या करनेपर उन पापोंसे छूट जाते हैं। तपस्या अनेक प्रकारकी हैं। विषयिकसुख-भोगोंसे निवृत्त होके चाहे कोई किसी प्रकारकी तपस्या क्यों न करे, अनशनसे बढ़के परम तपस्या और कुछ भी नहीं है। महाराज! अहिंसा, सत्यवचन, दान और इन्द्रिय-दमनसे अनशन उत्तम है। दानसे कुछ भी कठिन नहीं है, जननीको अतिक्रम करके दूसरे आश्रममें गमन करना धर्म्म नहीं है; वेदसे दूसरा कोई भी श्रेष्ठ नहीं है; सन्न्यासही परम तपस्या है। जो लोग सुख समृद्धि और धर्म्म-रक्षाके निमित्त इस लोकमें इन्द्रियसंयम किया करते हैं, उनके निमित्त धर्म और अर्थ विषयमें

अनशन व्रतसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। ऋषि, पितर, देवता, मनुष्य, मृग और पक्षीसमूह तथा इनके अतिरिक्त दूसरे जो सब स्थावर जङ्गम जीव हैं, वे सभी तपस्यामें रत होके तपके जरिये सिद्ध होते हैं। इसी भांति देवताओंको तपस्याके जरिये महत्व प्राप्त हुआ है। तपस्याका फल सदा सब इष्ट विषयोंका विभाग कर देता है। तपस्यासे निसन्देह देवत्व भी प्राप्त हो सकता है।

१६१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह देवता, ब्राह्मण, ऋषि और पितर लोग सत्य धर्म्मकी प्रशंसा किया करते है, इसलिये मैं सत्यधर्म्म सुननेकी अभिलाषा करता हूं; आप मुझसे वही कहिये। सत्यका क्या लक्षण है, किस प्रकार वह प्राप्त होता है और सत्यके प्राप्त होनेसे क्या होता है। आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भारत! ब्राह्मण आदि चारों वर्णोंके बीच धर्म्मसङ्कर उत्तम नहीं है, सब वर्णोंके बीच अविकारी सत्य ही श्रेष्ठ है। साधुओंके समीप सत्यधर्म्म ही सदा आदरणीय है, सत्यही सनातन धर्म्म है; सब कोई सत्यका आदर करें, सत्यही परम गति है। तपस्या और योगसाधन सत्यधर्म्म है, सत्यही सनातन ब्रह्म, सत्यही परम श्रेष्ठ यज्ञ कहके वर्णित होता और सब वस्तु ही सत्यसे प्रतिष्ठित हो रही हैं। सत्यका जैसा स्वरूप और लक्षण है, उसे मैं विधिपूर्व्वक विस्तारके सहित कहता हूं और जिस प्रकार सत्य प्राप्त होता है, उसे भी वर्णन करूंगा, तुम इसके सुननेके योग्य पात्र हो। हे भारत! सब लोकोंके बीच सत्य तेरह प्रकारके रूपसे विख्यात है। हे राजेन्द्र! सत्य, समता, दम, मत्सरहीनता, क्षमा लज्जा, तितिक्षा, अनसूयता, त्याग, ध्यान, धृति, आर्य्यत्व, सब जीवोंपर सदा दया तथा अहिंसा ये तेरह प्रकार सत्यके रूप हैं। तिसके बीच अव्यय और अविकारी नित्य-वस्तुका नाम सत्य है; सब धर्म्मोंके अविरोध योगके जरिये वह प्राप्त होता है। इच्छा, द्वेष, काम, क्रोधके नष्ट होनेपर अपने और शत्रुके इष्ट अनिष्ट विषयोंमें तुल्य दृष्टिको समता कहते है। इन्द्रियोंके विषयमें आसक्तिहीनताको दम कहा जाता है; दमगुण रहने पर धीरज, गम्भीरता, अभय और रोगोंकी शान्ति होती है; यह ज्ञानके प्रभावसे प्राप्त होता है। दान और धर्म्म विषयके संयमको पण्डित लोग अमात्सर्य्य कहते हैं; पुरुष सदा सत्य मार्गमें स्थित रहनेसे मत्सर-रहित होते हैं। अक्षमा और क्षमाके विषयमें प्रिय और अप्रिय वस्तुओंको जिस शक्तिके सहारे शिष्ट तथा साधु लोग क्षमा करते हैं, उसे ही क्षमा कहते हैं; सत्यवादी पुरुष उत्तम रीतिसे इस शक्तिको प्राप्त करते हैं। शान्तिचित्त तथा स्थिर वचनवाले बुद्धिमान् पुरुष जिस शक्तिके जरिये अत्यन्त कल्याणयुक्त कर्म्मोंको सिद्ध करते और किसी स्थानमें ग्लानियुक्त नहीं होते, उसे ही लज्जा कहते हैं; यह शक्ति धर्म्मसे प्राप्त होती है। धर्म्म और अर्थके निमित्त लोक-संग्रहके लिये क्षमा करनेको तितिक्षा कहा जाता है, धीरजसे तितिक्षा प्राप्त होती है। ममता और विषय-वासना परित्याग करनेका नाम त्याग है, राग द्वेषसे रहित पुरुष ही त्यागी होते हैं; दूसरे नहीं। यत्नपूर्व्वक जीवोंके शुभ कार्य्योंको सिद्ध करनेको आर्य्यता कहते हैं। जिसके जरिये सुख और दुःखकी विकृति नहीं होती उसे ही धृति कहा जाता है, जो बुद्धिमान् पुरुष अपने ऐश्वर्य्यकी इच्छा करे, वह सदा धृतिके वशवर्त्ती होवे। मनुष्य सदा क्षमाशील और सत्यपरायण होवे, जिसने हर्ष, भय और क्रोध परित्याग किया है, वह पण्डित पुरुष ही

तृप्ति लाभ करनेमें समर्थ होता है। वचन, मन, कर्म्मके जरिये सब जीवोंके विषयमें अद्रोह, अनुग्रह और दान करना साधुओंका सनातन धर्म्म है। हे भारत! येही तेरह प्रकारके पृथक् पृथक् गुणोंके इकट्ठे होने पर सत्य होता है, इस लोकमें साधु लोग सत्यकी सेवा करके बढ़ते हैं। हे राजन्! सत्यके सब गुणोंका अन्त नहीं कहा जासकता, इसीलिये पितरों और देवताओंके सहित ब्राह्मण लोग सत्यको प्रशंसा किया करते हैं। सत्यसे बढ़के परम धर्म्म और कुछ भी नहीं है। मिथ्याके समान परम पाप दूसरा कुछ नहीं है। सत्यही धर्म्मका आसरा है, इसलिये सत्यका लोप न करे। सत्यसे ही दान दक्षिणायुक्त यज्ञ, अग्निहोत्र, समस्त वेद और धर्म्म निश्चय-प्राप्त होता है। एक ओर सहस्र अश्वमेध यज्ञ और दूसरी ओर अकेले सत्यके तुलादण्डपर रखनेसे सहस्र अश्वमेधसे अकेला सत्य अधिक होता है।

१६२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान भरतश्रेष्ठ! काम, क्रोध, शोक, मोह, विधित्सा, अकार्य्य, पराधीनता, मत्सरता, ईर्षा, कुत्सा, असूया, कृपा और भय जिससे उत्पन्न होते हैं, आप मेरे समीप उसे यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज। ये तेरह प्राणियोंके प्रबल शत्रु हैं; ये मनुष्योंको सब तरहसे सेवा किया करते हैं, यह मनुष्योंको सदा जानना उचित है। हे राजन्! इन सबकी उत्पत्ति, स्थिति और निवृत्तिका विषय तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। इस समय पहिले क्रोधकी उत्पत्तिका विषय यथार्थ रीतिसे कहता हूं। तुम सावधान होकर सुनो। लोभसे क्रोध उत्पन्न होता है और वह पराये दोषके जरिये उद्दीप्त होकर क्षमाके सहारे निवद्ध वा निवृत्त हुआ करता है।

सङ्कल्पसे काम उत्पन्न होता है, उसकी जितनी ही सेवा की जाय उतना ही वह बढ़ता है बुद्धिमान पुरुषोंके कामसे विरत होनेपर उसही समय वह नष्ट होजाता है, क्रोध और लोभके बोचसे असूयाकी उत्पत्ति होती है, सब जीवोंमें दया करनेसे उसकी निवृत्ति हुआ करती है। बुद्धिमान् पुरुषोंके मनमें अनिष्ट वस्तुओंके दर्शनसे भी इसकी उत्पत्ति होती और तत्वज्ञानके जरिये निवृत्ति देखी जाती है। अज्ञानसे मोह उत्पन्न होता है और पापसे बार बार बढ़ता रहता है, सत्सङ्गतिके कारण वह नष्ट होजाता है। हे कुरुकुल धुरन्धर! जो लोग विरुद्ध शास्त्रोंको देखते हैं, उन लोगोंको विधित्सा अर्थात् कार्य्यके आरम्भमें व्यग्रता उत्पन्न होती है, तत्वज्ञानसे उसकी निवृत्ति हुआ करती है, प्रणययुक्त पत्र आदिके वियोगके कारण देहधारी जीवोंका शोक उत्पन्न होता है; प्रिय पुरुषका वियोग होनेपर जब कि यह विदित होता है कि फिर उसके मिलनेकी सम्भावना नहीं है, उस समय शोककी शान्ति हुआ करती है, क्रोध, लाभ और अभ्यासके कारणसे अकार्य्य-परतन्त्रता प्रकट होती है, सब जीवोंमें दया और निर्वेदके सबब उसकी निवृत्ति होती है। सत्यके त्यागने और अनिष्ट-विषयोंकी सेवा करनेसे मत्सरता उत्पन्न होती है, वह साधुओंकी सङ्गति करनेसे नष्ट होती है। कुलकी मर्य्यादा, विद्या और ऐश्वर्य्यसे मद उत्पन्न होता है; इन सबकी यथार्थता मालूम होनेपर उसही समय उसका नाश होता है। काम और हर्षसे ईर्षा प्रकट होती है, साधारण प्राणियोंकी बुद्धिको देखनेसे वह नष्ट होती है। हे राजन्! समाजसे च्युत लोगोंके भ्रमके कारण द्वेष और असम्मत वचनके जरिये कुत्साकी उत्पत्ति होती है शिष्टाचारके देखनेसे उसकी शान्ति होती है,

जो लोग बलवान् शत्रुके प्रतिकार करनेमें समर्थ नहीं हैं, उन लोगोंमें तीक्ष्ण असूया उत्पन्न हुआ करती है, करुणासे वह निवृत्त होती है। सदा दुःखित पुरुषोंके देखनेसे कृपा उत्पन्न होती है, धर्मनिष्ठा विदित होनेपर उसकी निवृत्ति हुआ करती है। यह सदा देखा जाता है, कि जीवोंको अज्ञानसे लोभ उत्पन्न होता है, सब विषयोंकी अस्थिरता देखनेपर ज्ञानसे उसकी निवृत्ति होती है। बुद्धिमान् लोग कहा करते हैं, शान्तिके जरिये इन तेरही दोषोंको पराजित किया जाता है। धृतराष्ट्रके पुत्रोंमें येही सब दोष थे, तुमने सत्यके अभिलाषी होकर उन लोगोंको जय किया है।

१६३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! मैं सदा साधुओंकी सङ्गतिमें रहनेसे अनृशंसताको जानता हूं; नृशंस और उसके कार्य्यके विषयको नहीं जानता; लोग कांटे, कूएं और अग्निको जिस तरह त्यागते हैं, निठुर मनुष्यको भी उसी तरह परित्याग किया करते हैं, नृशंस पुरुष इस लोक और परलोकमें स्पष्ट रूपसे जलता है; इसलिये आप उस विषय और कर्म्म-निर्णयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, नृशंस पुरुष कुकर्म्ममें प्रवृत्त और नीच कार्य्य करनेमें अभिलाषी होता है। वह स्वयं जन समाजमें निन्दनीय होकर भी सदा दूसरेकी निन्दा करता है और अपनेको सबके समीप वञ्चित समझता है; उसके समान छोटा और नीचबुद्धि दूसरा कोई भी नहीं है। वह अभिमान, असत्सङ्ग और अपनी बड़ाईमें रत होकर निज वदान्यता प्रकाशित करता है; कृपण और मूर्खकी भांति सबकी ही शङ्का किया करता है; निज सम्प्रदायकी प्रशंसा और आश्रमवासी ऋषियोंके विषयमें द्वेष करता है; सदा दूसरेकी हिंसामें प्रवृत्त होकर दोष गुणका विचार नहीं करता; बहुतसी न कहने योग्य बात कहता है, अशान्त चित्त और लोभी होकर निठुर कार्य्य किया करता है; धर्म्म करनेवाले गुणवान् मनुष्योंको पापी कहके निश्चय करता है, अपने चरित्रके प्रमाण अनुसार दूसरेका विश्वास नहीं करता, दूसरेका दोष देखनेसे ही उसे गुप्त रीतिसे प्रकाश करता है; दूसरेका दोष निज दोषके समान होनेपर जीविका निर्व्वाहके लिये उसे छिपा रखता है; उपकारी पुरुषको केवल वञ्चित समझता है; समयके अनुसार उपकारीको धनदान करके फिर दुःख किया करता है। प्राप्त हुए भक्ष्य, भोज्य और पेय वस्तुओंको दूसरेके देखते रहते भी जो पुरुष अकेला भोजन करता है, उसे भी नृशंस कहते हैं। जो लोग पहिले ब्राह्मणोंको भोजनकी वस्तुओंका दान करके सुहृदोंके सङ्ग उसे भोजन करते हैं, वे इस लोकमें अनन्त सुख भोग करते हुए अन्तमें कालमें स्वर्ग लाभ करते हैं। हे धर्म्मराज! यही तुम्हारे निकट नृशंसका विषय वर्णन किया विज्ञानयुक्त मनुष्योंको सदा नृशंसका सङ्ग परित्याग करना उचित है।

१६४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! सब वेदोंके जाननेवाले यत्नशील धर्म्मात्मा साधु ब्राह्मणोंके दरिद्र होने पर आचार्य्य कार्य्य, पितर कर्म्म और पढ़नेके लिये उन लोगोंको अर्थदान करना अवश्य उचित है। राजा सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको सब रत्न दान करे, ब्राह्मण लोग ही वेद और अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञ स्वरूप हैं। वे लोग इच्छा पूर्व्वक गुण तथा गौरवके अनुसार धनसे सिद्ध होनेवाले यज्ञोंका पूरा किया करते हैं। जिसके आश्रितोंके पालन करनेके निमित्त

त्रिवर्षिक और उससे भी अधिक अन्न उपस्थित रहता है, वे सोमपान करनेमें समर्थ होते हैं, धर्मात्मा राजा वर्त्तमान समयमें यज्ञ करनेवाले विशेष करके ब्राह्मणोंका यज्ञ यदि एक अंशके जरिये रुक जाय, तो राजा यज्ञ और सोमरस पान न करनेवाले अनेक पशुसमूहसे युक्त वैश्यका धन ग्रहण करके यज्ञके निमित्त ब्राह्मणको दान करे। राजा इच्छानुसार शूद्रके घरसे कुछ धन न ग्रहण करे, क्योंकि शूद्रको यज्ञ कर्मका कुछ अधिकार नहीं है। जो एक सौ गऊवाले होकर अग्निमें आहुति नहीं देते और जो सहस्र गऊसे युक्त होके भी यज्ञ नहीं करते, राजा कुछ भी विचार न करके यज्ञके लिये उनका धन हरण करे; राजा प्रकाश्य रीतिसे सदा कृपणोंके धनको हरण करे; जो राजा ऐसा आचरण करता है, उसे बहुत धर्म होता है। जिस ब्राह्मणने अन्नके अभावसे तीन दिन तक उपवास किया है, वह कर्महीन पुरुष उदूखल, खेत, बगीचे अथवा जिस स्थानसे मिल सके, वहांसे एक दिनके योग्य अन्न हरण करके राजाके न पूछने पर भी उसके समीप प्रकाशित करे, धर्म जाननेवाला राजा धर्मके अनुसार उसके विषयमें दण्ड धारण न करे, क्षत्रियोंकी असावधानीसे ब्राह्मण क्षुधासे क्लेशित होते हैं, राजा ब्राह्मणोंकी विद्या और चरित्रको जानके उनकी वृत्तिका विधान करे। जैसे पिता और सपुत्रोंको प्रतिपालन करता है राजा वैसे ही ब्राह्मणोंकी सब तरहसे रक्षा करे; सम्वत्के अन्तमें वैश्वानर यज्ञ करे। धर्म जाननेवाले पुरुषोंने अनुकल्पको परधर्म कहा है और विश्वदेव, साध्य, महर्षि तथा ब्राह्मणोंने आपदकालमें मरनेसे डरके अनुकल्पको मुख्य धर्मका प्रतिनिधि स्वरूप निश्चित किया है। जो पुरुष मुख्य कल्पको करनेमें समर्थ होकर अनुकल्पका अनुवर्ती होता है, उसे पारलौकिक फल नहीं मिलता। वेद जाननेवाला ब्राह्मण राजाके निकट किसी विषयका निवेदन न करे; ब्रह्मबल और राजबल इन दोनोंके बीच ब्राह्मणका बल ही प्रबल है; इसलिये ब्रह्मवादियोंका बल राजाके विषयमें सदा दुःसह हुआ करता है। ब्राह्मण कर्त्ता, शास्ता, धाता और देवता स्वरूप कहे जाते हैं; ब्राह्मणोंके निकट रूखा और अमांगलिक वचन न कहे। क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य, शूद्र बहुतसे धनके जरिये और ब्राह्मण मन्त्र तथा होमके सहारे आपदोंसे पार होते हैं। कन्या, स्त्री, मन्त्रशास्त्रसे हीन, मूर्ख और यज्ञोपवीत रहित पुरुष अग्निहोत्रमें आहुति न देवे, ये लोग जिसके होमको अग्निमें आहुति देते हैं, उसके सहित अपनेको नरकमें डालते हैं, इसलिये वेद जाननेवाले याज्ञिक पुरुषको होता होना उचित है। जो यज्ञकी अग्नि स्थापित करके प्राजापत्य दक्षिणा दान नहीं करते, धर्मदर्शी पुरुष उन्हें आहिताग्नि नहीं कहते; श्रद्धावान् जितेन्द्रिय होकर समस्त पुण्यकर्म करे, कभी दक्षिणा-रहित यज्ञ न करे। जो यज्ञ करके दक्षिणा नहीं देते, उनकी प्रजा, पशु, स्वर्ग, यश, कीर्त्ति, आयु और समस्त इन्द्रियां नष्ट होती हैं। जो ब्राह्मण रजस्वला स्त्रीसे सङ्ग करते, जो आहिताग्नि नहीं हैं और जिसके वंशमें वेदज्ञानसे रहित पुरुष जन्म लेते हैं, वे सब ही शूद्रके समान हैं; ब्राह्मण शूद्रकी कन्याका पाणिग्रहण करके जिस स्थानमें केवल कूएंका जल ही उपजीव्य है, वहां बारह वर्ष वास करनेसे शूद्रत्वको प्राप्त होता है। हे राजन्! ब्राह्मण यदि अपरिणीता स्त्री और शूद्रको माननीय समझके अपनी शय्यापर शयन करने दे, तो वह अपनेको अब्राह्मण समझके उसके पीछे तृणशय्या पर शयन करे, तब शुद्ध होगा; इस विषयमें मैं जो कहता हूं, उसे सुनो। जो ब्राह्मण नीच वर्णकी सेवा करके एक स्थान और एक आसनपर एक रात्रिके बीच उसके सङ्ग

विहार करके पापग्रस्त होता है, वह व्रतनिष्ठ होकर तीन वर्षमें उस पापको नष्ट करनेमें समर्थ हुआ करता है। हे धर्म्मराज! परिहासके समय, स्त्रीके निकट, विवाहकालमें; गुरुके लिये और निज जीवनकी रक्षाके निमित्त मिथ्या वचन कहनेसे दोष नहीं होता; पण्डित लोग इस पांच प्रकारके झूठ व्यवहारको पाप नहीं कहते। श्रद्धावान् पुरुष नीच जातिसे भी उत्तम विद्या सीखे, अपवित्र जगहसे भी कुछ विचार न करके सुवर्ण ग्रहण करे, नीचकुलसे भी उत्तम स्त्री ग्रहण करे और विषसे अमृत लेके पीवे; क्योंकि स्त्रीरत्न और जल धर्मपूर्व्वक दूषित नहीं होते। वैश्यजाति वर्णसङ्करोंको निवारण करने और गऊ ब्राह्मणके हित तथा अपने परिवारोंके लिये शस्त्र ग्रहण करे। जानके ब्रह्महत्या सुरापान, गुरुस्त्री-गमन, सुवर्ण चुराना और ब्राह्मणस्व हरण करना, ये पांचो महापातक हैं; प्राणनाश ही इसका प्रायश्चित्त निश्चित है। सुरापान और अगम्य गमनके कारण जो पुरुष पतित होता है, उसके सङ्ग सहवास करने और अब्राह्मण होके ब्राह्मणी गमन करनेसे पुरुष शीघ्र ही पतित होता है। मनुष्य याजन, अध्यापन और योनिसम्बन्धके कारण पतित हुए पुरुषके सङ्ग व्यवहार करनेसे सम्वत्सरके बीच पतित हुआ करते हैं; एकत्र गमन करने एक आसन पर बैठने और एकत्र भोजन करनेसे पतित नहीं होते। हे धर्म्मराज! ब्रह्महत्या आदि पञ्च महापातकका प्रायश्चित्त नहीं कहा है, प्राणत्याग ही उसका प्रायश्चित्त है; इससे अतिरिक्त दूसरे पापोंके जो प्रायश्चित्त हैं, उससे पाप नष्ट करके अन्तमें पुरुष फिर उसमें प्रवृत्त न होवे, सुरापीनेवाले ब्रह्महत्यारे और विमाताके सङ्ग गमन करनेवाले पुरुषोंके मरने पर उनके दाहकर्म्म तथा प्रेतकार्य्य करनेकी आवश्यकता नहीं है; सपिण्ड लोग इस विषयमें विचार न करके उसका अशौच ग्रहण न करके अन्न और सुवर्ण ग्रहण करें। अमात्य और महत् पुरुषके पतित होने पर जबतक वह प्रायश्चित्त न करे, तबतक धार्म्मिक पुरुष धर्म्मके अनुसार उसे त्याग दे और उसके सङ्ग बात न करे। पाप करनेवाला पुरुष तपस्या और धर्म्माचरणसे पापको नष्ट करता है। तिसको चोर कहनेसे उसके समान पाप होता है, और जो पुरुष तस्कर नहीं है, उसे तस्कर कहनेसे उसके पापसे दूना पाप कहनेवालेको लगता है। कुमारी यदि व्यभिचारसे दूषित हो, तो वह ब्रह्महत्या पापके तीन भागका एक भाग भोग करती है और जो पुरुष उसे दूषित करता है, वह बाकी दो भाग ग्रहण करता है। ब्राह्मणको मारनेके लिये उद्योग अथवा प्रहार करनेसे एक सौ वर्ष पर्य्यन्त प्रतिष्ठा नहीं मिलती। हत्या करनेसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त नरकमें बास करना पड़ता है; इसलिये कभी ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करने वा मारनेके वास्ते तैयार न होवे। ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करनेसे उसके शरीरसे निकला हुआ रुधिर जितनी धूलिकी गोली करता है, मारनेवाला पुरुष उतने ही वर्ष पर्य्यन्त नरकमें वास किया करता है। भ्रूणहत्या करनेवाला पुरुष गऊ ब्राह्मणकी रक्षाके वास्ते युद्धमें शस्त्रसे मरकर शुद्ध होता अथवा जलती हुई अग्निमें अपने शरीरको आहुति देनेसे शुद्ध हो सकता है। सुरा पीनेवाला जलते हुए उष्ण वारुणी मद पीनेसे पापसे मुक्त होता अर्थात् उष्ण मद पीनेसे उसका शरीर जलनेपर वह मृत्युके कारण परलोकमें गमन करके पवित्र होता है। ब्राह्मण लोग सुरापान करके ऐसा आचरण करनेसे शुभ लोकमें गमन करते है; इसमें अन्यथा करनेसे असत् गतिको प्राप्त होवे हैं।

पापबुद्धि दुष्टात्मा पुरुष विमाताके साथ गमन करनेसे जलती हुई लोहमयी स्त्रीकी मूर्त्तिको आलिङ्गन करके प्राणत्यागनेसे शुद्ध

होता है। अथवा स्वयं शिर और कोश काट-कर अस्त्रलोंमें लेकर नैऋर्त्त दिशामें गमन करके निपतित होवे; अथवा ब्राह्मणके निमित्त प्राण परित्याग करनेसे शुद्ध होगा। अथवा अश्वमेध, गोमेध वा अग्निष्टोम यज्ञ करके इस लोक और परलोकमें सत्कृत हो सकेगा। ब्रह्महत्या करनेवाला पुरुष मरे हुए ब्राह्मणका कपाल धारण करके बारह वर्ष तक निरन्तर निज कार्य्यको प्रकाश करते हुए ब्रतचारी और मननशील होवे। ब्रह्महत्या करनेवाले पुरुषको इसी प्रकार मननशील और तपमें निष्ठावान होना उचित है जो पुरुष ऋतुमती स्त्रीको ऋतुमती जानके बध करता है, उसे ब्रह्महत्यासे दुगुना पाप होता है। सुरापीने-वाला ब्राह्मण निराहार ब्रह्मचारी होकर पृथ्वीपर शयन करते हुए तीन वर्ष तक केवल अग्निष्टोम यज्ञ करे, शेषमें एक बैलके सहित एक सहस्र गऊ दान करके शुद्ध होगा। वैश्यका बध करनेसे दो वर्ष तक अग्निष्टोम यज्ञ करके एक बैलके सङ्ग एक सौ गऊ दान करे। शूद्रको मारनेसे एक वर्ष तक अग्निष्टोम यज्ञ करके एक बैल और एक सौ गऊ दान करे। कुत्ता, सूअर और गधेको मारनेसे शूद्रके ब्रतका आचरण करे। हे राजन्! बिड़ाल, चूहा, मेढ़क, कौवा, स्वर्णचातक और सांप आदि जीवोंको हिंसा करनेसे पशु हत्याका पाप हुआ करता है। इस समय दूसरे सब प्रायश्चित्तोंको कथा क्रमके अनुसार कहता हूं।

बिना जाने कीट आदिका बध करनेसे शोक-रूपी प्रायश्चित्त करके शुद्ध होगा; गऊ बधके अतिरिक्त दूसरे पृथक् पृथक् उत्पातकोंका प्राय-श्चित्त सम्वत भरमें ही करे। वेदजाननेवाले ब्राह्मणको भार्य्यासे गमन करने पर तीन वर्ष और परस्त्री मात्रके सङ्ग गमन करनेसे दो वर्ष तक दिनके चौथे भागमें भोजन करके ब्रह्म-चारी और ब्रतमें निष्ठावान होवे। परस्त्रीके साथ एक स्थान और एक आसन पर बैठनेसे तीन दिन केवल जल पीके समय वितावे। हे कुरुनन्दन! जो पुरुष बिना कारणके ही पिता, माता और गुरुको परित्याग करता है, वह जिस प्रकार धर्म्म-निर्णयके अनुसार पतित होता है, उसी तरह जो पुरुष अग्निहोत्र नष्ट करता है, वह भी पतित हुआ करता है। भार्य्याके व्यभिचारिणी होनेपर उसे विशेष रीतिसे अवरुद्ध करके भोजन और वस्त्र मात्र देवे; परस्त्री-गमन करनेसे पुरुषके लिये जैसा प्रायश्चित्त है, उसे भी उसी ब्रतका आचरण करावे, जो स्त्री अपने पतिको त्यागके दूसरे पुरुषका आसरा करके पापाचार करती है; राजा उसे अनेक लोगोंसे परिपूरित स्थानमें कुत्तोंसे भक्षण करावे। इसी तरह पुरुषको भी व्यभिचार करने पर उसे जलती हुई लोहमय-शय्यापर सुलावे और उसमें काठका ढेर लगा देनेसे पाप करनेवाला मनुष्य भस्म होगा। महा-राज! स्त्रियोंको पतिके विषयमें व्यतिक्रम कर-नेसे उन्हें भी इसी तरह दण्ड देना योग्य है। जो दुष्टात्मा पाप-कर्म्म करके सम्वत्के बीच प्रायश्चित्त नहीं करता, उसे दूना प्रायश्चित्त करना पड़ता है। प्रायश्चित्त न करनेवाले पुरुषके सङ्ग जो मनुष्य दो, तीन, चार अथवा पांच वर्षतक वास करता है, वह मुनिब्रत अवलम्बन करके भिक्षा मांगके जीवन व्यतीत करे। जेठे भाईके क्वारा रहते छोटा भाई यदि विवाह करे, तो उसे परिवेत्ता कहते हैं, वह उसके जेठे और जिसके उद्योगसे विवाह होता है, वे सभी अध-र्म्मके कारण पतित हुआ करते हैं। वीरघाती पुरुष जिस ब्रतका अनुष्ठान करता है, वह भी पापशुद्धिके लिये एक महीने तक उसही कृच्छ्र वा चान्द्रायण ब्रतका आचरण करे; अन्तमें परिवेत्ता जेठे भाईको वह विवाहिता भार्य्या प्रदान करे, अनन्तर छोटा भाई बड़ेकी अनुमतिसे फिर उसे ग्रहण करे, तब वह दोनों

भाइयोंसे परिणीता स्त्री धर्मके अनुसार शुद्ध होती है। गऊको छोड़के दूसरे पशुओंकी हिंसा दोषयुक्त नहीं होती; पण्डित लोग जानते हैं, कि पशुओंके ऊपर प्रतिपालक पुरुषोंकी सब तरहकी प्रभुता है। पापी पुरुष सुरागायके चर्वरको धारण करके निज कर्मको कहते हुए मट्टीका पात्र लेकर सवेरे सात घरमें भिक्षाके वास्ते भ्रमण करें और उससे जो प्राप्त हो, वही भोजन करें; बारह दिनतक इसी तरह व्रत करनेसे उसके अनन्तर शुद्ध होंगे। पाप शान्ति न होनेपर सम्वत्‌भर ऐसाही व्रत करे; तो पाप नष्ट हो सकेगा। मनुष्योंके बीच इसी तरहका प्रायश्चित्त ही उत्तम है। दान करनेमें समर्थ पुरुषोंके विषयमें इन्हीं सब दानोंका विधान करे,—जो लोग नास्तिक नहीं हैं, उनके निमित्त केवल एक गऊका दान पण्डितोंके जरिये कहा गया है। ब्राह्मण यदि कुत्ता, सूअर, कुक्कुट और गधेका मांस, मूत्र अथवा पुरीष भोजन करे, तो फिरसे उसका संस्कार करना होगा। सोमपान करनेवाला ब्राह्मण यदि सुरा पीनेवालेका गन्ध सूंघे, तो पहिले तीन दिन तक केवल गर्म्म जल पीवे, फिर तीन दिन गर्म्म दूध पीवे; तिसके अनन्तर तीन दिन उष्ण जल पीकर तीन दिन वायु भक्षण करे, सब वर्णोंके विशेष करके बिना जाने ब्राह्मणोंके किये हुए पापोंका इसी प्रकार सनातन प्रायश्चित्त कहा गया है।

१६५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, तलवार युद्धके जाननेवाले नकुलने कथाकी समाप्ति देखकर शरशय्या शायी पितामह भीष्मदेवसे यह बात कही।

नकुल बोले, हे धर्म्मजाननेवाले पितामह! सब शस्त्रोंके बीच धनुष अत्यन्त उत्तम है; पर मेरे मतमें तलवार ही प्रशंसनीय है; क्यों कि धनुष कटने और घोड़ोंके नष्ट होने पर केवल तलवारसे आत्माकी भलीभांति रक्षा करी जा सकती है, अकेला तलवार ग्रहण करनेवाला वीर पुरुष, धनुषधारी और गदाशक्तिसे प्रहार करनेवाले शत्रुओंको निवारण करनेमें समर्थ होता है। हे पितामह! इससे मुझे इस विषयमें बहुत ही संशय और कौतूहल उत्पन्न हुआ है; युद्धमात्रमें कौन शस्त्र उत्तम है? किस कारण किस जरिये किस तरह खड्‌ग उत्पन्न हुआ था और पहिले कौन खड्‌गविद्याका आचार्य्य था? आप यह सब वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भारत! धनुर्व्वेदके जाननेवाले शरशय्याशायी धर्मज्ञ भीष्मदेव बुद्धिमान् माद्रीपुत्रका यह वचन सुनकर सुशिक्षित द्रोणशिष्य महानुभाव नकुलसे कौशलयुक्त सूक्ष्म और विचित्र अर्थके सहित स्वरवर्णसे युक्त उत्तम वचन कहने लगे।

भीष्म बोले, हे माद्रीपुत्र! तुमने धातुमान् पर्व्वतकी तरह मुझे सावधान किया; इससे जो पूंछते हो, उस विषयका यथार्थ वृत्तान्त कहता हूं, सुनो, हे तात! पहिले यह दृश्यमान जगत् जल समूहमें समुद्रमय, निष्प्रकम्प, अनाकाश, अन्धेरेसे परिपूरित, स्पर्श रहित, शब्दहीन, अप्रमेय और अत्यन्त गम्भीर था, उस समय पृथ्वीतलका पता न था; पितामह ब्रह्माने उस ही समय जन्म लिया। उस सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्माने वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य्य, स्वर्ग, पाताल, भूमि, नैऋती, चन्द्रमा, तारा, ग्रह, नक्षत्र, सम्वत्सर, ऋतु, महीना, पक्ष, लव और क्षण इन सबकी सृष्टिकी। अनन्तर भगवान् पितामहने लौकिक-शरीर धारण करके मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अङ्गिरा, सब कार्य्योंमें समर्थ रुद्र और प्रचेता नाम अत्यन्त तेजस्वी ऋषिसन्तानोंको उत्पन्न किया। दक्ष प्रजापतिसे साठ कन्या उत्पन्न

हुईं, ब्रह्मर्षियोंने पुत्र उत्पन्न करनेके लिये उन कन्याओंको ग्रहण किया। उन्हीं कन्याओंसे विश्वगण, देवता, पितर, भूत, गन्धर्व्व, अप्सरा, विविध, राक्षस, पतङ्गो, मृग, मछरी, प्लवग, महोरग, भूचर, खेचर, जलचर, जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज आदि प्राणी तथा स्थावर जङ्गमसे युक्त समस्त जगत् उत्पन्न हुआ, सब लोकोंके पितामह ब्रह्माने इन सब जीवोंको उत्पन्न करके शाश्वत वेदोक्त धर्म्म प्रयोग किया, आचार्य्य और पुरोहितके सहित देवता लोग उस ही धर्म्मका अनुष्ठान करने लगे। आदित्य-गण, वसु, रुद्र, साध्य, दोनों अश्विनीकुमार, भृगु, अत्रि, अङ्गिरा सिद्ध लोग, तपस्वी, कश्यप, वशिष्ठ अगस्त्य, नारद, पर्व्वत, बालखिल्य ऋषि, प्रभास, सिकत, घृतप, सोमवायव्य, वैश्वानर मरीचिपायी, आकृष्ट, हंस, अग्नियोनि ये सब ऋषि, वाणप्रस्थ तथा प्रश्नि आदि ऋषि ब्रह्माको आज्ञामें स्थित रहे।

दानवेन्द्र समूह क्रोध लोभसे युक्त होकर पितामहका वह शासन अतिक्रम करके धर्म्म नष्ट करने लगा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु विप्रचित्ति, वोरोचन, सम्बर, प्रह्लाद, नमुचि और बलि, ये सब तथा समूहके सहित दूसरे बहुतेरे दैत्य दानव धर्म्मबन्धन उल्लङ्घन करके अधर्म्ममें रत हुए थे। सब कोई समान वंशमें उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जैसे देवता लोग हैं। वैसे ही हम भो हैं, दैत्य लोग ऐसा ही धर्म्माप-वलम्बन करके देवर्षियोंके सङ्ग स्पर्द्धा करने लगे। हे भारत! वे लोग जीवोंके ऊपर करुणा तथा उनका प्रियकार्य्य नहीं करते थे। भेद, दण्ड, दानरूपी तीनों उपायको अवलम्बन करके दण्डसे प्रजा समूहको पीड़ित करने लगे वे सब मुख्य मुख्य असुर लोग विज्ञानमार्गसे नहीं चलते थे। अनन्तर भगवान ब्रह्मा ब्रह्मर्षि-योंके सहित हिमालय पर्व्वतके सुन्दर शृङ्गपर उपस्थित हुए। देवोंमें श्रेष्ठ विधाताने प्रजा समूहके प्रयोजन सिद्धिके निमित्त फूले हुए वृक्षोंसे परिपूर्ण उस पर्व्वत पर निवास किया। अनन्तर सहस्रवर्षके बाद ब्रह्माने विधानके अनु-सार यज्ञ आरम्भ किया, विधिके अनुसार कर्म्म करनेवाले यज्ञ दक्ष ऋषियोंके जरिये यथा-रीति वह यज्ञ पूर्ण होने लगा। यज्ञका स्थान प्रकाशमान अग्नि और समित समूहसे परि-पूरित, भ्राजमान सुवर्ण यज्ञकलशसे अलंकृत, मुख्य मुख्य देवताओंसे घिरकर ब्रह्मर्षियोंसे सुशोभित हुआ था। मैंने सुना है, यज्ञमें ऋषि-योंके बीच आश्चर्य्य घटना हुई थी। उदित तारोंसे शोभित निर्म्मल आकाशमें जैसे चन्द्र-माका उदय होता है, वैसे ही कोई भूत अग्निको विदीर्ण करके प्रकट हुआ। वह भूत नीलोत्पल दलके समान श्यामवर्ण; उसके सब दांत तीक्ष्ण, उदर अत्यन्त क्षीण, आकार बहुत ऊंचा, तेजसे-युक्त और अनभिभवनीय था। उसके उठते ही पृथ्वी विचलित और तरङ्गमा-लाके सहित आवर्त्तयुक्त महोदधि क्षुभित हुआ, उत्पातजनक उल्कापात होने लगा। वृक्षोंकी सब शाखा टूट गयीं, समस्त दिशा कलुषित हुईं और अकल्याणयुक्त वायु बहने लगा। उस समय सब जीव भयके कारण बार-म्बार दुःखित होने लगे। अनन्तर पितामह उस तुमुल कारण और अद्भुत भूतको उपस्थित देखकर देवता गन्धर्व्व तथा महर्षियोंसे यह वचन बोले, कि जगत्की रक्षा और असुरोंके बधके लिये मैंने इस बलवान असिनाम भूतको इसी तरह चिन्ता किया था। क्षण भरके अन-न्तर भूत उस अद्भुत रूपको परित्याग करके उद्यत कालान्तकके समान तीक्ष्णधार तलवार रूपसे प्रकाशित हुआ। अनन्तर ब्रह्माने वृषभ-ध्वज नीलकण्ठ रुद्र देवको वह अधर्म्म-वारण तीक्ष्ण शस्त्र प्रदान किया। महर्षियोंसे स्तूय-मान अनन्त अमितसार भगवान रुद्रदेवने उस खड्गको ग्रहण करके दूसरा रूप धारण किया

उस समय उन्होंने चतुर्भुज होकर पृथ्वीपर स्थित होके मस्तकसे सूर्य्यको स्पर्श किया। और महालिङ्ग मूर्त्ति धारणकर ऊर्द्ध दृष्टि होकर मुखसे ज्वाला बाहर करने लगे। नील, पाण्डुर, लोहित आदि अनेक तरहके रूप बदलते हुए रुद्रने सुवर्ण तारसे खचित कृष्णाजीन वस्त्र धारण किया। उनके माथेपर सूर्य्यके समान एक नेत्र प्रकट हुआ, तब काले और पीले वर्णवाले उनके दोनों नेत्र सुशोभित हुए। अनन्तर भगनेत्र हर महाबली पराक्रमी शूलधारी महादेवने प्रलयकी अग्नि समान प्रकाशमान तलवार ग्रहण करके बिजलीयुक्त बादलकी तरह दोनों बगल और अग्रभागमें धारणक्षम त्रिकूटयुक्त ढाल ग्रहण करके युद्धकी इच्छासे आकाशमें तलवार घुमाते हुए विविध मार्गसे भ्रमण करने लगे। हे भारत! उस समय रुद्रदेवके महाहास्य और निनाद करनेसे उनका भयङ्कर रूप प्रकाशित हुआ। रौद्र कर्म्म करनेवाले रुद्रदेवने युद्धके निमित्त वैसा रूपधारण किया, उसे सुनकर दानव लोग हर्षित होकर उनके सम्मुख दौड़े। वे सब जलते हुए अङ्गार, अयोमय क्षुरधारवाले सब शस्त्र और दूसरे घोर आयुधों तथा पत्थरोंकी वर्षा करने लगे; अनन्तर दानवोंकी सेना बलपूर्व्वक विध्वंश करनेवाले अच्युत रुद्रदेवको देखकर मोहित और विचलित हुई। वह अकेले ही तलवार ग्रहण करके द्रुतपदसे घूम रहे थे; तब असुर लोग उन्हें सहस्ररूपसे मालूम करने लगे। वह तृणसमूहमें पड़ी हुई दावानल अग्निकी भांति शत्रुओंके बीच छेदन भेदन, पीड़न, कृन्तन, विदारण और दाहन करते हुए भ्रमण करने लगे। महाबली दानव लोग तलवारके वेगसे छिन्नभिन्न होगये; किसीकी भुजा कटी, किसीकी गर्द्दन, किसीकी छाती और किसीके शिर कटके पृथ्वी पर गिर पड़े। कितनेही तलवारकी चोटसे पीड़ित होकर युद्धत्यागके आपसमें एक दूसरेके विषयमें आक्रोश करते हुए दशों दिशामें भाग गये। कोई भूगर्भ, कोई पर्व्वतके बीच, कोई कोई आकाशमार्ग और कोई जलके भीतर प्रविष्ट हुए। उस अत्यन्त दारुण कठोर संग्रामके समाप्त होने पर मांस और रुधिरमय कीचड़से युक्त पृथ्वीने अत्यन्त भयङ्कर मूर्त्ति धारण की। फूले हुए पलाशके वृक्षोंसे युक्त पर्व्वत समूहकी तरह दानवोंके रुधिरपूरित मृत शरीरसे पृथ्वी भर गई। उस समय पृथ्वी रुधिरकी धारासे युक्त होकर मदविह्वल रुधिरसे भींगे हुए वस्त्रवाली श्यामा स्त्रीकी तरह शोभायमान हुई। रुद्रदेवने दानवोंको मारके जगत्में धर्म्म स्थापित करते हुए रौद्ररूप त्यागकर कल्याण युक्त शिव रूप धारण किया, अनन्तर सब देवताओं और महर्षियोंने आश्चर्य्यमय जयशब्दके जरिये महादेवकी पूजा की, अन्तमें भगवान रुद्रदेवने धर्म्मकी रक्षा करनेवाले विष्णुका सत्कार करके दानवोंके रुधिरसे भींगी हुई तलवार प्रदान की। हे तात! विष्णुने मरीचिको, भगवान मरीचिने महर्षियोंको, महर्षियोंने महेन्द्रको, देवराजने लोकपालोंको, लोकपालोंने सूर्य्यपुत्र मनुको वह बहुत बड़ा खड्ग प्रदान किया; और उन्होंने मनुसे यह वचन कहा था,—कि तुम मनुष्योंके प्रभु हो; इससे इस धर्म्मगर्भ तलवारके जरिये प्रजासमूहको पालन करो। जिन्होंने शरीर और मनकी प्रीतिके निमित्त धर्म्मबन्धन अतिक्रम किया है, उन लोगोंको धर्म्म पूर्व्वक दण्ड देकर रक्षा करनी उचित है; इच्छानुसार दण्ड प्रयोग करना उचित नहीं है। दण्ड चार प्रकारका है। दुष्ट-वचनसे निग्रह करना वाक्‌दण्ड है, सुवर्ण वसूल करना अर्थ दण्ड, शरीरको अङ्गहानि करना शारीरिक दण्ड और अधिक अपराधके कारण बधरूपी प्राणदण्ड विहित है। तलवारका यह समस्त रूप दुर्व्वार करके

माने; प्रतिपाल्य पुरुषके व्यतिकर्म्मके कारण तलवारके इसी तरहसे सब रूप प्रमाणीकृत हुआ करते हैं।

अनन्तर मनुने लोकाधिपति निजपुत्र क्षुपको अभिषिक्त करके प्रजासमूहकी रक्षाके लिये वह तलवार प्रदान की; क्षुपसे वह इक्ष्वाकुको मिला; इक्ष्वाकुसे पुरूरवा, पुरूरवासे आयुने उसे पाया; आयुसे नहुष, नहुषसे ययाति, ययातिसे वह पुरुको मिला; पुरुसे अमूर्त्तरयस, उनसे राजा भूमिशय, भूमिशयसे दुष्मन्तपुत्र भरतने वह तलवार पाया; उनसे धर्म्मज्ञ राजा ऐलविलको मिला, ऐलविलसे राजा धुन्धुमार, धुन्धुमारसे काम्बोज, उनसे मुचकुन्दने पाई। मुचकुन्दसे मरुत, मरुतसे रैवत, रैवतसे युवनाश्व, युवनाश्वसे इक्ष्वाकु वंशीय रघु, उनसे प्रतापी हरिणाश्व हरिणाश्वसे सुनकने उस तलवारको पाया। सुनकसे धर्म्मात्मा उशीनर उशीनरसे यदुवंशीय भोज, भोजसे शिवि, शिविसे प्रतर्द्दनने उसे पाया; प्रतर्द्दनसे अष्टक, अष्टकसे पृषदश्व, पृषदश्वसे भरद्वाज, भरद्वाजसे द्रोण, द्रोणसे कृप और कृपसे भाइयोंके सहित तुमने इस परम तलवारको पाया है। इस असिका कृत्तिका नक्षत्र है, अग्नि देवता, रोहिणी गोत्र और रुद्रदेव परम गुरु हैं। हे पाण्डुपुत्र! सब लोग जिसे सदा कीर्त्तन करनेसे जयलाभ करते हैं, अत्यन्त गोपनीय असिके उन आठनामोंको मुझसे सुनो, असि, विशासन, खड्ग तीक्ष्णधार, दुरासद, श्रीगर्भ, विजय और धर्म्मपाल। हे माद्रीपुत्र! सब शास्त्रोंमें खड्गही प्रधान है; यह महेश्वर प्रणीत कहके पुराणमें निश्चित हुआ है। हे शत्रुदमन! पृथुराजने पहिले धनुष उत्पन्न किया और उसहीसे धर्म्मपूर्व्वक पृथ्वी पालन करते हुए अनेक शस्य दोहन किया था। हे माद्रीपुत्र! धनुषको भी ऋषि-प्रणीत कहके प्रमाण कर सकते हो। युद्ध जाननेवाले पुरुषोंको सदा खड्गकी पूजा करनी योग्य है। हे भरतश्रेष्ठ! तलवारकी उत्पत्ति और संसर्ग विषयक यह प्रथम कल्प यथारीतिसे विस्तार-पूर्व्वक वर्णित हुआ। मनुष्य सदा इस उत्तम खड्गकी उत्पत्तिका विषय सुनकर इस लोकमें कीर्त्तिलाभ और परलोकमें अत्यन्त सुख भोग करते हैं।

१६६ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भीष्मदेव जब इतनी कथा कहके चुप हुए, तब युधिष्ठिरने घर जाके विदुरके संग एकत्र वर्त्तमान चारों भाइयोंसे पूछा,—धर्म्म, अर्थ, काम इन तीनों विषयोंसे लोक व्यवहार चलता है; उसके बीच कौन उत्तम, कौन मध्यम और कौनसा निकृष्ट है, तथा काम क्रोध और लोभको जीतनेके लिये किस विषयमें चित्त लगाना चाहिये; आपलोग अच्छी तरह प्रसन्न होकर यह विषय यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये, अनन्तर अर्थ तत्वके जाननेवाले बुद्धिमान विदुर पहिले धर्म्मशास्त्रको स्मरण करके कहने लगे।

विदुर बोले, अनेक शास्त्रोंको पढ़ना, निज धर्म्मका आचरण करना; दान, श्रद्धा, यज्ञक्रिया, क्षमा, कपटहीनता, दीनोंके ऊपर दया, यथार्थ वचन और इन्द्रियनिग्रह, ये कईएक धर्म्मकी सम्पत्ति हैं; आप इन्हें धर्म्मकी गति समझिये; आपका चित्त जिससे विचलित न हो,—धर्म्म और अर्थ इन सबका मूल है; मैं इन्हें एकही समझता हूं। ऋषि लोग धर्म्मके सहारे सन्सारसे पार हुए हैं, सब लोक धर्म्मसे ही प्रतिष्ठित हैं; देवताओंको धर्म्मसे ही वृद्धि हुई और धर्म्ममेंही अर्थ स्थित है। हे राजन्! पण्डित लोग धर्म्मको सब गुणोंके बीच श्रेष्ठ, अर्थको मध्यम और कामको कनिष्ठ कहा करते हैं; इसलिये स्थिर चित्तवाले पुरुष धर्म्मको मुख्य समझें। अपने विश-

यमें जैसा आचरण किया जाता है, सब जीवोंके विषयमें वैसा ही व्यवहार करना चाहिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, विदुरका वचन समाप्त होनेपर धर्म्म, अर्थके तत्वज्ञ अर्थशास्त्रके जाननेवाले पृथापुत्र अर्ज्जुनने युधिष्ठिरके प्रश्नके अनुसार वच्यमाण वचन कहना आरम्भ किया।

अर्ज्जुन बोले, यह पृथ्वी कर्म्मभूमि है, इसलिये इसमें प्रवृत्ति विधायक कर्म्म ही मुख्य हैं, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन और विविध शिल्पकर्म्मोंका व्यतिक्रम न करनेसे ही अर्थ होता है, मैंने सुना है, अर्थके बिना धर्म्म और काम स्थित नहीं हो सकते; बिना अर्थसिद्धिके धर्म्म और काम निवृत्त होंगे; इसलिये जैसे सब जीव प्रजापतिकी उपासना करते हैं, वैसे ही सत्कुलमें उत्पन्न पुरुष धनवान मनुष्यकी सदा सेवा किया करते हैं। जटा, मृगछाला धारण करनेवाले, जितेन्द्रिय, सिरमुड़े और निष्ठावान ब्रह्मचारी लोग भी अर्थके अभिलाषी होकर पृथक् पृथक् धर्म्मके अनुसार निवास करते हैं; दूसरे गेरुए वस्त्र पहरके श्मश्रु ल लज्जाशील शान्त, सब तरहकी आसक्तिसे रहित होके और दूसरे कोई कोई पुरुष कुलरीतिको अवलम्बन करके निज निज धर्म्मका अनुष्ठान करते हुए स्वर्ग का मजा किया करते हैं। आस्तिक और नास्तिक लोग परम संयममें रत होके अज्ञानके समान अर्थके प्रधान विषयको प्रकाशित करते हैं। जो सेवकोंको भोगसे और शत्रुओंको दण्डसे शासित करते, वेही धनवान हैं। हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ! यही मेरा अपना मत है, अब नकुल और सहदेव कुछ कहनेकी इच्छा करते हैं; इससे इनका वचन सुनिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर धर्म्मअर्थके जाननेवाले नकुल, सहदेव उत्तम वचन कहनेको उद्यत हुए। नकुल और सहदेव बोले, मनुष्य सोने बैठने और चलनेके समय विविध उपायसे अर्थागमकी चेष्टा करे। परम प्रिय दुर्लभ अर्थके प्राप्त होनेपर पुरुष इस लोकमें कामनाका फल भोगता है यह प्रत्यक्ष दीखता है; इसलिये इसमें सन्देह नहीं है। धर्म्मके संग मिला हुआ अर्थ और अर्थके सहित धर्म्म अवश्य ही आपके विषयमें अमृतके समान है; इस ही कारण यह हम लोगोंको सम्मत है। अर्थहीन मनुष्योंको काम्य वस्तुका भोग नहीं प्राप्त होता और धर्म्महीन पुरुषको धन नहीं मिलता; इसलिये जो पुरुष धर्म्म और अर्थसे रहित हुआ है, सब लोग उससे व्याकुल होते हैं, इसलिये स्थिरचित्तवाले पुरुषोंको धर्म्मको मुख्य मानके अर्थ साधन करना योग्य है, ऐसा होनेसे विश्वस्त जीवोंके बीच सब विश्वस्त रूपसे कल्पित होता है। पहिले धर्म्मका आचरण करे। तिसके अनन्तर धर्म्मयुक्त अर्थ प्राप्त करे, पीछे काम सेवन करे; यथा कि जिसके प्रयोजन सिद्ध हुए हैं, उसके लिये कामही श्रेष्ठ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नकुल, सहदेव ऐसा कहके चुप हुए। तब भीमसेन वच्यमाण वचन कहने लगे।

भीमसेन बोले, निष्काम पुरुष अर्थकी इच्छा नहीं करते, कामहीन पुरुष धर्म्मके अभिलाषी नहीं होते और जिसे काम नहीं है वह किसी विषयकी कामना भी नहीं करता, इसलिये कामही उत्तम है। ऋषि लोग कामनाके कारण फल मूल पलाश आदि तथा वायु भक्षण करके अत्यन्त सावधान होके तपस्यामें रत हुआ करते हैं। दूसरे लोग स्वाध्यायशील होके भी कामनाके कारण वेद वेदान्त आदि शास्त्रोंके अनुशीलनमें विरत होते हैं। कोई कोई श्रद्धा सहित यज्ञ कर्म्ममें कामनाके कारणसे दान करते हैं। बनिये, कृषक, पशुपालक, कारुकर, शिल्पकार और जो लोग देवकार्य्य किया करते हैं, वे सभी कामनाके अनुसार कार्य्योंमें नियुक्त होते हैं, कोई कोई मनुष्य

कामना युक्त होकर समुद्रमें प्रवेश करते हैं। कामके रूप अनेक तरहके हैं; सब पदार्थ ही कामसे व्याप्त होरहे हैं। हे महाराज! कामसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है,—न था और न होगा; यही सार पदार्थ है; धर्म्म और अर्थ इसहीमें स्थित हो रहे हैं। जैसे दहीसे माखन, तिलसे तेल, मट्ठेसे घृत, काठसे फूल और फल तथा पुष्पसे मधु श्रेष्ठ है; वैसे ही धर्म्म और अर्थसे काम उत्तम है; काम ही धर्म्म-अर्थ स्वरूप है। कामना न रहती तो ब्राह्मण लोग ब्राह्मणोंको सुवर्ण और धन दान न करते और लोगोंकी अनेक तरहकी चेष्टा सिद्ध न होती; इसलिये धर्म्म, अर्थ और काम, इन त्रिवर्गोंके बीच कामही प्रधान रूपसे दीख पड़ता है। हे राजन्! आप उत्तम वेषसे भूषित होकर मदसे मतवाली खूबसूरत स्त्रियोंके सङ्ग कामनानुसार क्रीड़ा करिये; हमारे लिये कामही उत्तम है। हे धर्म्मराज! मैंने अच्छी तरह विचार करके बुद्धिसे यह निश्चय किया है; इसलिये आपको इस विषयके विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। मेरा यह नृशंस वचन युक्ति रहित नहीं है, इसलिये साधुओंसे यह संग्रहीत हुआ करता है। धर्म्म, अर्थ और कामको समान रीतिसे सेवन करना योग्य है; जो पुरुष एकको सेवन करता है, वह जघन्य है, धर्म्म और अर्थ दोनोंको सेवन करनेवाला पुरुष मध्यम है; और जो बुद्धिमान् हृदयके सहित चन्दन चर्च्चित और माला तथा आभूषणोंसे भूषित होकर धर्म्म, अर्थ, काम इन त्रिवर्गोंकी सेवामें रत होता है, वही उत्तम मनुष्य है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर भीमसेन वीरोंके निकट संक्षेप और विस्तार युक्त वचनसे अपना अभिप्राय प्रकट करके चुपहुए। तब शास्त्र जाननेवाले धर्म्मात्माओंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर विदुर आदिकी बातोंको मुहूर्त्त भरके बीच भली भांति विचारके सत्यको धारण करके कहने लगे।

युधिष्ठिर बोले, आप लोगोंने धर्म्म शास्त्रोंको निर्णय करके सब प्रमाणोंको निःसन्देह मालूम किये हैं। मैंने जो जाननेकी इच्छासे कहा था, उसका सिद्धान्त वचन सुना; आप लोगोंने जो कहा, वह अवश्यही निश्चित वचन है, परन्तु अब मैं कुछ कहता हूं, सावधानचित्तसे सुनिये, जो मनुष्य पाप, पुण्य, धर्म्म, अर्थ और काममें रत नहीं हैं, जो दोष रहित और सुवर्ण तथा लोष्टमें समदर्शी हैं; वे सुख, दुःख और अर्थ-सिद्धिसे छूट जाते हैं। जातिधार और जराविकारसे युक्त मनुष्य लोग बार बार सुख दुःख आदिके जरिये सावधान होकर मोक्षकी प्रशंसा किया करते हैं; परन्तु हम मोक्षका विषय कुछ भी नहीं जानते। भगवान् स्वयम्भूने कहा है, कि राग, द्वेष और स्नेहसे युक्त पुरुषोंकी मुक्ति नहीं होती; ममताहीन पण्डित लोग मुक्ति-लाभ करते हैं; इसलिये प्रिय और अप्रिय वस्तुओंमें आसक्त न होवे। मोक्षप्राप्तिका यही उत्तम उपाय है, कि मेरे इच्छानुसार प्रवृत्त होनेपर भी विधाता मुझे जिस विषयमें जिस तरह नियुक्त करता है, वैसा ही करता हूं; विधाता ही सब प्राणियोंको समस्त विषयोंमें नियुक्त करता है; इसलिये सबको जानना चाहिये, कि विधाता ही बलवान है। इसे जानना उचित है, कि कर्म्मसे अप्राप्य अर्थ नहीं मिलता; जो अवश्य होनहार है, वही प्राप्त होता हैं; धर्म्म, अर्थ, काम; इन त्रिवर्गोंसे हीन मनुष्यभी अर्थ लाभ करता है; इस लिये सब लोकोंके हितके लिये विधाताने इस विषयको अत्यन्त गोपनीय कर रखा है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर भीमसेन आदि युधिष्ठिरका वह सब युक्तियुक्त मनोहर वचन सुनके हर्षित हुए और हाथ जोड़के उस कुरुप्रवीर युधिष्ठिरको प्रणाम किया। हे राजन्! वे सब राजालोग उत्तम वर्णाक्षरोंसे विभूषित युधिष्ठिरके कही हुई कण्टक रहित कथा सुनके

अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगी। बीर्य्यवान् महात्मा धर्म्मपुत्रने भी उन लोगोंको उस विषयमें विश्वास दिखकर प्रशंसा की। अनन्तर वह सावधान चित्तवाले भीष्मदेवके समीप आके फिर परम धर्म्मका विषय पूछने लगे।

१६७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महाबुद्धिमान पितामह! आप कौरवोंको प्रतिदिन बढ़ाया करते है, इस लिये मैं और भी कुछ पूछता हूं उसे वर्णन करिये। कैसे मनुष्य प्रियदर्शन होते हैं? किसके सङ्ग परम प्रीति होती है। परिणाम और वर्त्तमान कालमें कौनसे लोग हितकारी हुआ करते हैं। आप मेरे समीप इन सब पुरुषोंका विषय वर्णन करिये। मुझे ऐसा मालूम होता है, कि बहुतसा धन सम्बन्धी और बान्धव सुहृदोंके समान नहीं होसकता। हितकारी वचन सुने और हितकर कार्य्योंको करे, ऐसा मित्र अत्यन्त दुर्लभ है। हे धार्म्मिक प्रवर! आप यह सब वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! किन पुरुषोंके साथ मित्रता करनी चाहिये और किनके साथ मित्रता करनी योग्य नहीं है, उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं सुनिये। हे नरनाथ! जो लोग लोभी, क्रूर, कर्म्मत्यागी, धूर्त्त, शठ नीचाशय, पापी, सबसे शङ्का करनेवाले, आलसी, दीर्घसूत्री, कोमलताहीन, लोकनिन्दित, गुरुस्त्री हरनेवाले, विपदमें पड़े हुए बान्धवोंको त्यागनेवाले, दुष्टात्मा, लज्जारहित, सबतरहसे पापदर्शी, नास्तिक, वेदनिन्दक, जनसमाजमें स्वेच्छाचारी तथा इन्द्रियोंके वशमें होनेवाले लोगोंसे द्वेष करनेवाले कार्य्यके समय अभाव-धान, पिशुन, नष्टबुद्धि, मत्सरी, पाप करनेवाले, अशुद्धचित्तवाले, नृशंस कितव, जो पुरुष सदा मित्रोंका अपकार और दूसरेके अर्थकी इच्छा करते हैं, जो नीचबुद्धि शक्तिके अनुसार दान करनेपर भी प्रसन्न नहीं होते जो पुरुष सदा मित्रोंके विषयमें असन्तोष प्रकाशित करते हैं; जो चञ्चल चित्तवाला मनुष्य बिना कारणके ही क्रोध और अकस्मात विरोध किया करता है; जो पापी हितैषी मित्रोंको शीघ्र परित्याग करता, जो मित्रद्रोही मूढ़ पुरुष थोड़ी बुराई अथवा अज्ञानके कारण कोई कार्य्य करके उसही समय मित्रोंकी उपासना किया करता है; जो पुरुष मित्रमुख शत्रु है, जो विपरीत-दृष्टि अथवा कुटिलदर्शी है, जो हितमें रत मनुष्यको परित्याग करता है, सुरापीनेवाला शत्रुता करनेवाला, क्रुद्ध, दया रहित, दूसरेसे डाह करनेवाला मित्रद्रोही, प्राणिहिंसामें रत, कृतघ्न, छिद्र खोजनेवाला और जो पुरुष जनस-माजमें अधम रूपसे विख्यात हैं, उनके साथ कभी मित्रता करनी उचित नहीं है।

अब जिसके साथ मित्रता करनी उचित है, वह मुझसे सुनिये। जो लोग सत्कुलमें उत्पन्न हुए वचन युक्त, ज्ञान-विज्ञानके जाननेवाले, रूपवान, गुणवान्, अलुब्ध, परिश्रमी, उत्तम मित्र, कृतज्ञ, सर्व्वज्ञ, लोभहीन, सदा कसरत करनेवाले, वंशधर, धुरन्धर, दोषरहित और जनसमाजमें विख्यात हैं वे सब मनुष्य राजा-ओंके ग्राह्य हुआ करते हैं; जो लोग शक्तिके अनुसार सदाचारमें रत होकर सन्तुष्ट होते हैं, बिना कारणके क्रोध नहीं करते, वे सब अर्थ कोविद लोग मनही मन विरक्त होनेपर भी दूषित नहीं होते; वे स्वयं कष्ट सहके भी मित्रका कार्य्य सिद्ध करते हैं; बहुतसे रङ्ग जैसे वस्त्रको विरक्त नहीं करते, वैसेही वे लोग मित्रोंसे विरक्त नहीं होते; क्रोधके वशमें होकर निर्द्धन और लोभ मोहके कारण स्त्रियोंको दुःखित नहीं करते; वे लोग प्रसन्न हृदय, विश्वासी, धर्म्म करनेवाले सुवर्ण और लोष्ट्रमें समदर्शी और सुहृदोंके विषयमें दृढ़-

बुद्धि हुआ करते हैं, जो मनुष्य शास्त्रज्ञानका अभिमान और निज विभूषण त्यागके प्रजाके सङ्ग सदा स्वामीके कार्य्यमें तत्पर होते हैं, वैसे श्रेष्ठ पुरुषोंके साथ जो राजा मित्रता करता है, उसका राज्य चन्द्रमाकी चन्द्रिका समान बढ़ता है, सदा शास्त्रमें रत, क्रोध जीतनेवाले युद्धमें पराक्रमी सत्‌वंशमें उत्पन्न, शीलयुक्त, गुणवान शूर पुरुषोंके सङ्ग मित्रता करनी उचित है। हे पापरहित महाराज! पहिले मैंने जिन लोगोंको दोषयुक्त कहा, कृतघ्न और मित्रघाती पुरुष उन सबसे भी अधम हैं; यह निश्चय जान रखो, कि दुराचारियोंको सब लोगोंको परित्याग करना योग्य है।

युधिष्ठिर बोले, आपने जो मित्रद्रोही और कृतघ्नका विषय कहा, मैं उसका पूरा इतिहास विस्तारके सहित सुननेकी इच्छा करता हूं; इससे मेरे समीप उसे वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, हे नरनाथ! उत्तर दिशामें म्लेच्छ-देशके बीच जो घटना हुई थी; मैं प्रसन्न होकर तुम्हारे निकट वह प्राचीन इतिहास वर्णन करता हूं सुनो। मध्यदेशीय गौतम नाम किसी ब्राह्मणने वेदकर्म्म रहित एक गांव देख कर भीख मांगनेकी इच्छासे उसमें प्रवेश किया वहां सब वर्णोंके विषयको जाननेवाला ब्रह्म निष्ठ, सत्यसन्ध, दानमें रत एक धनवान डकैत वास करता था। ब्राह्मणने उसके स्थानमें पर्ष-चक्रे रहनेके लिये घर और वार्षिक भिक्षा मांगी। डाकूने उस ब्राह्मणके योग्य नया वस्त्र और एक पतिहीन युवा स्त्री दान की। हे राजन्! उस समय ब्राह्मण डाकूके समीप वह सब पाके प्रसन्न-चित्त होकर उस स्थानमें स्त्रीके सहित परम सुखसे समय बिताने और उसके कुटुम्बको सहायता करने लगा; उसने उस समृद्धियुक्त डकैतके स्थानमें कई वर्ष तक वास किया; क्रमसे बाण वेधनेमें वह अत्यन्त यत्नवान हुआ। हे राजन्! वह डाकुओंकी तरह सदा बनचारी हंसोंको मारने लगा। गौतम धीरे धीरे हिंसायुक्त, दयाहीन और सदा प्राणियोंके वधमें रत रहनेसे दस्युओंके सहवासके कारण उनके समान होगया। उस समय उसी भांति अनेक पक्षियोंको मारते और डकैतके घरमें वास करते हुए उसको कई महीने व्यतीत हुआ। अनन्तर जटाचीर मृगछाल धारण करनेवाले, स्वाध्यायमें रत, पवित्र, विनय युक्त, मिताहारी, ब्रह्मनिष्ठ और वेदपारग दूसरे एक ब्राह्मणने उस स्थानमें आगमन किया। वह ब्रह्मचारी गौतमके स्वदेशीय और उसके अत्यन्त प्यारे तथा सखा थे; गौतम डाकुओंके जिस गांवमें वास करता था, वह भी उस ही जगह उपस्थित हुए। वह शूद्रका अन्न नहीं लेते थे, इस ही कारण डाकुओंसे परिपूरित उस गांवमें ब्राह्मणका घर खोजते हुए घूमने लगे। अनन्तर उस विप्रने गौतमके गृहमें प्रवेश किया गौतम भी उस समय वहां उपस्थित हुआ; इससे परस्पर भेंट हुई। हे धर्मराज! नये ब्राह्मणने गौतमको कन्धेपर हंसका भार और हाथमें धनुष-बाण लिये रुधिर पूरित शरीरसे राक्षसकी तरह घरके दर्वाजेपर आया हुआ देखकर पहिलेकी पहचानके कारण उसे चीन्हकर यह वचन कहा, कि तुम वंशके धुरन्धर विप्र होके मोहके वशमें पड़के यह कौनसा कार्य्य कर रहे हो; मध्यदेशके विख्यात् ब्राह्मण होके किस कारण दस्यु भावको प्राप्त हुए हो; तुम अपने वेदपारग पूर्व्व ज्ञाति समूहका स्मरण करो, तुम उन्होंके वंशमें जन्म लेके ऐसे कुलाङ्गार हुए हो। हे द्विज! तुम स्वयं अपनेको जानके और सत्यशील, अध्ययन दम तथा दयाको स्मरण करके इस निवास स्थानको छोड़ो। हे राजन्! अनन्तर गौतमने उस हितैषी मित्रका ऐसा वचन सुनके और उनकी बातोंको विशेषरूपसे निश्चय करके आर्त्त पुरुषकी तरह उत्तर दिया कि, हे द्विजसत्तम!

मैं धनहीन और वेदज्ञानसे रहित हूं ; इसही कारण धन संग्रह करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं तुम ऐसाही समझो। हे विप्रवर! आज मैं आपको देखके कृतार्थ हुआ, आजकी रात आप इसही स्थानमें वास करिये ; कलह हम दोनों साथही चलेंगे। दयालु ब्राह्मणने वहां पर किसी वस्तुको स्पर्श न करके गौतमके वचनके अनुसार उस रातको वहांपर ही वास किया। वह भूखे थे, इससे गौतमने उन्हें भोजन करानेके लिये बार बार यत्न किया, परन्तु भोजन करनेमें उनकी रुचि न हुई।

१६८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! रात बीतने पर भोरके समय उस ब्राह्मणके जानेके अनन्तर गौतमने घरसे निकलके समुद्रकी ओर गमन किया। चलते चलते रास्तेमें समुद्रकी ओर जानेवाले बनियोंको देखा, फिर वह उन लोगोंके साथ समुद्रकी ओर जाने लगा। हे राजन्! किसी पर्व्वतकी कन्दरामें स्थित मतवाले हाथियोंके जरिये वह बनियोंका समूह अधिकांश नष्ट हुआ। ब्राह्मण उस समय किसी तरह विपदसे छूटके भयसे तथा जीवनकी इच्छा करके उत्तर दिशाकी ओर दौड़ा। वह अर्थसे भ्रष्ट और उक्त स्थानसे च्युत होकर अकेलाही कादरकी तरह बनमें घूमने लगा। अनन्तर वह समुद्रकी ओर जानेका उत्तम मार्ग न पाकर एक रमणीय बनमें उपस्थित हुआ। नन्दनबनके समान यक्ष किन्नरोंसे सेवित वह बन सब ऋतुओंमें फलसेयुक्त फूला हुआ आमके बनसे शोभित और शाल, ताल, तमाल, कालागुरु और उत्तम चन्दनके वृक्षोंसे अलंकृत था। उस समय वहां सुन्दर और सुगन्धियुक्त पहाड़की शिखरके सब दिशाओंमें भारुण्डनाम विख्यात् मनुष्यके रूप समान पक्षियोंके समूह और पहाड़से समुद्र तक जानेवाले भूलिङ्ग शकुन आदि पक्षी क्रीड़ा कर रहे थे। गौतम उन सब पक्षियोंके मनोहर शब्दोंको सुनते हुए गमन करने लगा। हे महाराज! अनन्तर उसने अत्यन्त रमणीय सिकताचित स्वर्गके समान सुखदायक किसी विचित्र समतल स्थानमें श्रीसंयुक्त मण्डलाकार एक वृहत् बटवृक्ष देखा। उसके अनुरूप सब शाखा मानो छत्रके समान हुई थीं, उसके मूल स्थलमें चन्दन-जल छिड़का हुआ था। गौतम उस समय पितामहकी सभा समान, दिव्य फूलोंसे शोभित, श्रीयुक्त, अत्यन्त उत्तम मनोहर वृक्षका स्थान देखकर परम प्रसन्न हुआ ; वह उस सुरपुर समान फूले हुए वृक्षोंसे परिपूरित पवित्र स्थानको पाके हर्षपूर्व्वक वहां बैठ गया।

हे कुन्तीपुत्र महाराज! गौतमके वहां बैठने पर सुख स्पर्शयुक्त शुभवायु उसके सब अंगोंको प्रफुल्लित करते हुए पुष्प समूहोंको स्पर्श करके बहने लगा। ब्राह्मण पवित्र वायुके लगनेसे श्रम-रहित होके परम सुखसे सोगया, सूर्य्यने भी अस्ताचलपर गमन किया। अनन्तर सूर्य्यके अस्त तथा सन्ध्याकालके उपस्थित होने पर नाड़ीजङ्घ नामसे विख्यात् पितामहके प्रियमित्र कश्यप-पुत्र महाबुद्धिमान पक्षीप्रवर बकराज ब्रह्मलोकसे निज स्थानमें आये। देव-समान प्रभायुक्त देवकन्यापुत्र श्रीमान् विद्वान् निरुपम बकराज पृथ्वीपर धर्म्मराज नामसे भी विख्यात थे ; उनका सब शरीर सूर्य्यके समान सफेद भूषणोंसे विभूषित था, वह देवगर्भसे उत्पन्न हुए पक्षिराज उस समय सुन्दरतासे प्रकाशित थे, गौतम उस पक्षिश्रेष्ठको आया हुआ देखके विस्मययुक्त हुआ, वह भूख और प्याससे अत्यन्त व्याकुल था, इस कारण मारनेकी इच्छासे उसे देखने लगा।

राजधर्म्मा बोले, हे विप्र! आपका मङ्गल तो है? भाग्यसे ही आप मेरे स्थानपर उपस्थित

हुए हैं। सूर्य अस्त और सन्ध्याका समय उप-स्थित हुआ, आप अनिन्दित प्रिय अतिथि कृपापूर्व्वक मेरे स्थान आये हैं, इसलिये आज इसी स्थानपर विधिपूर्व्वक सत्कृत होकर निवास करिये, कलह सबेरे निज स्थानपर जाइयेगा।

१६८ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज ! उस समय गौतम उस मधुर वचनको सुनकर विस्मित और कौतू-हल युक्त होकर राजधर्म्माको देखने लगा।

राजधर्म्मा बोले, हे द्विजवर ! मैं कश्यपका पुत्र हूं, दाचायणी मेरी माता है; आप गुण-वान अतिथि हैं, आपका मङ्गल तो है ?

भीष्म बोले, अनन्तर कश्यपपुत्र राजधर्म्माने उस ब्राह्मणका विधिपूर्व्वक सत्कार करके शान्त पुष्पमय दिव्य आसन प्रदान किया, भागीरथी गङ्गामें जो सब मछलियां विचरती हैं उन्हें और दूसरी पीवर मछलियां तथा अत्यन्त जलती हुई अग्नि गौतम अतिथिके लिये ला दी। ब्राह्मण भोजन करके प्रसन्न हुआ, महातपस्वी बकराज उसकी थकावट दूर होनेके लिये अपने दोनों पङ्खोंसे उसे वायु करने लगे, अनन्तर वह परिश्रम रहित होकर बैठा, तब राजधर्म्माने उसका नाम और गोत्र पूछा। वह "मै गौतम हूं"—इतना ही कहके और कुछ न बोला, फिर पक्षिराजने उसे दिव्य फूलोंसे सुवासित सुगन्धमय पत्तोंसे युक्त दिव्य शय्या दी; वह उसपर परम सुखसे सोया। अनन्तर जब गौतम शय्यासे उठा, तब कश्यपपुत्र राजधर्म्माने उसके आगमनका प्रयोजन पूछा। हे भारत ! गौतम उनसे बोला, हे महाबुद्धिमान ! मैं अत्यन्त दरिद्र हूं, इसलिये धनसञ्चय करनेके वास्ते समुद्रकी ओर जानेकी इच्छाकी है।

राजधर्म्मा प्रसन्न होकर उससे बोले, हे द्विजवर ! आप आतुर न होइये कृतकार्य्य होकर धन-सञ्चयके सहित घर जाइये। वृह-स्पतिके मतके अनुसार परम्पर, दैव, काम्य और मैत्र भेदसे अर्थ सिद्ध चार प्रकारकी है; इस समय मैं तुम्हारा मित्र हुआ हूं और तुम्हारे ऊपर मेरी सुहृदता उत्पन्न हुई है; इससे तुम जिस तरह धनवान् होगे, मैं उसमें यत्नवान् होऊंगा। अनन्तर पक्षिराजने भोरके समय गौतमको सुखसे बैठा हुआ देखके यह वचन बोले, हे प्रियदर्शन ! तुम इस मार्गसे जाइये, अवश्य ही कृतकार्य्य होगे; यहांसे तीन योजन जाने पर विरूपाक्ष नामसे विख्यात महाबली पराक्रमी मेरे मित्र एक राक्षस राजको देखोगे, हे विप्र ! तुम मेरे वचनके अनु-सार उनके समीप जाओ, वह तुम्हें निःसन्देह सब अभिलषित वस्तु दान करेंगे।

हे धर्म्मराज ! गौतम पक्षिराजका ऐसा वचन सुन, इच्छानुसार अमृत समान फलोंको खाकर सावधान होके चलने लगा। महाराज! वह उस मार्गमें अगर, चन्दन और भोजपत्रोंसे सुन्दर वनोंसे होता हुआ शीघ्रताके सहित जाने लगा। अनन्तर वह प्राकार-तोरण सम्पन्न पहाड़की दीवार और विप्रयुक्त शैलयन्त्रोंसे परिपूरित मेरुव्रज नाम नगरमें पहुंचा। हे राजन् ! वह वहां पहुंचके बुद्धिमान् राक्षस-राजके प्रिय मित्रके भेजनेसे आया हूं, कहके प्रिय अतिथि रूपसे मालूम हुआ। हे युधिष्ठिर ! राक्षसराजने अपने दूतोंसे कहा, कि नगरके दर्वाजेसे गौतमको शीघ्र ले आओ; शीघ्रता करनेवाले राजदूतोंने स्वामीकी आज्ञा पाते ही नगरके द्वारपर उपस्थित होकर गौतमका नाम लेकर उसे बुलाया। हे महाराज ! वे सब दूत उस समय ब्राह्मणसे बोले, तुम शीघ्रता करो, जल्दी चलो; राजा तुम्हें देखनेकी इच्छा करता है; विरूपाक्ष नाम राक्षसराज तुम्हें देखनेके लिये आतुर होरहे हैं; इसलिये जल्दी आओ। अनन्तर गौतम ब्राह्मण भयभीत तथा

उस परमसमृद्धिको देखकर अत्यन्त विस्मित होके राक्षसराजके दर्शनको इच्छा करता हुआ, दूतोंके सङ्ग शीघ्रही राजमन्दिरमें उपस्थित हुआ।

१७० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर गौतम राक्षसराजको विदित होकर उसके रमणीय मन्दिरमें प्रवेश करते ही उससे सत्कार प्राप्त करके सुन्दर आसनपर बैठा राजाने उसका गोत्र, आचार, वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य्यका विषय पूछा; उसने केवल गोत्र बताया और कुछ भी नहीं कहा। राक्षसराजने उस ब्रह्मतेज रहित स्वाध्याय हीन गोत्र मात्रके जाननेवाले ब्राह्मणका निवास पूछा। राक्षस बोला, हे विप्र! तुम्हारा निवास कहां है, तुमने किस गोत्रमें विवाह किया है, डरो मत, सत्य कहो; निशङ्क चित्तसे विश्वास करो।

गौतम बोला, मैंने मध्यदेशमें जन्म लिया इस समय डाकूके घर वास करता हूं; एक विधवा शूद्रासे विवाह किया है, यह तुम्हारे निकट यथार्थ कहा।

भीष्म बोले, अनन्तर राक्षसराजने विमर्ष-युक्त होके मनही मन चिन्ता की, कि किस तरह यह कार्य्य सिद्ध होगा, किस प्रकार मेरा सुकृत सञ्चय हो सकेगा। यह केवल जातिका ब्राह्मण है, महात्मा बकराजका मित्र है, इसीसे उन्होंने इसे मेरे पास भेजा है; वह सदा मेरे आश्रित, भ्राता, बान्धव और हृदयसे सखा हैं; इसलिये मैं उनका प्रिय कार्य्य सिद्ध करूंगा। आज कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन मैं सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन कराऊंगा, यह भी उनके साथ भोजन करेगा; तब इसे धन दान करूंगा। आज पुण्यतिथि है, यह भी अतिथि होकर आया है; दानके निमित्त संकल्प हुआ धन भी उपस्थित है; फिर अब कुछ विचार कर-नेकी आवश्यकता नहीं है। राक्षसराजके ऐसा विचार करनेके अनन्तर पाटम्बरधारी स्नात और चन्दन आदिसे अलंकृत सहस्र विद्वान् विप्र उसके गृहपर उपस्थित हुए। हे महा-राज! विरूपाक्षने आये हुए उन ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक यथायोग्य सत्कार किया; उनकी आज्ञाके अनुसार सेवकोंने भूमिपर कुशके आसन बिछा दिये। ब्राह्मणलोग राक्षसराजसे सत्कार पाके आसनोंपर बैठ गये, तब राजाने तिल, दाभ और जलसे उनकी पूजा की। महा-राज! विश्वदेव पितर और अग्निमूर्त्तिस्वरूप सदाचारी ब्राह्मणलोग चन्दन चर्चित फलमा-लासे युक्त और भलीभांति पूजित होकर सुधा-कर समूहकी तरह शोभित हुए। अनन्तर राक्ष-सराजने ब्राह्मणोंको घृत और मधु युक्त उत्तम अन्नोंसे भरे हुए हीराजटित निर्म्मल सुवर्ण पात्र प्रदान किया। हर वर्ष आषाढ़ी और माघीपूर्णमासीको बहुतेरे ब्राह्मण उसके स्थानमें इच्छानुसार उत्तम भोजन पाते थे; मैंने ऐसा सुना है, कि विशेषकरके शरत् ऋतुके बीतनेपर कार्तिककी पूर्णमासीको राक्षसराज ब्राह्मणोंको इसी तरह भोजन कराके बहुतसे रत्न दान किया करता था। जो हो, ब्राह्म-णोंके भोजन कर चुकने पर उन्हें दक्षिणा देनेके निमित्त महाबलवान् विरूपाक्षने सोने, चांदी, मणि, मोती, महामूल्यवान् हीरे, प्रवाल और राङ्कव आदि रत्नोंके ढेर मंगाके कहा, हे द्विजसत्तमो! आपलोग इच्छा और उत्साहके अनुसार इन रत्नोंको लेके जिसने जिसमें भोजन किया है; वह उस ही पात्रको लेकर अपने अपने घर जावें। महात्मा राक्षसराजके ऐसा कहनेपर पवित्र वस्त्रवाले माननीय ब्राह्मणोंने इच्छानुसार उन सब रत्नोंको ग्रहण किया और पवित्र रत्नोंसे पूजित होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। हे राजन्! अनन्तर राक्षसराजने अनेक देशोंसे आये हुए राक्षसोंको निषेध करके उन ब्राह्म-

गोंसे फिर कहा, हे ब्राह्मणलोगो! आज एक दिनके लिये इस स्थानमें आपलोगोंको राक्षसोंसे कुछ भय नहीं है; इसलिये आपलोग आनन्दित होकर शीघ्रही अपने अभिलषित देशोंमें जाइये। अनन्तर ब्राह्मणलोग निज निज दिशाकी ओर दौड़े; गौतम भी शीघ्रताके सहित सुवर्णभार उठाके अत्यन्त कष्टसे ढोता हुआ पूर्व्वोक्त बटवृक्षके निकट उपस्थित हुआ और परिश्रमसे अत्यन्त थककर तथा भूखा होके वहां बैठ गया। हे धर्म्मराज! अनन्तर मित्रवत्सल पक्षिश्रेष्ठ राजधर्म्माने गौतमको स्वागत प्रश्नसे अभिनन्दित करते हुए उसके समीप गये और अपने दोनों पङ्खोंको डुलाकर उसकी थकावट दूर करने लगे; फिर बुद्धिमान् पक्षीने उसका यथा उचित सत्कार करके भोजनकी सामग्री ला दी। गौतम उस समय परिश्रम रहित होके भोजन करके सोचने लगा, कि "मैंने लोभ और मोहके वशमें होकर बहुतसा सुवर्ण भार ग्रहण किया है, मुझे बहुत दूर जाना पड़ेगा; रस्तेमें प्राणधारणके लिये भोजनकी कुछ भी सामग्री नहीं है; इससे किस तरह प्राण धारण करूंगा।" हे पुरुषप्रवर! अनन्तर कृतघ्न ब्राह्मणने मार्गमें जानेके समय खाने योग्य कुछ भी वस्तु सङ्गमें न देखकर मनही मन ऐसाही सोचा, कि यह मांसराशि बकराज मेरे बगलमें स्थित है, इसेही मारके ग्रहण करके शीघ्रताके सहित वेग पूर्व्वक गमन करूंगा।

१७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, पक्षिराज बटवृक्षके निकट ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त वायुकी सहायतासे युक्त महा अर्च्चिमान् अग्नि स्थापित की थी उन्होंने विश्वास पूर्व्वक उसके निकटमें ही शयन किया। दुष्टात्मा कृतघ्न ब्राह्मणने उन्हें मारनेकी इच्छासे उनके अगाड़ी सोया। अनन्तर उस दुष्टात्माने उस विश्वासी बकराजको जलते हुए अङ्गारसे मार डाला; मारके हर्षित हुआ, पाप अथवा दोष नहीं देखा। अनन्तर उसने उस मृत पक्षीको पङ्खहीन तथा लोम रहित करके आगमें बीच पकाया। पकानेके बाद उस पक्षिमांस और सुवर्णको लेके अत्यन्त जलदी वेगपूर्व्वक जाने लगा।

दूसरे दिन राक्षसराज विरूपाक्षने निज पुत्रको सम्बोधन करके कहा, हे पुत्र! आज मैंने खगवर राजधर्म्माको नहीं देखा वह प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्माकी वन्दना करने जाया करते हैं; परन्तु मुझे बिना देखे कभी घर नहीं जाते थे। दो सन्ध्या और दो रात्रि बीत गई, वह मेरे स्थानपर नहीं आये; इसलिये मेरा मन प्रसन्न नहीं होता है; वह सुहृत् कहां हैं, उनकी खोज करो। वेदज्ञानसे हीन ब्रह्मवर्च्चस रहित, हिंसामें रत वह अधम ब्राह्मण वहां गया है, वह उनका वध कर सकता है. मुझे ऐसीही शङ्का होरही है; मैंने इङ्गितसे जान लिया है, कि गौतम अत्यन्त दुराचारी, नीचबुद्धि, निर्द्दयी, दारुण आकृति, और दस्युओंकी तरह अधम प्रकृतिवाला है. वह उस स्थानपर गया है; इसही लिये मेरा मन व्याकुल होरहा है। हे पुत्र! इससे तुम शीघ्रही यहांसे राजधर्म्माके स्थानपर जाके मालूम करो, कि वे शुद्ध स्वभाववाले सुहृद जीवित हैं, वा नहीं। बुद्धिशक्तिसे युक्त राक्षसराजका पुत्र पिताका वचन सुनकर शीघ्रताके सहित राक्षसोंको सङ्ग लेकर बट वृक्षके निकट गया और जाके वहांपर राजधर्म्माकी हड्डी देखी। उसे देखके वह अत्यन्त दुःखित होकर रोता हुआ शक्तिके अनुसार शीघ्रताके सहित गौतमको पकड़नेके लिये दौड़ा। अनन्तर राक्षसोंने बहुत दूर जाके पङ्ख, हड्डी और चरण रहित राजधर्म्माके शरीरके सहित गौतमको पकड़ा; उसे पकड़के उन

लोगोंने शीघ्रताके सहित मेरुव्रज नगरमें आके राजाके समीप राजधर्म्माका मृत शरीर और पाप कृतघ्न गौतमको उपस्थित किया। राजा-पुरोहित तथा मन्त्रियोंके सहित उसे देखकर रोने लगे, राजभवनमें बहुतही आर्त्तनाद उत्पन्न हुआ; नगरके बीच बालक स्त्री सबका चित्त व्याकुल होगया। अनन्तर राक्षसराजने पुत्रको आज्ञा दी, कि "इस पापीका शीघ्र वध करो"— और ये सब राक्षस लोग इच्छानुसार इसका मांस भक्षण करके सन्तुष्ट होवें। हे राक्षस-लोगो! मेरे विचारमें ऐसा आता है, कि तुम-लोग इसी समय इस पापाचारी पापकर्म्म कर-नेवाले पापमें रत पापात्माका वध करो। घोर पराक्रमी राक्षसोंने राक्षसेन्द्रका ऐसा वचन सुनके उस पापीको भक्षण करनेकी इच्छा नहीं की। महाराज! उन सब राक्षसोंने शिर नीचा करके राक्षसराजसे कहा। इस अधम मनु-ष्यको भक्षण करनेके लिये इसी समय दस्यु-ओंके हाथमें सौंपिये, इसका पापमय शरीर भक्षण करनेके वास्ते हम लोगोंको आज्ञा देना आपको उचित नहीं है। राक्षसराजने निशा-चरोंके वचनमें सम्मत होके उनसे कहा, हे राक्षसलोगो! इस कृतघ्नको इसी समय दस्यु-ओंके हाथमें सौंपो। शूल, पट्टिशधारी राक्ष-सोंने स्वामीकी आज्ञा पातेही उस पापीको टुकड़े टुकड़े करके उसही समय दस्युओंके हवाले किया दस्युओंने भी उस पापाचारीको भक्षण करनेकी इच्छा नहीं की। हे धर्म्मराज! मांसभक्षी नृशंसलोग भी कृतघ्नोंको भक्षण नहीं करते। हे राजन्! ब्राह्मणघाती, सुरा पीनेवाले चोर और व्रतघ्न पुरुषोंकी बल्कि निष्कृति होती है; परन्तु कृतघ्नलोगोंकी किसी प्रकार निष्कृति नहीं होती। जो नराधम मित्रद्रोही, कृतघ्न और नृशंस हैं; क्रव्याद तथा दूसरे मांस-भक्षी कीड़े भी उन्हें भक्षण नहीं करते।

१७१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर प्रतापशाली राक्षस-राज रत्न, गन्ध और अनेक वस्त्रोंसे अलंकृत चिता तैयार कराके बकराजको जलाकर विधि पूर्व्वक उनका प्रेत कर्म्म करने लगे। उस समय दक्षनन्दिनी पयस्विनी शोभना सुरभीदेवी उसके ऊपरके विभागमें प्रकट हुईं; उनके मुखसे चीर-मिश्रित फेन निकलके राजधर्म्माकी चितामें गिरा। अनन्तर बकराज उसहीके जरिये फिर जीवित होके उठकर विरूपाक्षके निकट उपस्थित हुए। उसही समय देवराज विरूपाक्षके नगरमें आके उससे बोले, हे राक्ष-सराज! तुमने प्रारब्धसेही राजधर्म्माको फिर जीवित किया। पहिले समयमें प्रजापतिने राज धर्म्माको जो शाप दिया था, देवेन्द्रने वह प्राचीन वृत्तान्त विरूपाक्षको सुनाया; उन्होंने कहा,— हे राजन्! बकराज प्रजापतिके निकट नहीं गये, इसीसे उन्होंने इनके ऊपर क्रुद्ध होके यह वचन कहा था, कि "दुष्ट स्वभाववाला बकाधम जब मेरी सभामें नहीं आया, तब शीघ्रही वह नष्ट होगा"; इसलिये ब्रह्माके वचन अनुसार ये गौतमके जरिये मरकर उन्हींके अमृत सेचनसे फिर जीवित हुए हैं।

अनन्तर राजधर्म्मा बकने पुरन्दरको प्रणाम करके कहा। हे नरेश्वर! यदि आपने कृपा की है, तो मेरे प्रियमित्र गौतमको फिर जीवित करिये; पुरुषप्रवर इन्द्रने उनके वचनके अनुसार अमृत छिड़कके गौतमको फिर जिला दिया। हे धर्म्मराज! बकराजने सुवर्णपात्र आदिसे युक्त उस पापाचारी सुहृदको पाकर परम प्रीतिके सहित आलिङ्गन करके धन रत्नके सहित उसे बिदा कर दिया; आप भी निज स्थानमें आके पहिलेकी भांति प्रजापतिकी सभामें गमन किया। ब्रह्माने उस महात्माको अतिथि सत्का-रसे सम्मानित किया। गौतम भी फिर डाकूके स्थानपर पहुंचके शूद्राभार्य्यासे बहुतसे पापी पुत्र उत्पन्न किया। उस समय देवताओंने उसको

विषयमें महाशाप दिया था, कि यह पापाचारी कृतघ्न ब्राह्मण पुनर्भू पत्नीके गर्भसे बहुत समय-तक बहुतसे पुत्रोंको उत्पन्न करके महानरक-गामी होगा।

हे भारत! मुझसे नारद मुनिने पहिले यह सब वृत्तान्त कहा था, मैंने वह सब स्मरण करके तुम्हारे समीप यथार्थ रीतिसे यह महत् उपाख्यान् वर्णन किया। कृतघ्न पुरुषको यश, सुख और आश्रय स्थान कहां है। कृतघ्न अत्यन्त अश्रद्धेय है, कृतघ्न पुरुषका किसी तरह निस्तार नहीं होता। मनुष्यमात्रकोही मित्रद्रोह करना उचित नहीं; मित्रद्रोही मनुष्य महाघार अनन्त नरकमें गमन करता है। मित्रतायुक्त मनुष्यको सदा कृतज्ञ होना उचित है, मित्रोंसे समस्त वस्तु प्राप्त होती हैं; मित्रसे ही सम्मान मिलता है, मित्रोंसे सब भोग वस्तुयें भोगी जाती हैं, मित्रोंसे ही विपदसे छुटकारा मिलता है; बुद्धिमान पुरुष उत्तम सत्कारके जरिये मित्रकी पूजा करें। पापी, कुलाङ्गार निरपत्रप पापकर्म्ममें रत पुरुषोंमें अधम मित्रद्रोही कृतघ्न पुरुषोंको पण्डितलोग परित्याग करें। हे धार्म्मिकवर! यह मैंने तुम्हारे निकट पापाचारी मित्रद्रोही कृतघ्नका विषय वर्णन किया, फिर कहिये अब कौनसे विषयको सुननेकी अभिलाषा करते हो?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! उस समय महानुभाव भीष्मकी कही हुई इतनी कथा सुनके युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हुए थे।

१७३ अध्याय समाप्त।

मोक्षधर्म्म प्रकरण।

नारायण, पुरुषोंमें श्रेष्ठ नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके पश्चात् पुराण आदिकी कथा कहे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने राजधर्म्माश्रित परम पवित्र आपद्धर्म्म पूर्ण रीतिसे कहे; अब गृहस्थ आदि सब आश्रमवालोंके लिये जो श्रेष्ठ हो, उस धर्म्म विषयको वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! आश्रममात्रमें ही धर्म्म विहित है, उसमेंसे सत्यस्वरूप परमात्म विषयको सुनना, मनन, निदिध्यासनमय, तपस्याके ज्ञानरूप फल इस जीवनमेंही दीख पडते हैं; धर्म्मके द्वार अनेक तरहके हैं, इस लोकमें उनकी समस्त क्रिया कभी निष्फल नहीं होती। ज्ञानलाभ, उसके निमित्त चित्त-शुद्धि, स्वर्ग कामना और पुत्रोंको उत्पन्न करना आदि जिन जिन विषयोंको जो लोग निश्चय करते हैं, उसे ही वे कल्याणकारी समझा करते हैं; विषयान्तरोंमें उनकी प्रवृत्ति नहीं होती; जब असार तृण आदि तुच्छ वस्तुओंकी तरह असार रूपसे समझ पड़ता है, तभी इससे निःसन्देह विराग उत्पन्न हुआ करता है। हे युधिष्ठिर! अनेक दोषोंका आधार संसार जब इस प्रकार असार कहके निश्चित हुआ है, तब बुद्धिमान मनुष्योंको आत्ममोक्षके निमित्त यत्न करना उचित है।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धननाश अथवा पुत्र कलत्र वा पिताके परलोकगामी होनेपर जिस बुद्धिके जरिये शोक दूर किया जाता है, आप उसे मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, धन नष्ट होने तथा स्त्री, पुत्र और पिताके मरनेपर 'हाय! कैसा दुःख है!' ऐसी चिन्ता करते हुए शोक दूर करनेके लिये आत्मज्ञानके निमित्त शमगुण आदिकोंका अनुष्ठान करें। इस विषयमें पण्डित लोग इस प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। किसी ब्राह्मणने स्वेनजित् राजाके निकट सुहृदभावसे आके जो कहा था, उसे सुनो। कोई ब्राह्मण-पुत्र शोकसे दुःखित राजा स्वेनजित्‌को शोकसे विह्वल और व्याकुल देखकर बोला, हे राजन्! तुम क्यों मोहित होते हो। स्वयं शोचनीय होकर किस निमित्त दूसरेके लिये शोक प्रकाश

करते हो। जो लोग तुम्हारे लिये शोक किया करते हैं, वे भी शोकयुक्त होकर शोचनीय अवस्थाको प्राप्त होंगे। तुम, मैं और जो लोग तुम्हारी उपासना करते हैं; सबकोही जहांसे आये हैं, वहांही फिर जाना पड़ेगा।

स्येनजित् बोले, हे तपोधन ब्राह्मण! बुद्धि क्या है, तपस्या क्या है, समाधि किसे कहते हैं। ज्ञान क्या है और इन सबके प्रमाण शास्त्रके अनुसार सुननेहीसे क्या फल है? जिसे जानके भी आप शोकित नहीं होते हैं।

ब्राह्मण बोला, देव, तिर्य्यग् मनुष्य आदि उत्तम और मध्यम समस्त प्राणी निमित्तभूत कर्म्मोंके जरिये दुःखसे युक्त होरहे है, "मैं" यह प्रीतिगोचर आत्म ही मेरा नहीं है, अथवा समस्त पृथ्वीही मेरी है, यह जैसी मेरी है दूसरे कीभी वैसीही है, ऐसाही विचारनेसे मुझे कुछ दुःख नहीं होता; मैं इस ही बुद्धिसे हर्षित वा दुःखित नहीं होता। जैसे महासागरमें काठसे काठ आपसमें मिलके फिर जिस प्रकार पृथक् होते हैं, जीवोंका समागम भी वैसा ही है। पुत्र, पौत्र, स्वजन, बान्धव सबही इसी प्रकार हैं, इससे उन लोगोंके विषयमें प्रीति करनी उचित नहीं है; क्यों कि इनका अवश्यही विच्छेद होता है। जिसका रूप देखनेमें नहीं आता उस अगोचर चिन्मय पुरुषसे तुम्हारा पुत्र उत्पन्न हुआ था, फिर दृष्टि-मार्गसे अतीत होकर उसहीमें लीन हुआ है; वह तुम्हें नहीं जानता, तुम भी उसे नहीं जानते; तुम कौन हो, किसके लिये शोक करते हो? विषय वासनारूपी व्याधिसे दुःख प्रकट होता है, दुःख नाश होनेके लिये सुख उत्पन्न हुआ करता है, सुखसे भी दुःख प्रकट होता है; इससे दुःखही बार बार उत्पन्न होता है। सुखके अनन्तर दुःख और दुःखके बाद सुख उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये मनुष्योंके सुख दुःख चक्रकी तरह घूम रहे हैं। तुमने सुखके बाद दुःख पाया है, फिर सुख पाओगे। मनुष्य कभी सदा सुख दुःख भोग नहीं करता, अकेला शरीरही सुख दुःखका स्थान है। स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका शरीरही सुख और दुःखका आश्रय है; जीव जिस शरीरसे जो कर्म्म करता है, उसही शरीरके जरिये उसका फल भोगता है। जीवनका कारण सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीरके सहित उत्पन्न होती हैं, दोनों संसार यात्राके समय विविध रूपसे वर्त्तमान रहतीं और दोनोंही एकही समय नष्ट होती हैं। मनुष्यलोग अनेक तरहके स्नेहपाशके जरिये विषयमें फंसके जलमें स्थित बालूके पुलके समान अकृतार्थ रूपसे अवसन्न होते हैं। तिलको पेरनेवाले तेली लोग जैसे प्रीति पूर्व्वक तिलोंको चक्रमें पेरते है, वैसेही सब कोई अज्ञानसे उत्पन्न हुए क्लेश कदम्बसे आक्रान्त होकर सृष्टि चक्रमें पेरे जारहे हैं। मनुष्य, भार्य्या आदि परिवार समूहके भरण पोषणके वास्ते चोरी आदि अशुभ कर्म्म किया करता है; परन्तु इस लोक और परलोकमें अकेलाही उस दुष्कर्म्म जनित क्लेशको भोग करता है। मनुष्यमात्रही पुत्र, कलत्र आदि कुटुम्बोंमें आसक्त होकर कीचड़में फंसे हुए जीर्ण जङ्गली हाथीके समान शोक समूहमें डूबते रहते हैं। पुत्र नाश, वित्तनाश और स्वजन सम्बन्धियोंके विनाश होनेपर मनुष्योंको दावानलके समान महत् दुःख प्राप्त होता है। सुख दुःखकी उत्पत्ति और क्षय आदि सब दैवके वशमें है; प्रत्युपकारकी इच्छा न करके जो लोग उपकार करते हैं, वे मित्रपदके वाच्य होते हैं, मनुष्य चैसे सुहृदोंसे युक्त होवें, अथवा असुहृतही हों, शत्रुयुक्त हों अथवा मित्रवानही होवें, बुद्धिमान् हों, अथवा बुद्धिहीनही होवें, दैव वशसे ही सुख लाभ किया करते हैं। मित्रलोग सुख देनेमें समर्थ नहीं हो सकते, शत्रु भी दुःख नहीं दे सकते; बुद्धि रहनेसेही धन नहीं होता, धन होनेपर भी सुख नहीं

होसकता ; बुद्धिमत्ता धन प्राप्तिका कारण नहीं है मूर्खता भी असमृद्धिका कारण नहीं होती ; इससे प्राज्ञपुरुष ही लोक-निर्माण वृत्तान्तको जानते हैं ; दूसरे नहीं । क्या बुद्धिमान्, क्या दुर्बुद्धि, क्या कादर, क्या साहसी, क्या मूर्ख, क्या दीर्घदर्शी, क्या निर्बल और क्या बलवान, जो पुरुष भाग्यवान होता है, वही सुख भोग किया करता है । पत्र गोप्रतिपालक और तस्कर, इन सबके बीच जो पुरुष गऊका दूध पीता है, निश्चय है, कि गऊ उस हीकी है ! जनसमाजमें जो सब मूढ़ मनुष्य हैं, और जिन्होंने बुद्धि तत्वसे अतीत परब्रह्मको जाना है, वेही सब मनुष्य सुखलाभ किया करते हैं, इन दोनोंके मध्यमें रहनेवाले लोग तत्त्वज्ञ पुरुषोंमें अनुरक्त होते हैं, मध्यप्रकारके मनुष्योंमें रत नहीं होते, वे लोग आत्मतत्व ज्ञान लाभकोही सुख और एकबारगी मूढ़ता और अत्यन्त बुद्धिमत्ताको मध्यमवर्त्तिताको दुःख कहा करते हैं । जिन्होंने सुख दुःखसे हीन और मत्सरतारहित होके बुद्धि सुख लाभ किया है, अर्थ और अनर्थ उन्हें कदापि दुःखित नहीं कर सकते और जो लोग ज्ञानलाभ करनेमें समर्थ नहीं हुए परन्तु मूढ़ताको परित्याग किया है, वह अत्यन्त आनन्दित और दुःखित होत हैं । सुरपुरके देवताओंको तरह मूढ़लोग महागर्व्व और ऐश्वर्य्यसे अचेत होकर सदा आनन्दित हुआ करते है । दुःखके बीतने पर सुख, होता है आलस्यही दुःखको और दक्षता ही सुखका कारण होती है ; सम्पत्ति लक्ष्मीके सहित इसी तरह आलसहीन पुरुषको अवलम्बन करती हैं ; आलसीके निकट कभी नहीं आतीं । सुख, दुःख, प्रिय वा अप्रिय जिस समय जो उपस्थित होवे, सावधान चित्तसे उसकी उपासना करे । पुत्र कलत्रके वियोग निबन्धनसे सहस्रों शोकके विषय और अनिष्ट घटना आदि सैकड़ों भयके विषय प्रति दिन मूढ़ मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं, पण्डितोंको वे कभी स्पर्श नहीं करते । बुद्धिमान्, स्वाभाविक बुद्धि शक्तिसे युक्त, शास्त्रोंके अभ्यासमें रत, असूया रहित, दन्त और जितेन्द्रिय पुरुषको शोक कभी स्पर्श नहीं कर सकता । बुद्धिमान् मनुष्य इसी प्रकार ज्ञानको अवलम्बन करके विचारते हैं, जो प्राणियोंके उदय और लयके विषयको जानते हैं, शोक उन्हें स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता ; शोक , ताप, दुःख वा भय जिसके कारण हुआ करता है, क्रमसे कम उसका एक अंग परित्याग करना उचित है । जो कुछ ममताके जरिये कल्पित होता है वही दुःखका कारण हुआ करता है । विषयोंके बीच जो कुछ परित्याग किया जाता है, वही सुखका कारण हो जाता है ; कामानुयाई मनुष्य कामके सहितही नष्ट होता है । लोकमें विषय सुख और दिव्य महत् सुख कहके जो विख्यात् हैं, वे वासना क्षयजनित सुखके सोलहवं अंशके समान नहीं हैं । पूर्व्वदेहके किये हुए शुभ वा अशुभकर्म्म जिस प्रकारसे किये गये हैं, तैसेही वे बुद्धिमान् मूढ़ और शूर पुरुषोंको अवलम्बन करते हैं । इसी तरह प्रिय और अप्रिय सुख तथा दुःख प्राणियोंमें घूमा करता है । गुणवान मनुष्य ऐसीही बुद्धि अवलम्बन करके सुखमें निवास करते हैं ; इसलिये समस्त कामोंका निन्दा करते हुए क्रोधको पीछे करते हैं । पण्डितलोग कहते हैं, यह क्रोध देहधारियोंके शरीरमें कामरूपसे स्थित मृत्युस्वरूपसे हृदयके बीच दृढ़भावसे उत्पन्न होता है । कछुवेके निज अङ्ग समेटनेकी तरह यह आत्मा जब सब तरहके कामोंको संहार करता है, तब आपही आत्मज्योति दीख पड़ती हैं, जबतक जो वस्तु हमारी कहके मानी जाती हैं, उस समय तक वे सब दुःखके कारण हुआ करती हैं । यह आत्मा जब किसीसे डरती नहीं और इससे कोई भय नहीं करते, यह जब इच्छा और

हेपसे रहित होता है, तब ब्रह्मस्वरूप लाभ करता है। सत्य, मिथ्या, शोक, हर्ष, भय, अभय, प्रिय और अप्रिय परित्याग करनेसे ही चित्त शान्त होगा। जब कर्म्म, मन और वचनसे सब प्राणियोंके विषयमें कुछ असत् अभिप्राय वा पाप नहीं किया जाता, तभी ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति हुआ करती है। नीच बुद्धि मनुष्य जिसे किसी तरह परित्याग नहीं कर सकते, मनुष्योंके जीर्ण होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होती, जो प्राणान्तक रोगरूपसे वर्णित हुई है, उस तृष्णाको जो मनुष्य परित्याग कर सकते हैं, वेही सुखी होते हैं।

हे राजन्! इस विषयमें पिङ्गलाको कही हुई सब गाथा सुनीजाती है; दुःखके समय उसने जिस प्रकार सनातनधर्म्म लाभ किया था उसे सुनो। पिङ्गला नामी कोई बारवनिता अभिसार स्थानमें निज प्राणकान्तके वियोगसे कातरसे होके बोली थी, मैंने उन्मत्त होके निर्व्विकार कान्तके सहित बहुत समयतक वास किया; परन्तु कालके मेरी अन्तिमें स्थिति करनेपर भी पहिले मैं कभी कान्तके निकट न गई एकमात्र अविद्याने जिसे धारण कर रखा है, उस नेत्र, कान आदि नवद्वारोंसे युक्त गृहको मैंने विद्याबलसे छिपा रखा है। जो स्त्री, कान्त अन्तिके आगमन करनेपर भी कौन स्त्री उसे "ये कान्त हैं"—ऐसा समझती है; मैंने इस समय कामनाको त्याग दिया; नरकरूपी धूर्त्त लोग कामुक रूपसे फिर मुझे नहीं ठग सकेंगे, अब मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ, मैं सदा जागतीथी, पहिलेका किया हुआ सुकृत दैववशसे अनिष्ट वा दृष्टरूपसे परिणत होता है, इस समय मुझे इन्द्रिय-विजय और बोधका उदय हुआ; वासना भी दूर होगई। जिन्हें आशा नहीं है, वेही सुखसे सोते हैं, नैराश्यही परम सुख है, पिङ्गला इस समय आशाको निराश करके अनायासही सोती है।

भीष्म बोले, ब्राह्मणके इन सब तथा दूसरे युक्तियुक्त वचनसे राजा स्येनजित् सावधान चित्तसे सुखी होके हर्षित हुए।

१७४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! इन सब प्राणियोंके क्षय करनेवाले समयके बीतते रहनेपर किस प्रकार कल्याणका आसरा करना उचित है, आप उसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! इस विषयमें पुराने लोग पिता पुत्र युक्त जिस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं, उसे सुनो। हे पृथापुत्र! वेदाध्ययनमें रत किसी ब्राह्मणके मेधावी नाम एक बुद्धिमान् पुत्र था। मोक्षधर्म्मकी व्याख्यामें निपुण लोक तत्वकी जाननेवाला वह पुत्र वेदविहित कार्य्योंमें रत पितासे प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुआ।

पुत्र बोला, हे तात! मनुष्योंकी परमायु शीघ्र नष्ट हुआ करती है इसलिये धीर पुरुष किस विषयको मालूम करके कार्य्य करें। आप फल सम्बन्धको अतिक्रम न करके विस्तारपूर्व्वक मेरे समीप उसे वर्णन करिये, जिसे सुनके मैं धर्म्माचरण करनेमें समर्थ हूंगा।

पिताने कहा, हे पुत्र! ब्रह्मचर्य्य अवलम्बनके जरिये सब वेदोंको पढ़कर पितृलोक पानेके लिये पुत्रकामना करे। अनन्तर विधिके अनुसार अग्नि स्थापित करके यज्ञकार्य्य पूर्ण करते हुए वनमें गमन करके ध्याननिष्ठ होवे।

पुत्र बोला, हे पिता! लोकोंके इस प्रकार सब भांतिसे ताड़ित होने तथा घिरे रहने और निरन्तर अमोघापात होनेपर भी आप निर्व्विकार चित्तसे धीरकी तरह क्या कह रहे हैं?

पिताने कहा, हे पुत्र! सब लोक किस प्रकार ताड़ित तथा किससे घिरे हैं और अमोघा क्या है, जो गिर रही है, क्या तुम मुझे भय दिखाते हो।

पुत्र बोला, सब लोक मृत्युसे ताड़ित और जरासे घिरे हुए हैं, और परमायु हरनेके कारण अमोघारात्रि प्रतिदिन आती जाती है। जब यह जानता हूं, कि यद्यपि मृत्यु इस स्थानमें उपस्थित नहीं है, परन्तु प्रति क्षण प्राणियोंको आक्रमण करती है; तब मैं ज्ञानावरणसे अनावृत होके किस प्रकार व्यवहार करते हुए समय व्यतीत करूंगा। जब कि प्रति रात्रिके बीतनेपर सबेरा होते ही आयु क्षीण होती है तब बुद्धिमान पुरुषको उचित है, कि दिनको निष्फल समझे। कामनाओंके पूर्ण न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण करती है; इसलिये थोड़े जलमें रहनेवाली मछलियोंकी तरह मृत्युके आक्रमणके समयमें कौन पुरुष सुख करनेमें समर्थ होगा। फूल गूंथनेकी तरह जब मनुष्य लोग काम्य कर्म्मोंके भोगनेके निमित्त तत्पर होते हैं, तब जैसे बाघिन भेड़के बच्चोंको ग्रहण करके अनायास ही चली जाती है, वैसे ही मृत्यु उन्हें ग्रहण करके प्रस्थान करती है। जो कुछ कल्याण साधक कर्म्म है, उसे आजही समाप्त करना उचित है। यह समय जिसमें तुम्हें अतिक्रम न करे. कर्त्तव्य कार्य्योंके पूरा न होते ही मृत्यु मनुष्योंको आक्रमण किया करती है। जो कलह करना होगा, उसे आजही करना योग्य है, अपरान्हके कर्त्तव्य कर्म्मोंको पूर्व्वान्हमेंही करना चाहिये, मनुष्योंके कर्तव्य कर्म्म पूरे हुए हैं, वा नहीं; उसके लिये मृत्यु कभी उन्हें आक्रमण करनेमें उपेक्षा नहीं करती।

मनुष्य युवा अवस्थामेंही धर्म्मशील होवे; क्यों कि जीवनका समय अत्यन्त अनित्य है; आज किसका मृत्युकाल उपस्थित होगा, इसे कौन कह सकता है। धर्म्म-कार्य्य करनेसे इस लोकमें कीर्त्ति और परलोकमें अनन्त सुख मिलता है। मनुष्य लोग मोहमें फंसके पुत्र कलत्र आदिके लिये कर्त्तव्य वा अकर्त्तव्य कार्य्योंको करके उनका पालन करते हैं, जैसे घेर सोये हुए हरिनको पकड़के चलदेता है, वैसेही पुत्रवान् पशुओंसे युक्त सन्सारमें फंसे हुए मानस मनुष्योंको मृत्यु ग्रहण करती हुई प्रस्थान करती है। जो पुरुष काम भोगसे तृप्त नहीं हुआ और पुत्र कलत्र आदि परिवारोंको अधिक कहांतक कहें, आत्माको भी वञ्चित करके धन सञ्चय किया करता है, उसे मृत्यु इस तरह आक्रमण करती है, जैसे शार्दूल हरिणको पकड़ता है। 'यह कार्य्य किया है, इसे करना होगा और दूसरे कार्य्य पूरे नहीं हुए'—इस प्रकारके वासना सुखमें आसक्त पुरुषोंको मृत्यु ग्रास किया करती है। जिस पुरुषने खेत आपण और भवनमें आसक्त होके किये हुए सब कर्म्मोंका फल नहीं पाया है, उसे भी मृत्युके वशमें होना पड़ता है। क्या निर्व्वल, क्या बलवान् क्या मूढ़, क्या पण्डित, क्या कादर, क्या साहसी, कोई क्यों न हो; कामनाके सब विषयोंको प्राप्त न होतेही होते मृत्यु उन लोगोंको ग्रहण करके गमन करती है। जरा, मरन, व्याधि और अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुए दुःख जब शरीरमें उपस्थित होरहे हैं, जब आप किस प्रकार अरोगीकी तरह निवास करते हैं। देहधारी जीवोंके जन्मतेही जरा मृत्यु उसके नाशके लिये उसका अनुगमन करती है; इसलिये स्थावर जङ्गम आदि उत्पन्न होनेवाली वस्तु मात्र इन दोनोंसे आक्रान्त हो रही है। गावमें वास करनेके लिये लोगोंको जो अनुराग हुआ करता है, वह मृत्युका मुख स्वरूप है और जो अरण्य कहके विख्यात है, ऐसी जनश्रुति है, कि वही इन्द्रियोंका विविक्त वासस्थान है। ग्राममें निवास करनेवालोंको अनुराग बन्धन रस्सीरूपी है; सुकृतवान् लोग उसे काटके गमन करते हैं, पापी पुरुष उसे नहीं काट सकते। मन, वचन और शरीरसे जो कभी प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते, वे जीते

तथा धर्ममें बाधा करनेवाले हिंसक और तथा चोरोंसे हिंसित नहीं होते। जरा-व्याधिरूपी मृत्यु को सेना जब आगमन करती है, तब कोई कभी उसे निवारण नहीं कर सकता।

जो मिथ्या सम्पर्कसे रहित है, वही सत्य है, उस सत्यमें ही अमरणरूपी अमृत सदा स्थित रहता है; इसलिये मनुष्य ब्रह्म-प्राप्तिके निमित्त यम-नियमरूपी सत्यव्रतका आचरण करते हुए चिदाभासरूपी जीवके एक साधन सत्य योगमें रत, वेद शास्त्रमें श्रद्धावान् और सदा जितेन्द्रिय होकर सत्यके जरिएही मृत्यु को जीते। सत्य और मृत्यु ये दोनों शरीरमें स्थित है, उसमेंसे मनुष्य मोहके कारण मृत्यु के वशमें होते हैं; और सत्यसे अमृतत्व लाभ करते हैं, इसलिये मैं अहिंसामें रत और काम क्रोधसे रहित होके सुख दुःखको समान जानके सत्यार्थी और कुशली होकर अमर्त्तकी तरह मृत्यु को त्यागूंगा। उत्तरायण कालमें निवृत्ति मार्ग अभ्यासरूपी शान्ति यज्ञमें रत, दान्त, उपनिषदोंके अर्थ विचाररूप ब्रह्म-यज्ञके अनुष्ठानमें अनुरक्त, मननशील, प्रणवजपरूपी वाक् यज्ञ, परब्रह्मका मननरूपी मानस यज्ञ और स्नान, पवित्रता तथा गुरु सेवा आदि कर्म्मयज्ञोंका अनुष्ठान करूंगा। मेरे समान बुद्धिमान पुरुष पिशाचके निष्फलचैत्य यज्ञकी तरह हिंसा साध्य पशु बधके जरिये किस प्रकार यज्ञ करनेमें समर्थ होंगे। जिनके वचन मन, तपस्या त्याग और योग ये पांचो सदा परब्रह्ममें परिणत होते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं, विद्याके समान नेत्र, सत्यके समान तपस्या, रागके समान दुःख और सन्न्यासके समान दूसरा सुख नहीं है। मैं अपुत्र होकर भी आत्मासे आत्माके जरिये आत्मरूपसे उत्पन्न और आत्मनिष्ठ होऊंगा; पुत्र मेरा उद्धार न करेगा। एकाकिता, समता, सत्यता, सच्चरित्रता, मर्य्यादा, दण्डविधान, सरलता और सब कार्य्योंमें आसक्तिहीनता, इन सबके समान ब्राह्मणोंके विषयमें और कुछ भी धन नहीं है। हे ब्रह्मन्! आपको जब अवश्यही कालके ग्रासमें पड़ना होगा, तब फिर आपको धन, बन्धु और पुत्र कलत्रोंसे क्या प्रयोजन है। अन्तःकरणसे निष्ठावान् होके आत्माको प्राप्त करनेकी इच्छा करिये; आपके पिता और पितामह आदि कहां गये हैं; उसे विचारिये।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! पिताने पुत्रका वचन सुनके जैसा किया था, तुम भी सत्य धर्म्ममें तत्पर होके वैसाही अनुष्ठान करो।

१७५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! धनवान् अथवा निर्द्धन मनुष्य जो कि पृथक् पृथक् धर्म्मशास्त्रको अवलम्बन करके निवास करते हैं, उन लोगोंका सुख वा दुःख लाभ कैसा है। और किस तरह हुआ करता है?

भीष्म बोले, प्राचीन पण्डित लोग इस विषयमें शान्ति सुखसे युक्त मुक्तिपथ अवलम्बी शम्पाकके कहे हुए इस पुराने इतिहासको कहते है। कुभार्य्या, कुवस्त्र और भूखसे क्लेशित होकर सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करनेवाले शम्पाक नाम किसी ब्राह्मणने पहिले मुझसे यह कथा कही थी। मनुष्यके इस लोकमें उत्पन्न होते ही अनेक तरहके सुख और दुःख उसे अवलम्बन करते हैं; परन्तु उस सुख वा दुःखके प्राप्त होनेपर जब वह दैवविहित करके मालूम होता है, तब मनुष्य सुख लाभसे हर्षित और दुःखसे असन्तुष्ट नहीं होता; तुम कामहीन करके सदा भार धारण करते हुए अपने कल्याणका आचरण नहीं करते हो; क्या तुम चित्त संयम करनेमें समर्थ नहीं हो। जिसके धन, स्त्री आदि कुछ भी नहीं है, उसे अकिञ्चन कहते हैं, तुम वही

अकिञ्चन होके इच्छ आदि त्यागके भ्रमण करते हुए सुख अनुभव करोगे। दरिद्र पुरुषही सुखसे सोता और उठता है ; दरिद्रताही लोकमें कल्याणकारी मार्ग और अनामय सुख स्वरूप है। यह शत्रु रहित मार्ग कामियोंको दुर्लभ और निष्काम पुरुषोंके अनायासही प्राप्त होता है ; मैं तीनों लोकोंको देखकर इस समय वैराग्य युक्त शुद्ध स्वभाववाले अकिञ्चनके समान कोई नहीं देखता हूं। मैंने अकिञ्चनता और राज्य दोनोंको तुलादण्डपर तौला था ; परन्तु राज्यसे समधिक गुणशालिनी अकिञ्चनताही अधिक हुई थी। अकिञ्चनता और राज्य इन दोनोंके बीच महान् विशेषता यही है, कि समृद्धियुक्त मनुष्य काल-कवलितकी तरह सदा व्याकुल रहता है, और जो लोग धन रत्नोंको परित्याग करनेसे विमुक्त तथा आशा रहित हुए हैं ; अग्नि, चोर आदि उपद्रव, मृत्यु तथा डाकूलोग उनका कुछ भी नहीं कर सकते। सुरपुर-वासी देवता लोग उस कामचारी, शय्यारहित, बाहुपर शिर रखके पृथ्वीमें शयन करनेवाले तथा शान्ति मार्गको अवलम्बन करनेवालोंको सदा प्रशंसा किया करते हैं। धनवान् क्रोध और लोभसे युक्त होकर, चेत-रहित वक्र-दृष्टि, रूखा मुख, कुटिल भौं, पापकर्म्म और क्रोधयुक्त होकर निठुर वचन प्रयोग करता है ; वह यदि पृथ्वीमण्डलको भी दान करनेकी इच्छा करे, तौभी कौन पुरुष उसे देखनेकी इच्छा करेगा। लक्ष्मीके साथ सदा सहवास होना मूर्खोंको मोहित करता है। जैसे वायु शरत् कालके बादलोंको उड़ा देती है, वैसेही सम्पत्ति धनवान् पुरुषोंके चित्तको हरण किया करती है ; और रूप तथा धनका अभिमान उसे अवलम्बन करता है ; "मैं सद्वंशमें उत्पन्न हुआ, सिद्ध तथा मैं सामान्य मनुष्य नहीं हूं"—इन तीनों कारणोंसे उसका चित्त प्रमत्त होता है। वह संसारमें आसक्त होके पिताकी इकट्ठी की हुई सब सम्पत्ति व्यय करके निर्धन होनेपर दूसरेका धन हरनेमें पाप नहीं समझता। जैसे व्याधा बाणोंसे हरिणोंको विद्ध करता है, वैसेही राजालोग उन मर्य्यादा रहित परधन हरनेवाले मनुष्योंके विषयमें दण्डविधान किया करते हैं। इसी प्रकार इसी भांतिके अनेक दुःख और दाहच्छेद आदि सब क्लेश इस लोकमें मनुष्योंको अवलम्बन करते हैं ; इस विनश्वर देह आदिके सहित अपत्य और धन रत्नरूपी लोक धर्म्मकी अवज्ञा करके बुद्धिबलसे उन अवश्य होनेवाले क्लेशोंका प्रतिकार करे। बिना त्यागके सुख नहीं मिलता ; त्यागके बिना परम पदार्थ प्राप्त नहीं होता ; बिना-त्यागके निर्भय होके शयन नहीं किया जाता ; इसलिये सब विषयोंको परित्याग करके सुखी हूजिये। पहिले हस्तिनापुरमें शम्पाक नाम ब्राह्मणने मेरे समीप इसी तरह ऊपर कहे हुए विषयको वर्णित किया था, इसलिये त्याग ही सबसे उत्तम है, यह सर्व्व-सम्मत है।

१७६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, कृषि, वाणिज्य, यज्ञ और दान आदि कर्म्मकी अभिलाष करते हुए मनुष्य अर्थलाभमें असमर्थ होकर धनकी तृष्णासे युक्त होनेपर कौन कार्य्य करके सुखभोग कर सकते हैं।

भीष्म बोले, हे भारत ! जिसे लाभ, हानि, मान, अपमान, विषयोंमें समज्ञान, धन आदिके निमित्त अयासाभाव, सत्य वाक्य, वैराग्य और कर्म्म करनेमें इच्छा नहीं है, वेही मनुष्य सुखी कहके वर्णित होते हैं। प्राचीन लोग इन पांचो विषयोंका मोक्षका कारण कहा करते हैं ; यही स्वर्ग, धर्म्म और अत्यन्त उत्तम सुख स्वरूपसे माने गये हैं। हे धर्म्मराज ! इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुराने इतिहासको वर्णन किया

करते हैं। मङ्कि नाम किसी पुरुषने जो कहा था उसे सुनो। मङ्किके धनकी इच्छा करनेपर बारम्बार उसकी कोशिश नष्ट हुई, तब जो कुछ धन बाकी था, उसके ही जरिये उसने जुआ काष्ठके सहित दमनके योग्य दो बैल खरीदा। जुआके दोनों ओर जुते हुए वे दमनीय दोनों बैल दमनके लिये निकले और दौड़के मार्गमें बैठे हुए एक ऊंटके ऊपर सहसा जा गिरे। जब जुएमें जुते हुए दोनों बैल सहसा ऊंटके कन्धे पर गिरे, तब महावेगशाली ऊंट क्रोधयुक्त होकर उठा और उन दोनोंको उठाकर चलने लगा। बल-वान ऊंटके जरिये दोनों बैलोंका हरण तथा मरण देखके मङ्किने उस समय यह वचन कहा, दैवके धन दान न करनेपर निपुण पुरुष भी यदि अत्यन्त श्रद्धा तथा पूर्ण रीतिसे चेष्टा करे, तोभी उसे प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होता, मैंने पहिले अनेक उपायके जरिये सावधान, चित्तसे धन उपार्ज्जनका अनुष्ठान किया; परन्तु किसीसे भी कृतकार्य्य न होके शेषमें दो बैल खरीदा; उसमें भी यह दैव विड़म्बना दीख पड़ी। उत्पथमें दौड़नेवाला ऊंट काकतीयको तरह मेरे दोनों प्रियबैलोंको उठाकर बार बार उछालते हुए गमन कर रहा है, जुएमें फंसे हुए दोनों बैल मानो दो मणिकी तरह लटक रहे हैं; इसलिये यह केवल दैव-विहित है; इस विषयमे पराक्रम प्रकाश करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। पुरुषके यत्न करनेपर किसी विषयमें यदि कोई कार्य्य सिद्ध होवे, तो विशेष अनुसन्धान करके देखनेसे वह भी दैवविहित कहके प्रतिपन्न होता है, इसलिये इस संसारमें जो लोग सुखकी इच्छा करें, उन्हें वैराग्य अव-लम्बन करनाही अवश्य उचित है। वैराग्यवान् पुरुष धन प्राप्तिसे निराश होके सुखसे सोता है। इस तरहकी आसक्तिसे रहित शुकदेवने जब जनकके यहांसे महावनके बीच प्रस्थान किया। उस समय कई एक उत्तम वचन कहा था, कि सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्ति और समस्त कामनाका परित्याग, इन दोनोंके बीच सब काम्य वस्तुओंकी प्राप्तिसे उसका परित्याग ही उत्तम कल्प है। कोई पुरुष भी धर्नोपार्ज्जन प्रवृत्तिके पारगामी नहीं हुआ; मूढ़ मनुष्यको ही शरीर और जीवनमें तृष्णाकी वृद्धि हुआ करती है। हे कामुक मन! इसलिये धनोपा-र्ज्जन प्रवृत्तिसे निवृत्ति रहे, वैराग्य अवलम्बन करके शान्तिलाभ करे; तू बार बार बञ्चित होता है; तोभी वैराग्यका आश्रय नहीं करता है।

हे वित्त-कामुक मन! यदि मैं तेरे सम्बन्धमें विनाश्य कहके न समझा जाऊं और तू यदि मेरे सङ्ग इसी तरह विहार करे; तो अनर्थक मुझे लोभमें आसक्त मत कर। तूने बार बार जिन द्रव्योंको सञ्चय किया था, वे सब नष्ट हुई हैं। रे मूढ़ चित्त! तू कब धनकी अभिलाषको परित्याग करेगा; हाय! मेरी कैसी मूर्खता है। मैं अबतक भी तेरा विलास-भाजन हुआ हूं; परन्तु इसी तरह पुरुष किसी किसी समय दूस-रेके अधीनता पाशमें बद्ध होता है। भूत वा भविष्य मनुष्योंके बीच कोई कभी कामनाकी पराकाष्ठाको प्राप्त नहीं हुआ; होगा भी नहीं। मैं इस समय सब कर्म्मोंको त्यागकर मोहनि-द्राको विसर्ज्जन करके जाग्रत हुआ हूं। हे वासना! बोध होता है, तुम्हारा हृदय वज्रसा-रमय अत्यन्त दृढ़ है; क्यों कि सैकड़ों अनर्थोंसे अनिष्ट होने पर भी सौ टुकड़े होकर फट नहीं जाता। हे वासना! मैं तुम्हें तथा तुम्हारी जो कुछ प्रिय वस्तु हैं, उन्हें भी जानता हूं, मैं तुम्हारी प्रिय कामना करते हुए आत्माको सुख भोग करनेमें समर्थ नहीं हूं। संकल्पसे तेरा जन्म हुआ है; इसलिये सङ्कल्पही तुम्हारा मूल है; वह भी मुझसे छिपा नहीं है, मैं सङ्कल्पको परित्याग करूंगा, इससे तूं जड़के सहित नष्ट होगी। धनकी लालसासे सुखलाभ नहीं होता; धन प्राप्त होने पर भी बहुतसी

चिन्ता हुआ करती है ; प्राप्त धनके नष्ट होनेसे मृत्युके समान दुःख होता है ; धन लाभ भी संशयसे युक्त है ; दूसरेके समीप प्रार्थना करने पर भी यदि धन न मिले, तो उससे बढ़के दुःख और कुछ भी नहीं है ; प्राप्त हुए धनसे भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता ; बल्कि फिर भी उसको इच्छा किया करता है । स्वादिष्ट गङ्गा-जलकी तरह धन तृष्णाकी अत्यन्त ही वृद्धि करता है, और यही मुझे नष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है ; जो हो, इस समय मैं मोह-निद्रासे रहित हुआ हूं,—इसलिये । हे वासना ! अब तू मुझे परित्याग कर, अथवा तूंने जब मेरे पञ्च भौतिक शरीरका आश्रय किया है, तब मेरे सहित इच्छानुसार यथा सुखसे निवासकर ।

हे वासना ! तू लोभकी अनुगामी हुआ करती है, इसी लिये तुम्हारे ऊपर मेरी प्रीति नहीं है, इससे सब कामना परित्याग करके मैं सतोगुण अवलम्बन करूंगा । मैं शरीरमें सब प्राणियों और मनमें आत्माको देखते हुए योग विधिमें चित्त लगाकर तथा श्रवण विषयमें सतोगुण अवलम्बन करके परब्रह्ममें मन स्थिर कर निरामय आसक्तिहीन और सुखी होकर लोकके बीच इस प्रकार भ्रमण करूंगा, कि अब तू मुझे फिर दुःखसमूहमें न डुबा सकेगी । हे वासना ! तू यदि मुझे परिचालित करे, तो मुझे दूसरा उपाय नहीं है, तृष्णा, शोक और श्रम आदि, तुझसे ही उत्पन्न हुआ करते हैं । मुझे बोध होता है; धन नष्ट होनेपर सबसे अधिक दुःख उत्पन्न होता है, धनहीन मनुष्यको स्वजन और बन्धु लोग अवज्ञा किया करते हैं ; सहस्रों अवज्ञा निबन्धनसे युक्त धन विषयमें बहुतेरे कष्टपूरित दोष दीख पड़ते हैं ; धन विषयमें जो कुछ सुख है, वह भी दुःखसे मिला हुआ है । डाकू लोग अगाड़ी धनवान पुरुषका ही वध करते, अनेक तरहके दण्डसे दुःख देते और सदा व्याकुल किया करते हैं । अर्थ लोभही दुःख है, इसे मैंने बहुत दिनोंमें समझा है । हे काम ! तू जिसे अवलम्बन करता है, उसीको अवरुद्ध कर रखता है ; इससे तू बालककी तरह मूर्ख है, किसीसे भी तेरी तुष्टि नहीं होती और अग्निकी भांति किसी प्रकार तुझे परिपूर्ण नहीं किया जा सकता । तू दुर्लभ और सुलभ कुछ भी नहीं जानता ; पातालकी भांति दुष्पुर होके मुझे दुःखयुक्त करनेकी अभिलाष करता है । हे काम ! अब तू फिर मेरा आश्रय न कर सकेगा, मैं इच्छानुसार वैराग्य अवलम्बन करके परम सुख प्राप्त करके इस समय अब काम्य वस्तु-ओंकी इच्छा नहीं करता । मैंने इसके पहिले अत्यन्त क्लेश सहा है । "इस समय मैं बुद्धिमान नहीं हूं"—ऐसा नहीं समझता, मैंने धन-हानि निबन्धनसे छुटकारा पाके इस समय सब तरहसे क्लेश रहित होकर सुखसे सोता हूं । हे काम ! मैं मनकी सब वृत्तियोंको त्यागके तुझे भी परित्याग करता हूं । तू अब फिर मेरे सङ्ग अनुरक्ति तथा निवास मत करना । जो मेरी निन्दा किया करते हैं, मैं उन लोगोंके विषयमें क्षमा करूंगा, दूसरे यदि मेरी हिंसा करें तोभी मैं उनकी हिंसा न करूंगा ; मेरे विषयमें विद्वेष प्रकाशित करके यदि कोई अप्रिय वचन कहे ; तो मैं उसके उस अप्रिय वचनका अनादर करके उसे प्रिय वचनही कहूंगा । मैं तृप्तियुक्त होके और इन्द्रियोंको जीतकर जो कुछ वस्तु प्राप्त होगी, उससे ही योवन बिताते हुए आत्मवत्, तुम्हें फिर सकाम नहीं करूंगा । यह समझ रखो कि वैराग्य, सुख तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सब भूतोंमें दयारूपसे मैं उपस्थित हुआ हूं । अब सतोगुणावलम्बी होकर मुक्ति मार्गमें प्रस्थान करता हूं ; इसलिये, काम लोभ, तृष्णा और दीनता मुझे परित्याग करें मैं काम और लोभको त्यागके सुखी हुआ हूं, इस समय

निर्बुद्धियोंकी तरह लोभके वशमें होकर फिर दुःख भोग न करूंगा। कामनाके जो अंशपरित्याग किये जाते हैं। जो सदा कामके वशमें रहते हैं वे लोग केवल दुःख भोग करते हैं कामसे युक्त जो कुछ रजोगुण है, उसे पुरुषमात्रकोही त्यागना उचित है; क्यों कि अलज्ज और अरतिरूप दुःख काम तथा क्रोधसे उत्पन्न हुआ करते हैं, ग्रीष्म ऋतुमे ठण्डे तालावमें प्रवेश करनेकी भांति इस समय मैं परब्रह्ममें प्रविष्ट हुआ हूं; सब कर्म्मोंसे मुक्त होकर दुःख रहित हुआ हूं, निर्विकार सुखही सदा मेरे समीप स्थित है, लोकमें जो कुछ कामसुख तथा जो कुछ दिव्य महत् सुख है, वे सब तृष्णा क्षयरूपी सुखके सोलहवें, अंशके समान नहीं है। स्थूल शरीरके सङ्ग गिनती करनेसे जो सातवां होता है, सब अनर्थोंका मूल स्वरूप उस परम शत्रु कामका नाश कर अविनश्वर ब्रह्मपुर पाके मैं राजाकी तरह सुखी हुआ हूं। यह प्रसिद्ध है, कि मङ्किने दोनों बैलोंके नष्ट होनेपर ऐसाही विचारके शोक रहित हो सब कामना त्याग कर महत् सुख स्वरूप परब्रह्मको प्राप्त होके अमरत्व लाभ किया था। उसने कामके मूल माया बन्धनको तोड़ा था, इसीसे महत् सुख लाभ किया।

१७७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! बिदेहराज जनकने सब कर्म्मोंसे मुक्त होकर जो कुछ कहा था, पुराने लोग इस विषयमें उस ही प्राचीन इतिहासका प्रमाण दिया करते है; उन्होंने कहा था, "हमारे विभवका अन्त नहीं है, तौभी मेरा कुछ भी नहीं है; सारी मिथिला नगरीके भस्म होनेपर भी मेरा कुछ न जलेगा।" हे धर्म्मराज! बोध्य ऋषिने वैराग्य विषयक जिन श्लोकोंको कहा था; प्राचीन लोग उनका भी इस विषयमें उदाहरण दिया करते है, उसे तुम सुनो। राजा नहुषने वैराग्यके कारण शान्तिसुखसे युक्त, शास्त्रज्ञानसे तृप्त, शान्त बोध्य नाम ऋषिसे कहा था, हे महाबुद्धिमान्! आप मेरे ऊपर कृपा करके शान्तिमय उपदेश दान करिये।

बोध्य बोले, मैं उपदेश ग्रहण करके निवास करता हूं; परन्तु किसीको भी उपदेश दान नहीं करता। इस समय उस उपदेशका लक्षण कहता हूं, आप स्वयं उसका विचार करिये। पिङ्गला, कुरर पक्षी, सांप, वनके बीच सारङ्ग पक्षीका खोज, इषुकार और कुमारी ये छः मेरे उपदेष्टा हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! आशा अत्यन्त बलवती है, नैराश्यही परम सुख है; पिङ्गला नामी वेश्या आशाको त्यागके सुखकी नींद सोई थी। मांसयुक्त कुरर-पक्षीको देखकर मांस रहित कुरर पक्षियें उसे मारनेमें उद्यत होती है, तब वह मांसको त्यागनेसे सुखी हुआ करता है। गृहारम्भ केवल दुःखका मूल है, कदापि सुखका कारण नहीं होता, सांप दूसरेके बनाये हुए गृहमें प्रवेश करके सहजमें ही सुखसे रहता है। मुनि लोग भिक्षावृत्ति अवलम्बन करके सारङ्ग पक्षीकी तरह जीवोंके विषयमें अनिष्ट आचरण न करके परम सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं। कोई इषुकार मनुष्य वाण बनानेमें आसक्त चित्त होकर निज समीपमें राजाको गमन करते हुए न जान सका। बहुतसे लोगोंके इकट्ठे रहनेपर सदा कलह हुआ करता है, दोनोंका परामर्श ही निश्चय है; पिताके वशमें रहनेवाली किसी कुमारीने ब्राह्मण भोजन करानेकी इच्छा करके चावलोंको छाटने लगी, उस समय उसके हाथमें स्थित सब शङ्ख (चूड़ी) बजने लगी, तब उसने दोनों हाथोंमें केवल दो शङ्खोंको रखके बाकी सब शङ्खोंको तोड़के शब्दको निवारण किया था।

मैं उस ही कुमारीके शङ्खकी तरह अकेले ही विचरण करूंगा।

१७८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे व्यवहारज्ञ! मनुष्य किस व्यवहारसे शोकरहित होकर पृथ्वीपर विचरते और लोकके बीच कौन कार्य्य करके उत्तम गति प्राप्त करते हैं?

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें प्रह्लाद और अजगर वृत्तिको अवलम्बन करके जीविका निर्व्वाह करनेवाले किसी मुनिके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। बुद्धिमान् राजा प्रह्लादने रागद्वेषसे हीन दृढ़ चित्तसे भ्रमण करनेवाले किसी बुद्धिमान् ब्राह्मणसे प्रश्न किया कि, हे ब्रह्मन्! आप स्वस्थ, दक्ष रहित दयावान्, जितेन्द्रिय, कर्म्म-हीन, सर्व्वत्र दोषदर्शी, सत्यवादी प्रतिभायुक्त मेधावी और तत्त्वज्ञ होकर भी बालककी तरह घूम रहे हैं, आप वस्तु लाभकी इच्छा नहीं करते, प्राप्त न होने पर भी असन्तुष्ट नहीं होते; सदा तृप्तकी भांति किसी विषयकी अवज्ञा नहीं करते। काम क्रोधके प्रबलवेग लोगोंको हरण कर रहे हैं, तौभी आप विरक्तकी तरह धर्म्म, काम और अर्थयुक्त कार्य्योंमें निर्व्विकार चित्तके समान मालूम होरहे हैं। आप धर्म्म और अर्थका अनुष्ठान नहीं करते तथा काममें भी प्रवृत्त नहीं होते। रूप, रस आदि इन्द्रियोंके विषयोंका अनादर करके कर्त्तृत्व भोक्तृत्व आदि अभिमानसे रहित होकर साक्षीकी तरह भ्रमण कर रहे हैं। हे ब्रह्मन! आपका कैसा तत्त्व दर्शन, किस प्रकार शास्त्रका सुनना और किस प्रकारका धर्म्मानुष्ठान है; यदि उसे मेरे विषयमें उत्तम समझते हों, तो शीघ्रही बयान कीजिये।

भीष्म बोले, लोकधर्म्मको जाननेवाले उस मेधावी मुनिने पूछनेपर अर्थयुक्त मधुर वचनसे प्रह्लादको उत्तर दिया, हे प्रह्लाद! कारण रहित एकमात्र अद्वितीय परम पुरुषसे जीवोंकी उत्पत्ति, ह्रास, वृद्धि वा नाशके विषयकी आलोचना करके, मैं इसकी आलोचना करके हो हर्षित तथा दुःखित नहीं होता। स्वभावके कारण वर्त्तमान प्रवृत्तियों और स्वभावमें रत सब लोगोंको भली भांति देखना उचित है, मैं इसे जानकर ब्रह्मलोक प्राप्तिसे भी प्रसन्न नहीं होता, हे प्रह्लाद! वियोगपरायण प्राणियोंके संयोग और विनाशावसान समस्त सञ्चयोंका अवलोकन करो। मैं किसी विषयमें ही मन नहीं लगाता। जो लोग गुणयुक्त जीवोंको अन्तवन्त अवलोकन करते और उत्पत्ति तथा लयके विषयको जानते हैं; उनके लिये कोई कार्य्य शेष नहीं है।

हे दानवराज! यह देखता हूं, कि समुद्रके बीच क्या बड़े, क्या छोटे शरीर जलचर जीवोंका पर्य्यायक्रमसे नाश हो रहा है, स्थावर जङ्गम आदि सब जीवोंको स्पष्ट भावसे मृत्युके मुखमें पतित होते देखता हूं। आकाशचारी पक्षियोंकी भी यथा समयमें मृत्यु होती है; आकाशमें घूमनेवाले छोटे और बड़े तारे भी नष्ट होते दीख पड़ते हैं। इसी तरह सब भूतोंको मृत्युके वशमें होते देखकर ब्रह्मनिष्ठ और कृतकृत्य होकर सुखकी नींद सोता हूं। कभी अनायास प्राप्त हुए उत्तम भक्ष्य भोजन किया करता हूं, कभी कई दिनोंतक विना भोजन किये ही सोता हूं, कभी लोग मुझे बहुतसा और कभी थोड़ा अन्न भोजन कराते हैं; कभी कुछ भी अन्न उपस्थित नहीं होता। मैं कभी चावलोंके किनकोंको भक्षण करता, कभी पिण्याक फल भोजन किया करता हूं। कभी पक्वान्न आदिक अनेक प्रकारकी भक्ष्य वस्तुओंको भक्षण करता हूं मैं कभी पलङ्ग पर सोता, कभी पृथ्वीपर शयन किया करता हूं कभी महलमें मेरी शय्या सज्जित हुआ करती है, कभी, चार बसन, कभी शनसूतके बने हुए वस्त्र,

कभी कभी छौमवस्त्र और कभी मृगछाल धारण करता हूं; समयके अनुसार अधिकमूल्य-वान् वस्त्रोंको भी पहना करता हूं। यदृच्छा प्राप्त धर्मयुक्त उपभोग वस्तुओंमें मैं अनास्था नहीं करता और इसके अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी उसके लिये मेरी रुचि नहीं होती। मैं पवित्र भावसे स्थिरता युक्त, मरण-विरोधी, मंगलजनक शोकहीन और तुलना रहित इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। अत्यन्त मूढ़ लोग इसका आचरण करना तो दूर रहे इसी जाननेमें भी समर्थ नहीं होते; यह ब्रह्म प्राप्तिका उपाय स्वरूप है। मैं स्थिर चित्तसे निज धर्मसे विचलित न होकर पूर्वापर सब मालूम करके परिमित भावसे जीविकानिर्व्वाह करते हुए निर्भय, राग, द्वेष आदिसे रहित, निर्लोभ और मोहहीन होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। जिसमें भक्ष्य, भोज्य और पेय विषयका नियम नहीं है; अदृष्टके परिणामके कारण देश और कालकी व्यवस्था नहीं है; कुत्सित पुरुष जिसके आचरण करनेमें असमर्थ हैं उस हृदय सुख दायक अजगर व्रतका मैं पवित्र भावसे आचरण करता हूं। "अमुक धन मैं लाभ करूंगा",-इसी तरह तृष्णासे युक्त होकर लोभ धन न प्राप्त होनेपर दुःखित होते हैं, इसे तत्वबुद्धिके जरिये निपुणताके सहित आलोचना करके मैं पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। दीन पुरुष कृपण भावसे सत् और असत् सबहीके निकट धनके निमित्त आश्रित होते हैं, इसे देखकर मैं उपशमकी अभिलाष करके और चित्तको जीतके इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। सुख, दुःख, लाभ, हानि, रति, अरति, जीना और मरना सब दैवके अधीन है, इसे यथार्थ रीतिसे जानकर मैं पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। अज-गर सर्प उपस्थित फलको भोग किया करता है, उसे सुनके मैं राग, भय, मोह और अभि-मानसे रहित, धृति, मति और बुद्धिसे युक्त तथा प्रशान्त होकर पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। मेरे सोने और भोजन करनेका नियम नहीं है, मैं स्वभावसेही दम, नियम, सत्य, व्रत और शौच युक्त, फल सञ्चयसे रहित और आनन्दित होकर इस अजगरव्रतका आचरण करता हूं। इच्छाके विषय पुत्र और वित्त आदि निबन्धन परिणाम दुःखके कारण हैं, समस्त दुःख स्वयंही परा-ङ्मुख हुए हैं; इससे मैं ज्ञानलाभ करके अन्तः-करणको तृषित और अस्थिर देखकर उसे स्थिर करनेके लिये पवित्र भावसे इस आत्मनिष्ठ अजगर व्रतका आचरण करता हूं। मैं वचन, मन और अन्तःकरणका अनुरोध न करके प्रिय सुखकी दुर्लभता और अनित्यता देखते हुए पवित्र भावसे इस अजगर व्रतका आचरण करता हूं। बुद्धिमान कवियोंने आत्मकीर्त्तिको प्रसिद्ध करते हुए निजमत और परमतके जरिये यह शास्त्र ऐसा कहता है—इसी तरह अनेक वितर्क करके बहुतायतके सहित आत्मतत्वका विषय वर्णन किया है। मूर्ख मनुष्य उस प्रत्यक्ष आदि प्रमाणोंसे प्रसिद्ध तर्कसे अगोचर आत्म तत्वको जाननेमें समर्थ नहीं होते; मैं उसेही अज्ञान आदि नाशक अन्तररहित और अनन्त दोष निवारक रूपसे आलोचना करके दोष और तृष्णा त्यागके मनुष्योंके बीच भ्रमण किया करता हूं।

भीष्म बोले, इस पृथ्वीमण्डल पर जो महा-नुभाव मनुष्य रागहीन और भय, लोभ, मोह तथा मान रहित होकर इस अजगर व्रतका आचरण करते हैं, वे अवश्यही सुखी होते हैं।

१७९ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! बान्धवों, वित्त, कर्म्म और बुद्धि इन सबके बीच मनुष्योंकी

किस विषयसे प्रतिष्ठा होती है, मैं इसेही पूछता हूं आप मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, बुद्धिसेही जीवोंकी प्रतिष्ठा होती है, इस लोकमें बुद्धिसेही निःश्रेयस लाभ हुआ करता है; बुद्धिही साधुओंमें स्वर्गरूपसे सम्मत है। ऐश्वर्य नष्ट होनेपर राजा बलि; प्रह्लाद, नमुचि और मङ्किने बुद्धिसेही पुरुषार्थ लाभ किया था; इससे बुद्धिसे श्रेष्ठ दूसरा कुछ भी नहीं है। हे धर्मराज! इस विषयमें पण्डित लोग इन्द्र और काश्यपके सम्वाद युक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं, उसे तुम सुनो। ऐश्वर्यसे मतवाला कोई वैश्य काश्यपवंशीय संशितव्रती तपस्वी ऋषिपुत्रको रथचक्रसे गिराया था। गिरनेसे पीड़ित होकर ऋषिपुत्रने शरीर त्यागनेका निश्चय करके क्रुद्ध भावसे कहा, मैं अवश्यही जीवन परित्याग करूंगा; इस पृथ्वीमण्डल पर निर्द्धन मनुष्योंको जीवन धारण करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है। ऋषिपुत्रके मुमूर्षु होकर चेतरहित अवस्था इस प्रकार चुप्पचित्त और शब्द रहित होके निवास करनेपर देवराज इन्द्र सियारका रूप धरके उसके समीप आके बोले, हे काश्यप! समस्त जीव सब तरहसे मनुष्य योनि प्राप्त होनेकी इच्छा करते है, मनुष्य जन्म होनेसे सब कोई ब्राह्मणत्वका अभिनन्दन किया करते हैं। तुम मनुष्य-जन्म पाके ब्राह्मण हुए हो, विशेष करके वेद अध्ययन किया है; अत्यन्त दुर्लभ मनुष्यत्व, ब्राह्मणत्व और श्रोत्रियत्व लाभ करके मूढ़ताके वशमें होकर तुम्हें शरीर त्यागना उचित नहीं है। लाभ मात्रही अभिमानसे युक्त है, अर्थात् "मैंने यह धन प्राप्त किया है"—सब वस्तुओंके प्राप्त होने पर इसी प्रकार अभिमान हुआ करता है। इस विषयमें जो जनश्रुति है, अर्थात् किसीके धनमें अभिलाषा मत करो, यह अवश्यही तुम्हें विदित होगा, तुम्हारा सौन्दर्य अत्यन्तही सन्तोष युक्त है; इसलिये तुमने जो मरनेका निश्चय किया है, लोभही उस विषयमें कारण है। इस जगत्में जिन्हें पांच अंगुलियोंसे युक्त हाथ हैं, उनका सभी प्रयोजन सिद्ध होता है; हाथ युक्त लोगोंको मैं अत्यन्त सराहना किया करता हूं, धनके निमित्त तुम्हारी जैसी इच्छा है, हाथ युक्त मनुष्योंके विषयमें मेरी वैसीही अभिलाष हुआ करती है, हस्तलाभसे अधिक लाभ और कुछ भी नहीं है। हे ब्राह्मण! हाथ नहीं है, इसहीसे हम लोग कण्टक उद्धार नहीं कर सकते और अनेक प्रकारके कीट हमारे अङ्गमें दंशन करते रहते हैं, उन्हें नष्ट करनेकी सामर्थ्य नहीं होती। जिन्हें दैवके दिये हुए दश अंगुलियोंसे युक्त दोनों हाथ विद्यमान हैं, वे लोग दंशन करनेवाले कीटोंको सहजमेंही पृथक् कर सकते हैं, सर्दी, वर्षा और धूपसे अपना बचाव करनेमें समर्थ होते हैं। अन्न, वस्त्र, सुख, शय्या आदि सहजमेंही उपभोग कर सकते हैं; जनसमाजके बीच वाहनोंपर चढ़के उन्हें चलाते हुए सुख भोग कर सकते और आत्म सुखके लिये अनेक प्रकार उपायसे सबको वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं। जिनके हाथ और जीभ नहीं हैं, वे कृपण तथा अल्पबलवाले हैं, वेही उन सब दुःखोंको सहते हैं। हे मुनि! भाग्यसेही तुम सियार, कीट, मूषिक, सांप वा मेढ़क नहीं हुए अथवा दूसरी किसी पापयोनिमें जन्म नहीं लिया। हे काश्यप! मनुष्यत्व लाभसेही तुम्हें सन्तुष्ट रहना उचित है; तुम जब सब जीवोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हो, तब फिर दूसरे लाभकी क्या आवश्यकता है; मेरी दशा देखो, ये सब कृमि समूह मुझे डस रहे हैं, हाथ नहीं है, इसीसे मैं इन्हें नष्ट तथा निवारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तिर्य्यग् प्राणियोंको भी शरीर त्यागना पापका कारण हुआ करता है, इसलिये मैं इस शरीरको नहीं त्याग सकता और इससे अधिक पाप युक्त दूसरी योनिमें

पड़नेकी इच्छा नहीं होती। समस्त पाप योनियोंके बीच मैंने जो श्रृगाल योनि पाई है, इससे भी अधिक पाप युक्त दूसरी अनेक पाप-योनि हैं, कितनेही लोग जातिके अरिष्टेही अत्यन्त सुखी हुआ करते हैं ; दूसरे लोग उस-होसे अत्यन्त दुःखित होते हैं ; इस जगत्में कोई पुरुषको किसी विषयमें एकबारगी सुखी नहीं देखता हूं। मनुष्य लोग धनवान होके फिर राज्यकी इच्छा करते हैं राज्य प्राप्त होनेपर फिर देवत्वकी इच्छा किया करते हैं, देवत्व प्राप्त होनेपर इन्द्रत्व लाभके अभिलाषी होते हैं। तुम यदि धनवान हो जाओ तथापि राजा वा देवता न होगे, यद्यपि देवत्व लाभ करके अन्तमें इन्द्रत्व लाभ करो ; तौभी तुम सन्तुष्ट न होगे। प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे कभी तृप्ति नहीं होती। बहुत जल रहने पर भी प्यास कभी नहीं शान्त होती, काष्ठ प्राप्त होनेसे अग्निकी तरह प्रिय वस्तुओंके मिलनेसे विषय-तृष्णा अत्यन्तही बढ़ती है। जैसा तुम्हें शोक हुआ है, वैसाही हर्ष भी तुममें निवास कर रहा है, इससे तुम आत्मागत हर्षसे शोकको दूर करो। जब कि सुख और दुःख दोनोंही प्राप्त होते हैं, तब फिर उसके लिये दुःख करनेका क्या प्रयोजन है। जो लोग कामना और उसके सब कार्य्योंकी मूल बुद्धि तथा इन्द्रियोंको पिञ्जरेमें बद्ध पक्षीकी तरह शरीरके बीच रोक रख सकते हैं ; जैसे कल्पित दूसरे सिर और तीसरे हाथका कटना सम्भव नहीं है, वैसेही उन्हें किसी स्थानमें किसी विषयमें भय नहीं होता। जो पुरुष जिस विष-यका स्वाद नहीं है, उसमें कामना नहीं होती; दर्शन, स्पर्शन और श्रवण निबन्धनसे रसज्ञान हुआ करता है। तुमने कभी मद्य और लड़ाक पक्षीके मांसका स्वाद नहीं ग्रहण किया है ; किन्तु ऊपर कही हुई दोनों वस्तुओंसे बढ़के उत्तम भक्ष्य और कुछ भी नहीं है। हे काश्यप ! जीवोंको जो सब भक्ष्य वस्तु हैं, उनमेंसे तुमने जिसे नहीं खाया है, उसके विषयमें तुम्हारा स्वाद ग्रहण भी नहीं है ; इसलिये अशन स्पर्शन और दर्शन त्याग विषयमें नियम निर्द्धा-रण करना ही पुरुषोंको निःसन्देह कल्याण-कारी बोध होता है। हाथयुक्त जीवही निःस-न्देह बलवान् और धनवान् हुआ करते हैं। मनुष्य लोग मनुष्योंके दासत्व शृंखलमें बद्ध होकर वध बन्धन आदि विविध क्लेशोंसे बार बार क्लेशित हुआ करते हैं, वे लोग वैसी अव-स्थामें पड़के भी क्रीड़ा, आमोद तथा हास्य किया करते हैं। दूसरे बाहुबलशाली कृतविद्य मनस्वी पुरुष भी भवितव्यताको अलङ्घनीयता निबन्धनसे अत्यन्त निन्दित पापकर्म्ममें अनुरक्त होते हैं, वे लोग अत्यन्त घृणित नीच व्यवहार करनेमें भी उत्साह किया करते हैं। पुक्कश और चाण्डाल जातीय पुरुष भी मायाके प्रभा-वसे आत्मयोनिमेंही सन्तुष्ट रहके आत्म त्यागकी इच्छा नहीं करते ; इसलिये मायाका कैसा प्रभाव है, इसे देखिये।

हे काश्यप ! विकल अंगवाले, पक्षाघातके कारण अङ्गहीन और रोगमें फंसे हुए मनुष्योंको देखकर तुम निज जातिके बीच अपनेको ब्रह्म-ण्डमेंही सब तरहसे सुखी और लाभवान समझो तुम्हारा यह ब्राह्मण शरीर यदि निर्भय और रोग रहित रहे तथा सब अङ्ग विकल न हों तो तुम जनसमाजमें निन्दित न होगे। हे विप्रवर ! कोई जाति नाशकारी कलङ्क होने पर भी जब आत्म परित्याग करना उचित नहीं है, तब किस कारण तुमने शरीर त्याग-नेका सङ्कल्प किया है। तुम्हें आत्म त्याग करना योग्य नहीं है, तुम धर्म्म साधनके लिये उठके खड़े हो जाओ। हे ब्रह्मन् ! यदि तुम मेरा यह वचन सुनो और इसमें श्रद्धा करो, तो वेदमें कहे हुए धर्म्मके मुख्य फल पाओगे। तुम प्रमाद रहित होके वेदाध्ययन, अग्नि संस्कार,

सत्य वचन इन्द्रिय दमन और दानधर्म प्रतिपालन करो; किसीके साथ ईर्षा न करना। जो लोग स्वाध्यायमें रत होके यजन याजन आदि कर्म्मोंके अधिकारी हुए हैं, वे शोक क्यों करेंगे। किस लिये वे अमङ्गल चिन्ता करनेमें रत होंगे; वे लोग यथा उचित यज्ञ आदिके जरिये समय बितानेकी इच्छा करके अत्यन्त सुख लाभ करेंगे। जो लोग शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र और शुभ लग्नमें जन्म लेते हैं, वे यज्ञ, दान और सन्तान उत्पन्न करनेके लिये शक्तिके अनुसार यत्न किया करते हैं, और जो लोग आसुर नक्षत्र, दुष्ट तिथि तथा दुष्ट मुहूर्त्तमें उत्पन्न हुए हैं, वे यज्ञहीन और सन्तान रहित होके आसुरी योनिमें पड़ते हैं। मैं पूर्व्व जन्ममें वेदनिन्दक, पुरुषार्थ रहित, निरर्थक, आन्विक्षिकी विद्यामें अनुरक्त, कुतर्क, परायण, नास्तिक और पाण्डित्याभिमानी महामूर्ख था, सभाके बीच युक्तियुक्त हेतु-वादोंको प्रकट किया करता था, वेद वचनमें अनादर प्रकाशित करके चिल्लारस्वरसे ब्राह्मणोंको अतिक्रम करके वक्तृता करता और स्वर्ग आदि अदृष्ट फलोंमें मुझे शङ्का था। हे द्विजवर! उसही फलके परिणाम बलसे मुझे यह शृगालत्व प्राप्त हुई है; मैं सियार होके भी यदि कभी सैकड़ों दिन तथा रात्रिके अनन्तर फिर मनुष्ययोनि पाऊंगा; तो सदा सन्तुष्ट, प्रमाद रहित होकर यज्ञ दान और तपस्यामें रत रहके श्रेय, पदार्थोंका ज्ञान और त्यज्य विषयोंका परित्याग करूंगा।

सियारका वचन समाप्त होनेपर कश्यप वंशीय मुनिपुत्रने विस्मय युक्त होके उठकर कहा कैसा आश्चर्य है; तुम अत्यन्त निपुण वक्ता और बुद्धिमान् हो। ब्राह्मणने ऐसा वचन कहके ज्ञान युक्त नेत्रसे उस सियारको और देखतेही देवोंके देव शचीपति इन्द्रका दर्शन किया, अनन्तर द्विजवर कश्यपने देवराजकी भक्ति श्रद्धाके सहित पूजा की और उनकी आज्ञासे निज स्थानमें प्रविष्ट हुए।

१८० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! दान, यज्ञ, तपस्या, गुरुसेवा और बुद्धि कल्याणप्राप्तिका कारण है, वा नहीं; उसे मेरे समीप वर्णन कीजिये।

भीष्म बोले, मन स्वयं काम क्रोध आदि अनर्थके वशमें होकर पापमें प्रवृत्त होता है। और निज कर्म्मोंको पाप युक्त करके क्लेशदायक नरक आदिकोंमें दुःख भोगका अधिकारी हुआ करता है, पाप करनेवाले दरिद्रपुरुष बार बार दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु लाभ करते हैं, और सत्कर्म्मोंमें रत, दान्त, श्रद्धावान धनाढ्य मनुष्य सदा उत्सव, स्वर्ग और सुख लाभ किया करते हैं, नास्तिकोंका दोनों हाथ बांधके दुष्ट हाथियोंके जरिये दुर्गम और सांप तथा चोर भयसे युक्त वनके बीच रखना उचित है, इसके अतिरिक्त उन लोगोंके लिये और कुछ शासन नहीं है। जो लोग देवता, अतिथि और साधुओंके विषयमें प्रीति किया करते हैं, वे सब वदान्य पुरुष दान आदि कर्म्मोंको अनुकूलताके कारण योगियोंके कल्याणकारी मार्गमें देवयानमें निवास करनेमें समर्थ होते हैं धान्यके बीच पुनाक और पक्षियोंके बीच जैसे मशक निकृष्ट हैं, वे वैसेही जिन मनुष्योंकी धर्म्म कर्म्ममें सुखकी आशा नहीं है, वे भी मनुष्योंके बीच निकृष्ट हुआ करते हैं।

पुरुषके परम यत्नवान होनेपर भी पूर्व्वकर्म्म उसका अनुसरण करते हैं, सोनेपर भी उसके सहित शयन किया करते हैं, प्राचीन कर्म्म जब जिस प्रकारसे किया जाता है, उसही समय वह उसी प्रकार फलदायक वा अफलदायक हुआ करता है। प्राक्तन कर्म्म छायाके समान है।

पुरुषके स्थित होनेपर स्थित, गमन करनेपर अनुगामी और कर्म्म करनेपर उसके सहित अविच्छिन्न रहके अनुकूलता करता है। पहिले जिस तरहसे जो कर्म्म किया गया है, मनुष्य उसही आत्मकृत कर्मको उसही प्रकार सदा भोग किया करता है। निज कर्म्म फलका आश्रय स्वरूप पूर्व्वकर्म्मके कारण अदृष्टके जरिये पर्योचित जीवोंको काल सदा आकर्षण कर रहा है। जैसे फूल और फल अवचित न होनेसे निज समयको अतिक्रम नहीं करते, पहलेके किये हुए कर्म्म भी, वैसे ही मान, अवमान लाभ, हानि, चय और उदय आदि प्राक्तन कर्म्मके भीतर बार बार प्रवृत्त और निवृत्त होते हैं। मनुष्य गर्भ शय्यामें शयन करते हुए भी पूर्व्व देह सम्बन्धीय आत्मकृत सुख दुःख भोग करता है, क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध जो लोग जिस अवस्थामें जो कुछ शुभाशुभ कर्म्म किया करते हैं, वे उसही अवस्थामे उसका फल पाते हैं। जैसे बछड़ा हजार गऊके बीच निज जननीको खोज लेता है वैसेही पूर्व्वकर्म्म भी कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे वस्त्र पहले मलसे मलिन होके फिर धोनेसे शुद्ध होते हैं। उसी तरह विषयत्यागनिबन्धनसे सन्तापित लोगोंको अत्यन्त महत् अनन्त सुख हुआ करता है। तपोवनमें बहुत समयतक तपस्या करके धर्म्मबलसे जिसके पाप धोये गये हैं, उन्हींके मनोरथ सिद्ध होते हैं। जैसे आकाशमे पक्षियों और जलमे मछलियोंके पैर नहीं दीखते, ज्ञानवान मनुष्योंकी गति भी वैसी ही है। दूसरे आक्षेप और अपराध वाक्यके उल्लेखकी आवश्यकता नहीं है, निपुणताके सहित अपने अनुरूप हितसाधन करना उचित है, ऐसा होनेसे ही प्रभा और कल्याणलाभ हुआ करता है।

१८१ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! यह स्थावर जङ्गमात्मक जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, और प्रलय कालमें किसमें जाके लयको प्राप्त होता है, आप मुझसे वही कहिये। समुद्र, पहाड़, आकाश, बलाहक, पृथ्वी, पवन और अग्निके सहित इस सन्सारको किसने बनाया है। सब जीव किस तरह उत्पन्न हुए हैं; वर्णविभाग किस प्रकार हुआ है; सब वर्णोंके शौच अशौच और धर्म्माधर्म्मकी कैसी विधि है, जीवोंका जीवन कैसा है, सब जीव मरनेपर कहां जाते हैं इस लोकसे परलोकमें कैसे जाना होता है; आप यह सब मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, भरद्वाजके प्रश्नके अनुसार भृगु मुनिके कहे हुए इस प्राचीन इतिहासको पुराने पण्डित लोग इस विषयमें उदाहरण दिया करते है। कैलास शिखरपर बैठे हुए महातेजस्वी दीप्यमान महर्षि भृगुका दर्शन करके भरद्वाज प्रश्न करनेमें प्रवृत्त हुए।

भरद्वाज बोले, समुद्र, पर्व्वत, आकाश, बलाहक, भूमि, पवन और अग्निके सहित इस विश्वको किसने बनाया है। सब भूत किस प्रकार उत्पन्न हुए और वर्ण विभाग किस तरह हुआ है, सब वर्णोंके शौच अशौच और धर्म्माधर्म्मकी कैसी विधि है, जीवित लोगोंका जीवन कैसा है, सब जीव मरकेही कहां गमन करते है, परलोक और इस लोकके विषय किस प्रकारके हैं? यह सब वर्णन करनेके उपयुक्त आपही है; इसलिये ऊपर कहे हुए सब विषयोंको वर्णन करिये।

ब्रह्मसङ्काश ब्रह्मर्षि भृगुने भरद्वाजके ऐसे संशययुक्त विषयोंको सुनके उनसे सब विषय कहने लगे।

भृगु बोले, सत् और असत् रूपसे अनिर्व्वचनीय अज्ञानसे उत्पन्न मानस नाम महर्षियोंसे विश्रुत अनादि निधन, अभेद्य, अजर, अमर, अव्यक्त रूपसे विख्यात्, अक्षय, अव्यय और

शाश्वत एक देवता है ; जब विशिष्ट जीव जिससे उत्पन्न होते और अन्तमें जिसमें लीन हुआ करते हैं ; वही देव पहिले महत्‌को सृष्टि करता है, महत्‌से अहंकार, अहङ्कारसे आकाश, आकाशसे जल, जलसे अग्नि वायु और अग्नि तथा वायुके मेलसे महीमण्डल उत्पन्न होता है, अनन्तर स्वयम्भू मानस दिव्य तेजमय एक पद्मकी सृष्टि करते हैं उसही पद्मसे वेद पूर्ण ऐश्वर्य्य विधि ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। आकाश आदि पञ्चभूतमय और जरायुज आदि चार प्रकारके जीवोंके सृष्टिकर्त्ता वह महातेजस्वी ब्रह्मा उत्पन्न होतेही "सोऽहं"—यह वाक्य उच्चारण करनेसे अहङ्कार नामसे विख्यात हुए हैं। सब पर्व्वत जिसकी हड्डी, पृथ्वी जिसका मेद और मांस है, सागर उसका रुधिर, आकाश पेट, पवन, श्वास, अग्नि, तेज, नदियें शिरा, चन्द्रमा और सूर्य्य उनके दोनों नेत्र, उर्द्ध तथा आकाश शिर, पृथ्वी दोनों चरण और सब दिशा उनके हाथ हुए हैं ; वह अचिन्त्यस्वभाव ब्रह्मा सिद्धोंको भी निःसन्देह दुर्व्विज्ञेय हैं। वही विश्वव्यापी भगवान अनन्त नामसे विख्यात हैं। सब भूतोंके आत्मभूत अहङ्कार तलमें जो स्थित हैं ; कृतबुद्धि पुरुष उन्हें सहजमें जाननेमें समर्थ नहीं होते। सब भूतोंकी उत्पत्तिके कारण अहङ्कारको जिन्होंने सृष्टि की थी, जिससे कि सम्सार उत्पन्न हुआ है ; तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने उसका विषय तुमसे कहा।

भरद्वाज बोले, आकाश, दिशा, भूमि और अनिलका क्या परिमाण है ? पूरी रीतिसे उसे वर्णन करके मेरा संशय छेदन करिये।

भृगु बोले, हे तपोधन ! चौदहों भुवन परिपूरित, सिद्ध देवताओंसे सेवित यह रमणीय आकाश अनन्त है ; इसका अन्त नहीं मालूम होता। ऊर्द्धगति और अधोगतिके अनुसार दिनमें चन्द्रमा और रात्रिमें सूर्य्यदेव कमलागोंके नवोंसे नहीं दीखते ; उस दृष्टिके अगोचर स्थानमें सूर्य्यके समान प्रकाशयुक्त अग्निके समान तेजस्वी स्वयं प्रकाशमान् देवता लोग निवास करते हैं। वे प्रथित तेजस्वी देवता लोग भी दुर्गमत्व और अनन्तत्व निबन्धनसे आकाशका अन्त नहीं देख सकते। हे मानद ! तुम मेरे समीप मालूम करो, कि ऊपरके सब जलते हुए लोक भी स्वयं प्रकाशमान देवताओंके जरिये इस अप्रमेय आकाशमें रुके हुए हैं। पृथ्वीके अन्तमें समुद्र, समुद्रके अन्तमें अन्धकार, अन्धकारके अन्तमें जल और जलके अन्तमें अग्नि है। इसी तरह रसातलके अनन्तर जल जलके बाद सर्प, सांपोंके अनन्तर फिर आकाश और आकाशके बाद फिर जल है। इसी प्रकार जलमय भगवान्‌का अन्त मेरे समीप मालूम करो। अग्नि, वायु और जलका अन्त देवताओंको भी दुर्ज्ञेय है। अग्नि वायु, जल और पृथ्वीतलका रूप आकाशके समान है ; परन्तु तल दर्शनके कारण आकाशसे पृथक् मालूम होता है। मुनिलोग विविध शास्त्रोंमें इसी प्रकार त्रैलोक्य-सागर विषयमें विहित प्रमाण पाठ किया करते हैं। अदृश्य और अगम्य विषयका प्रमाण कौन कह सकता है ; देवताओं और सिद्धोंके गमन करनेका मार्ग आकाशकाही जब परिमाण नहीं है, तब अनन्त नामसे विख्यात नामहीके अनुरूप परमात्मा स्वरूप महात्मा मानसका अन्त किस प्रकार सम्भव हो सकता है। जबकि उस दिव्य रूपकी ह्रास और वृद्धि होरही है तब दूसरा कौन पुरुष उसके जाननेमें समर्थ होगा, यदि वैसा दूसरा कोई रहता तो उसे जान सकता ; जो हो, उस स्थूल सूक्ष्म कार्य्य रूप पुष्करसे पहिले धर्म्ममय परम श्रेष्ठ, सर्व्वज्ञ, मूर्त्तिमान् सर्व्वशक्तिमान् प्रजापति सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं।

भरद्वाज बोले, ब्रह्मा यदि पुष्करसे उत्पन्न हुए तो पुष्कर उनसे ज्येष्ठ हुआ परन्तु आप

ब्रह्माको पूर्व्वज कहते हैं; इसलिये इस विषयमें मुझे सन्देह होता है।

भृगु बोले, मानसको जो मूर्त्तिब्रह्मरूपसे विख्यात हुई है, उसही ब्रह्माके आसन विधानके लिये मानस पृथ्वीही पद्म रूपसे कही गई है; अर्थात् स्थूल सृष्टिके पहिले सूक्ष्म रूपसे जो मानस सृष्टि हुई थी, उस सूक्ष्म सृष्टिके अनन्तर दृश्यमान् स्थूल जगत्की सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्मा उत्पन्न हुए; जो हो, आकाश पर्य्यन्त ऊंचा सुमेरु पर्व्वत उस मानस पद्मकी कर्णिका स्वरूप है, जगत् प्रभु प्रजापति उसके बीच निवास करते हुए सब लोकोंकी सृष्टि करते हैं।

१८२ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, हे द्विजसत्तम! मेरुके बीच निवास करते हुए सर्व्वशक्तिमान् ब्रह्मा किस प्रकार विविध प्रजाकी सृष्टि करते हैं, उसे वर्णन करिये।

भृगु बोले, मानसने पहिले मनसे विविध प्रजाकी सृष्टिकी थी; जीवोंकी रक्षाके लिये पहिले जलकी सृष्टि हुई, जो कि सब जीवोंका प्राण स्वरूप है; जिससे सब प्रजाकी बढ़ती होती और जिसे परित्याग करनेसे सब कोई नष्ट हुआ करते हैं; उसही जलसे यह समस्त जगत् घिरा हुआ है। पृथ्वी, पर्व्वत, बादल और मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो सब विग्रह विशिष्ट वस्तु हैं, वे सबही जल सम्बन्धीय हैं; क्यों कि इसे जानना चाहिये कि, जलही घन होकर पृथ्वी आदि रूपसे परिणत हुआ है।

भरद्वाज बोले, किस प्रकार जल उत्पन्न हुआ, किस तरह अग्नि और वायु प्रकट हुए, पृथ्वीकी भी किस प्रकार उत्पत्ति हुई? इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह है।

भृगु बोले, हे ब्रह्मन्! पहिले समय सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्मर्षियोंका एक स्थानमें समागम हुआ; उन लोगोंके अन्तःकरणमें सर्व्वलोक उत्पत्ति विषयक सन्देह उत्पन्न हुआ था। उन सब ब्राह्मणोंने निश्चल और निराहारी होकर वायु भक्षण करते हुए मौन होके तथा ध्यान अवलम्बन करके देव परिमाणसे एक सौ वर्ष पर्य्यन्त वहां निवास किया। अनन्तर उनके हृदयाकाशमें दिव्य-सरस्वती प्रकट हुई; ब्रह्ममयी वाणी सबके ही श्रवणगोचर हुई। सृष्टिके पहिले यह अनन्तर आकाश अचलकी तरह निश्चल था, चन्द्रमा, सूर्य्य और वायुका सम्पर्क नहीं था, इससे यह प्रसुप्तकी भांति प्रकाशित होता था। तमोराशिके बीच दूसरे अन्धकारके प्रवेशकी तरह उस आकाशसे जल उत्पन्न हुआ, जल संघर्षसे वायु प्रकट हुआ। छिद्र रहित पात्र निःशब्द जान पड़ता है, परन्तु जैसे जलपूर्ण वायु उसे शब्दयुक्त करता है, वैसेही जलसे पूर्णनिरवकाश आकाशके बीच शब्दयुक्त वायु सागर तलको भेदते हुए उत्पन्न होता है। उसही जल संघर्षणसे उत्पन्न हुआ यह वायु बह रहा है; आकाशको आश्रय करनेका अवधिसे कभी प्रशान्त नहीं होता। वायु और जलके संघर्षणसे दीप्ततेज ऊर्द्ध शिखा महाबल अग्नि आकाश-मण्डलको प्रकाशित करती हुई प्रकट हुई और वायुके संयोगसे जल और आकाशको एकत्र करके घनीभूत हुई। अग्निके आकाशसे गिरते रहने पर उसका जो स्नेहभाग था वही घनीभूत होकर पृथ्वी रूपसे परिणत हुआ। भूमि ही समस्त रस, गन्ध और प्राणियोंकी योनि है, भूमिसे ही सब वस्तु उत्पन्न होती हैं।

१८३ अध्याय समाप्त।

भरद्वाज बोले, प्रजापतिने जो पहिले भूतोंकी सृष्टि की थी और जिसके जरिये ये सब लोक घिरे हुए हैं, उनका महाभूत नामसे प्रसिद्ध होनेका क्या कारण है और उन ब्रह्मा-